इकाई - 1 - शरीर संगठन

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 शरीर संगठन एक परिचय

1.3.1 शरीर की सबसे छोटी इकाई - कोशिका

1.3.2 कोशिका का समूह - ऊतक

1.3.3 शरीर के विभिन्न भाग

1.4 शरीर के विभिन्न संस्थान

1.4.1 ज्ञानेन्द्रिय संस्थान

1.4.2 कंकाल तंत्र

1.4.3 मांसपेशी संस्थान

1.4.4 पाचन संस्थान

1.4.5 श्वसन संस्थान

1.4.6 उत्सर्जन तंत्र

1.4.7 रक्त वाहक संस्थान

1.4.8 अंत:स्त्रावी तंत्र

1.4.9 लसिका तंत्र

1.4.10 तंत्रिका तंत्र

1.4.11 प्रजनन तंत्र

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 अभ्यास प्रश्न

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. 1 प्रस्तावना-

मनुष्य शरीर अत्यन्त दुर्लभ माना गया है, किन्तु इस शरीर को प्राप्त करने में कुछ विशेष शुभ संकल्पों अथवा कर्मों की आवश्यकता होती है। ऋषि और मनीषियों का मानना है, कि यह जन्म और शरीर विभिन्न जन्मान्तरों के पुण्यों का परिणाम होता है। लौकिक दृष्टि से कहें अथवा आध्यात्मिक दृष्टि से मनुष्य को अपने लक्ष्य के लिये अथवा मुक्ति को प्राप्त करने के लिये स्वस्थ मन एवं शरीर की नितान्त आवश्यकता होती है।

मनुष्य शरीर के अन्दर दो प्रकार की क्रियाएं सदैव चलती रहती हैं । निर्माण संबधी तथा विनाश संबधी , शरीर की कोशिकायें जो शरीर की सबसे छोटी इकाई है, अपनी पूर्ण आयु अथवा पूर्ण अवस्था को प्राप्त कर लेने पर स्वतः ही नष्ट हो जाती हैं, और उनके स्थान पर नयी कोशिकाओं का निर्माण होता है। बाल्यावस्था में यह निर्माण सम्बन्धी प्रक्रिया तेज होती है तथा विनाश सम्बन्धी प्रक्रिया धीमी होती है। निर्माण संबधी प्रक्रिया के फलस्वरूप यह शरीर वृद्धि को प्राप्त होता है, वृद्धि को प्राप्त करता हुआ युवा बन जाता है। युवावस्था में ये प्रक्रियायें लगभग समान रहती हैं। तथा उस समय यह शरीर कुछ समय के लिये एक सा बना रहता है। परन्तु वृद्धावस्था में निर्माण की प्रक्रिया की अपेक्षा विनाश की प्रक्रिया तेज होती जाती है। परिणामस्वरूप यह शरीर धीरे - धीरे घटता जाता है। इस प्रकार निरन्तर विनाश को प्राप्त करता हुआ यह शरीर अन्त में वृद्धावस्था के उपरान्त मृत्यु को प्राप्त हो जाता है और मृत्यु को प्राप्त होना उसका धर्म है तथा यह संसार की नियति भी है। इस प्रकार अनेक छोटी - छोटी इकाईयों से मिलकर बना यह मानव शरीर उत्कृष्टता की अनमोल कृति है।

प्रस्तुत इकाई में आप मानव शरीर संगठन का अध्ययन करेंगे व जानेंगे कि मानव शरीर कैसे कार्य करता है। तथा कितने भागों में विभाजित है।

1.2 उद्देश्य -

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- शरीर संगठन से अवगत हो सकेंगे।
- शरीर के मुख्य संस्थानों के बारे में बता सकेंगे।
- शरीर के मुख्य संस्थानों के कार्यों को समझ सकेंगे।
- शरीर संगठन की प्रत्येक इकाई के महत्व को समझ सकेंगे ।

1.3 शरीर संगठन - एक परिचय -

मनुष्य शरीर अनेक अवयवों का सम्मिलित रूप है। जिस प्रकार एक मशीन अनेक कलपुर्जों से मिलकर बनी है। उसी प्रकार हमारा शरीर भी अनेक अंग अवयवों से मिलकर बना है। हमारा शरीर अनेकों कोशिकाओं से मिलकर बना है। कोशिका शरीर की सबसे छोटी इकाई होती है। ये कोशिकायें शरीर में असंख्य मात्रा में होती है। कोशिकाओं को सूक्ष्मदर्शी यन्त्र के माध्यम से ही देखा जा सकता है। इन कोशिकाओं मे स्वयं वृद्धि करने का गुण पाया जाता है। मनुष्य का जन्म केवल दो कोशिकाओं की वृद्धि से ही होता है।

ये कोशिकायें हैं क्या? यह जानने के लिये इनका विस्तृत अध्ययन करना अनिवार्य है -

1.3.1 शरीर की सबसे छोटी इकाई - कोशिका (Cell)

शरीर की प्रत्येक कोशिका एक तरल (जैली) पदार्थ से बनी है। उसे जीवद्रव्य कहते हैं। जीवद्रव्य के बीच में एक केन्द्रक होता है। केन्द्रक, कोशिका का महत्वपूर्ण भाग होता है। केन्द्रक जनन आदि क्रियाओं पर नियंत्रण रखता है, केन्द्रक में **Genes** होते है। ये **R.N.A** तथा **D.N.A** से मिलकर बनती है। ये जीन्स पैतृक गुणों के संवहन का कार्य करते हैं, इनके द्वारा ही कोशिका अपने जैसी अन्य कोशिकायें उत्पन्न करती है। कोशिकायें विकास के कुछ समय बाद नष्ट भी होती है, तथा फिर पुनः नयी कोशिका का निर्माण होता रहता है। इस तरह कई कोशिकायें मिलकर ऊतक का निर्माण करती हैं।

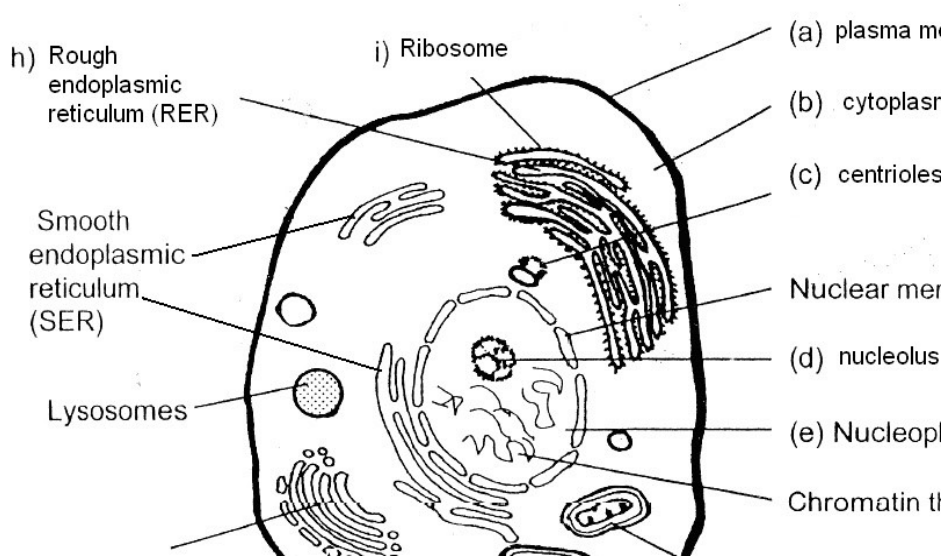

चित्र 1.1-कोशिका

1.3.2 कोशिका का समूह - ऊतक (Tissue)

मनुष्य शरीर में भिन्न - भिन्न कार्यों का सम्पादन अलग - अलग प्रकार की कोशिकाएं करती है। एक ही प्रकार की बहुत सी कोशिकाओं से मिलकर जो संरचना बनती है, वह ऊतक कहलाता है।

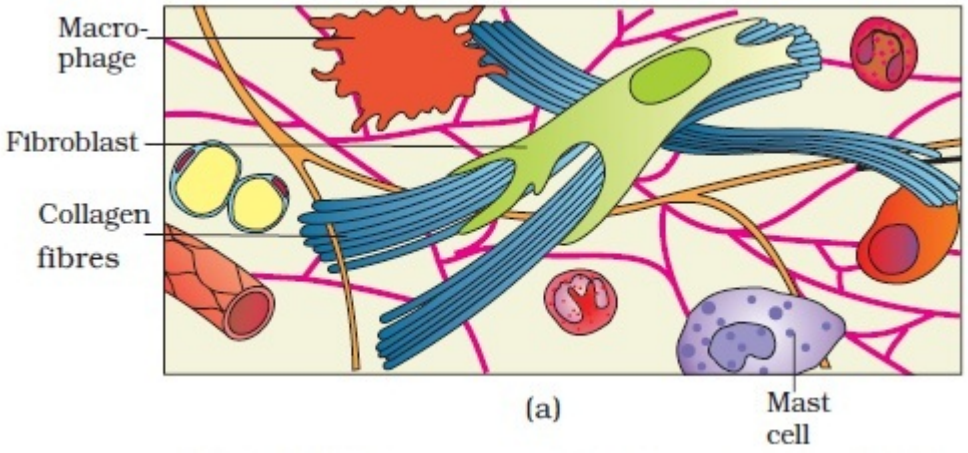

चित्र 1.2 ऊतक

एक ही तरह के बहुत से ऊतक मिलकर एक अंग विशेष का निर्माण करते हैं, जैसे शरीर में मस्तिष्क के निर्माण में तंत्रिका कोशिकायें भाग लेती हैं, इनसे पहले ऊतक बनता है और फिर ऊतकों के समूह से मिलकर मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र का निर्माण करते हैं। रचना के अनुसार ऊतक **(Connective Tissue)** जो शरीर के अंगों को परस्पर जोड़े रखने में सहायक है, अस्थि ऊतक जो कि अस्थि का निर्माण करते हैं, उपकला ऊतक **(Epithelial Tissue)** त्वचा या अंगों की बाहरी त्वचा का निर्माण करता है। इसी प्रकार तंत्रिका ऊतक तथा पेशी ऊतक अपना - अपना कार्य करते हैं, बहुत से ऊतक मिलकर शरीर के अंग और शरीर के तंत्र **(System)** का निर्माण करते हैं, और इस तंत्र **(System)** से मिलकर पूरे शरीर का निर्माण होता है।

1.3.3 शरीर के विभिन्न भाग-

मानव शरीर के चार मुख्य भाग होते हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है -

1. **सिर** - मस्तिष्क मानव शरीर का महत्वपूर्ण भाग है जिसके दो भाग किये जा सकते हैं। जिनमें (1) खोपड़ी तथा (2) चेहरा दो भागों में बॉटा जा सकता है।

I. **खोपड़ी** - खोपड़ी सिर के ऊपरी तथा पिछले भाग की हड्डी का वह आवरण (कोष्ठ) है जिसमें 'मस्तिष्क' सुरक्षित रहता है। खोपड़ी के इस भाग को कपाल भी कहा जाता है।

II. **चेहरा (Face)** - चेहरा के अन्तर्गत नाक, कान, आँख, मुख तथा ललाट व दोनों जबड़ों की गणना की जाती है। ज्ञानेन्द्रियों में चार चेहरे के अन्तर्गत आती है।

2. **ग्रीवा (Neck)** - गर्दन सिर को धड़ से जोड़ती है। ग्रीवा सिर तथा धड़ के बीच का भाग है, गर्दन के पीछे रीढ़ की हड्डी तथा आगे की ओर टैंटुआ तथा इनके मध्य में ग्रास नली स्थित है। इस प्रकार शरीर के इस छोटे से भाग में भोजन प्रणाली के अंग तथा श्वसन संस्थान के अंग स्थित रहते हैं।
3. **धड़ (Trunk) -** गर्दन के नीचे का भाग धड़ कहलाता है। धड़ के दो उपविभाग हैं- (1) ऊपरी भाग वक्षस्थल (2) निचला भाग पेट (उदर) कहलाता है।

धड़ के इन दोनों भागों को विभाजित करने वाली एक पेशी है, जिसे डायफ्राम कहते है। यह पेशी धड़ के मध्य में एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली होती है। वक्षस्थल के अन्तर्गत फेफड़े तथा हृदय मुख्य अंग हैं, तथा उदर में आमाशय, यकृत, प्लीहा, वृक्क (गुर्दे), छोटी तथा बड़ी आँत तथा श्रोणि मेखला स्थित है।

4. **शाखायें (Limbs)** - धड़ के ऊपरी भाग से दो शाखायें (हाथ) कन्धों की हड्डियों से जुड़े रहते हैं। इनके भी दो उप विभाग हैं- दायाँ (Right) बायाँ (left) धड़ के निम्न भाग में श्रोणी मेखला से दो शाखायें अर्थात् टाँगों के भी दायें व बायें दो भाग हैं।

1.4 शरीर के विभिन्न संस्थान -

हमारा शरीर अनेक अंगों से मिलकर बना है। इन अंगों के द्वारा शरीर के अनेक कार्यो का सम्पादन होता है। शरीर के उन भागों को जो किसी कार्य विशेष को करते हैं, उन्हें अंग कहते हैं। प्रत्येक अंग की अलग क्रियायें (Function) होती हैं, जैसे पैर का चलना, हाथ द्वारा पकड़ना, आँखों का देखना, आमाशय द्वारा भोजन को पचाना आदि क्रियायें होती है।

जब अनेक अंग समूह मिलकर किसी एक विशेष कार्य को करते है। तब उन क्रियाओं के कार्य समूह को संस्थान कहा जाता है। इस प्रकार अनेक अंग मिलकर एक संस्थान **(System)** बनाते हैं, और अनेक संस्थान मिलकर एक शरीर बनाते हैं। इस प्रकार मनुष्य शरीर में मुख्य ग्यारह (11) संस्थान **(System)** माने गये है जो इस प्रकार हैं -

1.4.1 ज्ञानेन्द्रिय संस्थान -

हमारे शरीर के वह अंग जिनसे हमें अपने चारों ओर के परिवेश का ज्ञान प्राप्त होता है। उन्हें ज्ञानेन्द्रिय कहा जाता है। हमारे शरीर में ज्ञानेन्द्रियों की संख्या 5 है। आँखें, नाक, कान, जिह्वा

तथा त्वचा, इन ज्ञानेन्द्रियों का सीधा संबध हमारे देखने, सूघँने, सुनने, स्वाद तथा स्पर्श आदि पाँच संवेदनों से होता है। इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों से मिलकर ही ज्ञानेन्द्रिय संस्थान बनता है। आँख के कार्य सम्पादन में विभिन्न भाग कार्निया, उपतारा (Iris) तथा पुतली (Pupil) तथा रेटिना (Retina) महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा हमें देखने संबधी संवेदना की अनुभूति होती है।

कान की संरचना को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है, एक वाह्य, मध्य तथा आंतरिक कान। वाह्य कान ध्वनि तरंगों को मध्य कान तक पहुँचाता है, तथा मध्य कान यह तरंगों को आन्तरिक कान तक पहुँचाता है।

गंध का ज्ञान कराने वाली ज्ञानेंन्द्री नाक, के दो प्रमुख भाग होते हैं - पहला बाहरी तथा दूसरा आंतरिक। घ्राण संवेदना का अहसास कराने वाले कोश आंतरिक नाक में उपस्थित नासिका गुहा में होते हैं। यही कोश गंध युक्त पदार्थों से निकलने वाले सूक्ष्म वाष्पमय कणों से प्रभावित होकर संबधित संवेदना को मस्तिष्क केन्द्रों के घ्राण शिरा तक पहुँचाते हैं, जिसके फलस्वरूप हमें गंध का अहसास होता है।

स्वाद का ज्ञान कराने वाली ज्ञानेंन्द्रिय जिह्वा में स्थान - स्थान पर गड्ढ़े तथा उभार होते हैं, जिनमें स्वाद कलिकाएँ होती है। जिह्वा की नोक पर उपस्थित स्वाद कलिकाएँ मिठास का तथा पश्च भाग में स्थित कलिकाएँ कड़वेपन, पार्श्व किनारों में स्थित कलिकाएँ खट्टेपन तथा मध्य और आगे के भाग में स्थित कलिकाएँ नमकीनपन के स्वाद का अहसास कराने में सहायक होती है। जो भोजन हम ग्रहण करते है वे लार में अच्छी तरह मिलकर जिह्वा के स्वाद तंतुओं के द्वारा स्वाद कोशों में पहुँचता है। यहीं स्वाद कोश संवेदना से उत्तेजित होकर अपनी उत्तेजना स्वाद कलिकाओं तक पहुँचाते हैं। जिसके परिणामस्वरूप मस्तिष्क की सहायता से विभिन्न स्वादों का अहसास कराते हैं।

त्वचा स्पर्श, ताप, शीत, दबाव और पीड़ा का ज्ञान कराने वाली इंद्रिय है। त्वचा की तीन परत निम्न है - 1. बाह्य 2. मध्य 3. आंतरिक। सभी परतों में अलग - अलग प्रकार के स्पर्श संबधी संवेदना कोश उपस्थित होते है।यही कोश उपर्युक्त पदार्थो से उत्तेजित होकर भिन्न - भिन्न प्रकार के स्पर्श संबधी संवेदन का आभास कराते हैं।

1.4.2 अस्थि संस्थान अथवा कंकाल तंत्र -

मनुष्य शरीर का आधार अस्थि तंत्र ही है। यह अस्थि तंत्र ही मांस, त्वचा, धमनियों, शिराओं, स्नायु व शरीर के सभी कोमल अंगों को सुरक्षा देता है। मानव शरीर को आकार प्रदान

करना, शरीर की सन्धियों को व्यवस्थित करना तथा शरीर को कार्य करने तथा चलने- फिरने आदि के योग्य बनाना यह कार्य अस्थि तंत्र द्वारा सम्पादित होता है।

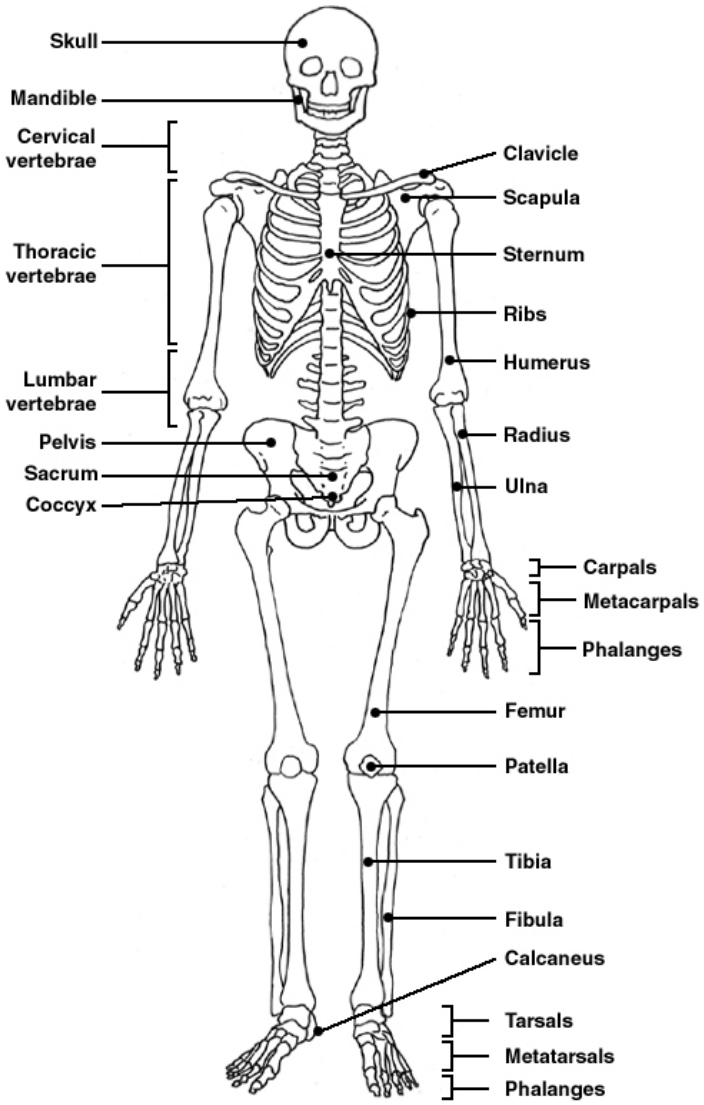

चित्र 1.3

अस्थि तंत्र लगभग 206 हड्डियों से मिलकर बना है। ये हड्डियाँ आपस में जुड़कर मजबूत ढाँचे का निर्माण करती है। अस्थियों के विकास के लिये कैल्शियम, फास्फोरस जैसे खनिज लवण तथा विटामिन 'सी' और 'डी' आवश्यक होते हैं। अस्थि पंजर में कुछ हड्डियाँ लम्बी, कुछ चपटी, कुछ गोल, कुछ टेढ़ी - मेढ़ी और कुछ बेलनाकार होती है। हड्डियों की लम्बाई - चौड़ाई भी

अलग- अलग पायी जाती है। शरीर में हड्डियों का भार शरीर के भार का प्रायः 16वां हिस्सा होता है।

अस्थि तंत्र में हाथों की ऊपरी भुजा कंधों से जुड़ी होती है। कंधे से जुड़ी एक हड्डी जिसे ह्यूमरस**(Humerus)** कहते है, का ऊपरी सिरा कंधे के जोड़ से जुड़ा रहता है। कंधे के जोड़ में सामने की ओर कालर बोन **(Collar Bone)** तथा पीछे की ओर त्रिभुजाकार हड्डी **(Scapula)** होती है। कोहनी के जोड़ से ह्यूमरस का निचला हिस्सा जुड़ा रहता है। इस जोड़ में नीचे **(Radius)** और अलना **(ulna)** नामक दो हड्डियाँ होती है, ये मिलकर अग्रभुजा का निर्माण करती है। इसके निचले सिरे कलाई की हड्डियों से जुड़े रहते हैं, तथा इनसे अंगुलियों की तीन - तीन हड्डियाँ जुड़ी रहती हैं। मेरूदण्ड, जिसमें गर्दन की सबसे पहली कशेरूका स्थित है, गर्दन की पहली कशेरूका से खोपड़ी जुड़ी होती है। इसके कई भाग होते हैं। जैसे कपालास्थि, जिसमें मस्तिष्क होता है, तथा सामने की ओर दो गहरे गड्ढे **(Orbit)** होते है । जिसमें नाक की हड्डी होती है। नाक के नीचे ऊपरी जबड़ा **(Mandible)** होता है तथा इस ऊपरी जबड़े के ठीक नीचे दूसरा जबड़ा (निचला जबड़ा) होता है। जो कान के पास की टेम्पोरल **(Temporal)** हड्डी से निकले हुये सिरों के दोनों ओर जुड़ा होता है। दोनों जबड़ों में 16 - 16 दाँत हड्डियों के बने खॉचों में लगे रहते है।

पसलियों के 7 जोड़े स्टर्मम **(Sternum)** से जुड़े होते हैं, और पीछे की ओर ये पसलियाँ वक्ष की कशेरूकाओं से जुड़ी होती हैं । नीचे वाली दो जोड़ी पसलियों के अग्रभाग स्वतन्त्र होते हैं , धड़ में श्रोणी **(Pelvis)** की अस्थियां दो समान भागों की बड़ी अस्थियों से मिलकर बनती है। पीछे की ओर ये क्रम से जुड़ी होती है। इनके दोनों तरफ से कूल्हे के जोड़ों से जांघ की लम्बी बेलनाकार हड्डी जुड़ी होती है। जो फीमर **(Femur)** कहलाता है। फीमर का निचला सिरा घुटने के जोड़ द्वारा टिबिया **(Tibia)** और फिबुला **(Fibula)** नाम की दो लम्बी अस्थियों से जुड़ा होता है। इन दोनों के निचले सिरे एवं पैर के पंजे की हड्डियाँ मिलकर **Ankle Joint** या पंजे का निर्माण करती है। पैर के पंजे में 5 मेटाटारसल **(Metatarsal)** और टारसल **(Tarsal)** अस्थियाँ होती है। इनमें पैर छोटी - छोटी अंगुलियों की हड्डियाँ जुड़ी रहती है।

1.4.3 मांसपेशी संस्थान अथवा पेशीय तंत्र –

पेशी संस्थान **(Muscular System)** मनुष्य शरीर मांस पेशीय संस्थान के कारण ही सुन्दर तथा सुडौल दिखाई देता है। क्योंकि शरीर का ऊपरी ढाँचा पूर्णतः मांसाच्छादित होता है।

मनुष्य शरीर का अधिकांश वाह्य तथा आन्तरिक भाग मांसपेशियों से ढका रहता है। 'मांस' अथवा 'मांसपेशियाँ' लसदार समूह का नाम है। मांसपेशियाँ एक - एक मांससूत्र होती है या मांस का गुच्छा होती है। मांसपेशियां में संकोचन एवं शिथिलन का विशेष गुण होता है । संकोचन के विशेष गुण के कारण ही हम अपने हाथ - पैर सिर व अन्य शारीरिक अवयवों को विभिन्न दिशाओं में सरलतापूर्वक घुमा सकते हैं, जैसे - हाथों से लिखना, पैरों से चलना, मुँह खोलना - बंद करना, हृदय का धड़कना, आँखों की पुतलियों का इधर - उधर होना, सिकुड़ना आदि कार्य भी इन्हीं मांसपेशियों के विशेष गुण से ही सम्भव है।

मनुष्य शरीर में छोटी - बड़ी लगभग कुल 519 मांसपेशियां पायी जाती हैं। मांसपेशियों दो प्रकार की पाई होती है।

1. ऐच्छिक पेशी **(Voluntary)**
2. अनैच्छिक पेशी **(Non Voluntary)**

1. **ऐच्छिक पेशी (Voluntary)** जैसा कि नाम से स्पष्ट है जिन पेशियों पर हम अपनी इच्छानुसार परिवर्तन कर सकते हैं। ऐच्छिक पेशी वे होती हैं, जो मनुष्य की इच्छानुसार कार्य करती हैं, मनुष्य इन्हें अपनी इच्छानुसार चला सकता है। ऐच्छिक पेशी को पराधीन मांसपेशी भी कहते हैं।
2. **अनैच्छिक पेशी (Non Voluntary) -** अनैच्छिक पेशियां स्वतंत्र रूप से अपना कार्य करती रहती हैं। मनुष्य अपनी इच्छानुसार इन्हें नहीं चला सकता है। ये पेशियाँ दिन - रात अपना कार्य निरन्तर करती रहती हैं। जैसे - हृदय, श्वसन संस्थान, अग्न्याशय, अन्न नली आदि की माँसपेशियाँ अपना कार्य करती रहती है। मनुष्य शरीर की मांसपेशियाँ सुदृढ़ होती हैं। मनुष्य का शरीर मांसपेशियों को सुदृढ़ होने के कारण ही सुगठित, सुन्दर और शक्तिशाली होता है। मांसपेशियों से शरीर को उष्णता प्राप्त होती है। अनैच्छिक मांसपेशी को स्वाधीन मांसपेशी भी कहते हैं।

1.4.4 पोषण या पाचक संस्थान अथवा आहार तंत्र -

पाचन संस्थान के अन्तर्गत मुख, अन्न नलिका, अग्न्याशय, पक्वाशय, क्लोम ग्रन्थि (अग्न्याशय) पित्ताशय, यकृत, छोटी आँत, बड़ी आँत आते है। पाचन तंत्र विभिन्न खाद्य पदार्थो का पाचन कर शरीर के लिये उपयोगी बनाता है। जिससे शरीर उनका उपयोग ऊर्जा एवं बृद्धि के लिये कर सके।

जब किसी खाद्य पदार्थ को मुँह में दाँतों द्वारा चबाया जाता है, तो इस दौरान मुँह में उस भोज्य पदार्थ में लार ग्रन्थियों से लार निकलकर उसमें मिल जाती है। लार खाद्य पदार्थ को गला देती है। जिससे खाद्य पदार्थ आसानी से आमाशय में चला जाता है।आमाशय एक बड़ी थैलीनुमा होता है, जब आमाशय में लार मिला भोजन पहुँचता है, तब आमाशय की दीवारों की ग्रन्थियों में मौजूद हाइड्रोक्लारिक अम्ल निकलकर भोजन में मिलता है। तत्पश्चात लगभग 3-5 घंटे में इसे पक्वाशय में भेज दिया जाता है। पक्वाशय में यह भोजन कुछ पतला (लेई जैसा) आता है, इसमें पित्ताशय से पित्त रस यहाँ आकर मिलता है। पित्त और पक्वाशय से निकले रस से भोजन फिर क्षारीय बन जाता है। इसके बाद भोजन छोटी आँत में आता है। पचे हुये भोज्य पदार्थो का छोटी आँत की दीवारों द्वारा अवशोषण होता है, तथा यह भोजन आँतों में होने वाली गति से आगे बढ़ता जाता है। छोटी आँत लगभग 6-7 मीटर लम्बी होती हे। तथा इसके द्वारा भोजन के प्रायः सभी आवश्यक तत्व अवशोषित कर लिये जाते है। इसके बाद पचा हुआ भोजन बड़ी आँत में पहुँचता है। बड़ी आँत में भी कुछ मात्रा में पानी व लवण का अवशोषण होता है। बड़ी आँत में यह क्रिया 5-6 घंटे तक चलती है। इस क्रिया के पश्चात् पचा हुआ आहार मल के रूप में परिवर्तित हो जाता है। जो उत्सर्जी अंगों द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। मनुष्य शरीर को भोजन के पाचन द्वारा शर्करा, प्रोटीन, वसा, विटामिन्स, खनिज लवण व पानी आदि प्राप्त होते हैं। भोजन के पाचन में लगभग 14 - 18 घंटे तक का समय लग जाता है।

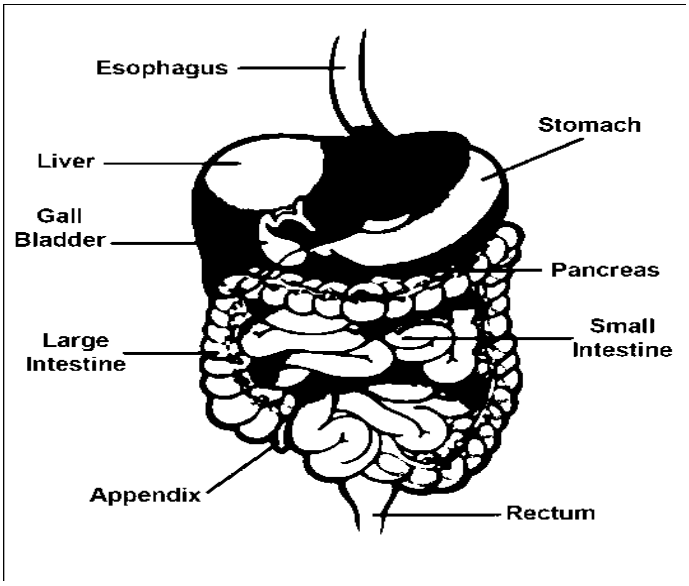

चित्र 1.4 पाचन तंत्र

1.4.5 श्वासोच्छावास संस्थान अथवा श्वसन संस्थान -

श्वसन संस्थान के अन्तर्गत श्वसन संबधी यन्त्र तथा नाक, स्वरयन्त्र **(Larynx)** श्वसन नलिका **(Wind Pipe)** व फेफड़े **(Lungs)** आते हैं। इस संस्थान के मुख्य कार्य दूषित रक्त को शुद्ध करके प्राणवायु **(Oxygen)** प्रदान कर पूरे शरीर को शुद्ध करना है। जिससे कि समस्त अंग सुचारू रूप से अपना कार्य कर सकें। मनुष्य भोजन और पानी के बिना कुछ समय जीवित रह सकता है , किन्तु 'श्वास' के बिना एक भी पल जीवित नहीं रह सकता है। जिस क्रिया द्वारा बाहरी वातावरण से शुद्ध प्राण वायु अर्थात् ऑक्सीजन (O_2) को ग्रहण किया जाता है, तथा शरीर के विभिन्न भागों में उत्पन्न कार्बन-डाईऑक्साइड (CO_2) व अशुद्धियों को शरीर से बाहर निकाला जाता है उसे श्वसन क्रिया अथवा 'श्वासोच्छवास क्रिया' कहते हैं। प्रत्येक जीव जगत के समस्त जीवित प्राणी में क्रिया स्वाभाविक रूप से चलती रहती है। यह क्रिया यदि बंद हो जाए तो प्राणी मृत्यु हो जाती है।

श्वसन तंत्र में नाक, श्वास नलिका एवं फेफड़े शामिल होते हैं। इसके अतिरिक्त डायफ्राम, वक्ष और उदर की पेशियाँ भी श्वसन क्रिया में सहायता करती है। जब ताजी हवा फेफड़ों में भर जाती है, तब वह बारीक रक्त नलिकाओं के माध्यम से रक्त के सम्पर्क में आती है। तथा इस दौरान रक्त में कार्बन - डाईऑक्साइड वाष्पशील हानिकारक पदार्थ निकल जाते हैं। उसमें ऑक्सीजन मिल जाती है। मनुष्य सामान्य तौर पर एक मिनट में 16 से 24 बार श्वास लेता है, और छोड़ता है, तथा छोटे बच्चों में यह क्रिया और जल्दी-जल्दी होती है। नवजात शिशु एक मिनट में 40 बार श्वांस लेता है, और छोड़ता है। श्वांस की गति दौड़ने, काम करने या अन्य तरह के परिश्रम करने से भी तेज होती है। क्योंकि परिश्रम करते समय शरीर को अधिक मात्रा में ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है, और इसकी आपूर्ति से श्वसन क्रिया तेज हो जाती है।

1.4.6 मूत्रवाहक एवं मलत्याग संस्थान या उत्सर्जन तंत्र –

मनुष्य शरीर में स्वस्थ रहने, जीवित रहने के लिये प्रकृति ने पोषण व निष्कासन जैसी महत्वपूर्ण प्रणाली बनाई है। इस प्रणाली के शरीर में ठीक प्रकार से कार्य ना करने पर शरीर से वर्ज्य पदार्थ बाहर नहीं निकल पाते है, जिससे शरीर रोगों का घर बन जाता है। भोजन के पाचन होने से तथा कोशिकीय प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप जो कोशिकाओं की टूट - फूट होती रहती है। इस टूट - फूट एवं मरम्मत की क्रिया के फलस्वरूप शरीर में बहुत से दूषित पदार्थ एकत्र होते रहते हैं। इन दूषित पदार्थो को शरीर विभिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा उत्सर्जी अंगों से बाहर निकालता रहता

है। इन्हीं उत्सर्जी अंगों से मिलकर उत्सर्जन संस्थान का निर्माण होता है। इन अंगों में त्वचा, वृक्क, फेफड़े, बड़ी आँत, मूत्राशय एवं मलाशय इत्यादि आते हैं। त्वचा से अतिरिक्त जल एवं दूषित पदार्थ शरीर से बाहर निष्कासित होते हैं। वृक्क रक्त से मूत्र, अम्ल, जल आदि को निष्कासित करता है तथा फेफड़े से कार्बन-डाईऑक्साइड एवं बड़ी आँत अनुपयोगी (दूषित) भोजन को शरीर से बाहर निष्कासित करती है।

1.4.7 रक्त वाहक संस्थान अथवा रक्त परिवहन तंत्र (Blood Circulatory System) –

रक्त वाहक संस्थान अथवा परिवहन तंत्र या परिसंचरण तंत्र प्रमुख रूप से हृदय और रक्त नलिकाओं से मिलकर बनता है। रक्त वहिकाएं समस्त शरीर में फैली होती हैं। रक्त वहिकाएं रक्त संचरण का कार्य करती है।

हृदय रक्त संचरण की क्रिया का सबसे प्रमुख अंग है। यह एक नाशपाती के आकार का मांसपेशी की एक थैली जैसा होता है। हृदय को शरीर का पम्पिंग स्टेशन कहा जाता है, क्योंकि हृदय की मांसपेशियों के द्वारा ही रक्त का परिसंचरण होता है। मनुष्य का हृदय विशेष तरह की मांसपेशियों का बना होता है। यह दो भागों बायें तथा दायें भागों या प्रकोष्ठों में बंटा होता है। इन दोनों भागों का आपस में कोई संबध नहीं होता है। ये दोनों भाग ऊपरी तथा निचले दो हिस्सों में बटे रहते हैं और इन दोनों भागों के बीच में कपाट या वाहक **(Valves)** होते है, जो एक ही ओर खुलते हैं। इनसे रक्त ऊपर के प्रकोष्ठ से आ तो सकता है, लेकिन वापस नहीं जा सकता है।

इस प्रकार हृदय में 4 प्रकोष्ठ होते हैं। बायें प्रकोष्ठ में शुद्ध रक्त होता है जो (बायें निचले प्रकोष्ठ) बायें निलय के संकुचल से, धमनियों द्वारा समस्त शरीर में संचारित होता है। अशुद्ध रक्त दायें प्रकोष्ठों में रहता है, जो शरीर की समस्त शिराओं द्वारा आता है। यह रक्त दायें निलय (दायें निचले प्रकोष्ठ) के संकुचन से फुफ्फुस धमनी **(Pulmonary Artery)** द्वारा फेफड़ों को भेज दिया जाता है। फेफड़ों में श्वसन क्रिया द्वारा रक्त को ऑक्सीजन प्राप्त होती है, और कार्बन-डाईआक्साइड निकलती है। फेफड़ों में जब रक्त शुद्ध हो जाता है, तब उसे फुफ्फुस शिराओं द्वारा बायें ऊपरी प्रकोष्ठ में भेज दिया जाता है, वहाँ से बायें निलय द्वारा फिर समस्त शरीर में संचारित हो जाता है। इस तरह मनुष्य शरीर में रक्त परिसंचरण की क्रिया चलती है।

1.4.8 अंतस्त्रावी तंत्र (Endocrine Syste)-

इस तंत्र के अन्तर्गत अंतस्त्रावी ग्रन्थियाँ आती हैं। इन ग्रन्थियों से महत्वपूर्ण और उपयोगी हारमोन्स स्रावित होते हैं। जो शरीर की महत्वपूर्ण क्रियाओं का सम्पादन करते हैं।अंतःस्त्रावी

ग्रन्थियों के स्राव नलिकाओं द्वारा अंगों तक जाकर सीधे रक्त प्रवाह में मिलकर सभी अंगों में पहुँचते हैं। ये ग्रन्थियाँ शरीर के विभिन्न भागों में स्थित होती है। प्रमुख अंतःस्रावी ग्रन्थियों का वर्णन निम्न है –

1. **पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland)** - यह मस्तिष्क के निचले भाग में अग्रभाग में स्थित होती है। इस ग्रन्थि से कई तरह के हार्मोन्स निकल कर रक्त में मिलते हैं। ये हार्मोन्स निम्न हैं –
   a. **थायराइड उत्तेजक हार्मोन्स (Thyroid Stimulating Hormones)**-यह हार्मोन थायराइड के कार्यों जैसे आयोडीन को थायराइड हार्मोन्स में बदलने, रक्त में उसके प्रवाह आदि को नियंत्रित करने में सहयोग करता है।
   b. **एड्रीनोकार्टीकोट्राफिक हार्मोन (A.C.T.H)** - एड्रीनल ग्रन्थियों के विकास तथा उससे निकलने वाले हार्मोन पर नियंत्रण करता है।
   c. **वृद्धि हार्मोन (Growth Hormone) -** यह हार्मोन शरीर विभिन्न ऊतकों की वृद्धि में सहायता करता है। जब इसका स्राव कम मात्रा में होता है, तो कद नाटा रह जाता है। इस ग्रन्थि के स्राव से बच्चों की ऊंचाई बढ़ती है।
   d. **फॉलिकल उत्तेजक हार्मोन (Folicle Stimulating Harmons))** - यह गन्थि स्त्रियों के डिम्ब निर्माण ओवेरियन फॉलिकल **(Ovarian Follicles)** और पुरूषों में शुक्राणुओं के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।|
   e. **ल्यूटिनाइजिंग हार्मोन (L.H)** - यह हार्मोन स्त्रियों में कार्पस ल्यूटिस **(Corpus Lutes)** के निर्माण में सहायक होता है, तथा गभिर्णी स्त्री के स्तनों का भी विकास करता है। पुरूषों में टेस्टोस्टेरान का स्राव करता है।

पीयूष ग्रन्थि के पश्च भाग से स्रावित होने वाले हार्मोन-

a. **आक्सीटोसिन (Oxytocin)** - यह हार्मोन स्त्रियों के गर्भाशय की पेशियों पर प्रभाव डालता है।
b. **एण्टीडाययूरोटिक हार्मोन (A.D.H)** - इस हार्मोन के प्रभाव से मूत्र की मात्रा में कमी आती है। जब । A.D.H कम मात्रा में निकलता है, तो गुर्दो द्वारा पानी का अवशोषण कम होता है। इससे मूत्र की मात्रा बढ़ जाती हे। इस हार्मोन की अधिक मात्रा रक्त चाप को बढ़ा देती है।

2. **थायराइड ग्रन्थि (Thyroid Gland)** - यह ग्रन्थि गर्दन के सामने नीचे की ओर स्थित होती है। थायराँयड ग्रन्थि थायरॉक्सिन का स्राव करती है, तथा ऊतकों की चयापचय क्रियाओं का नियमन करती है। थायराँक्सिन के कम स्रावण से अंगों में विकृति तथा अधिक स्रावण से हायपरथायरोडिज्म नामक रोग हो जाता है।
3. **पैराथायराइड ग्रन्थि (Parathyroid Gland)** - यह ग्रन्थि थायराइड ग्रन्थि के पास उससे लगी हुयी होती है। यह ग्रन्थि मटर के दाने के आकार की होती है, तथा इनकी संख्या 4 होती है। इनसे निकलने वाला हार्मोन पैराथारमोन, शरीर में कैल्शियम तथा फास्फोरस का वितरण तथा चयापचयी क्रियाओं का नियमन करता है। इस हार्मोन की अधिकता से हड्डियाँ कमजोर तथा गुर्दो में पथरी बनने लगती है। इसकी कमी से कैल्शियम की कमी हो जाती है।
4. **एडरीनल ग्रन्थियाँ (Adrenal Gland)** - ये ग्रन्थियाँ दोनों गुर्दो के ऊपर स्थित होती हैं। एड्रीनल से दो हार्मोन एड्रेनलीन और नारएड्रेनलीन निकलते है।
5. **थाइमस ग्रन्थि (Thymus Gland)** - ये ग्रन्थि दोनों फेफड़ों के मध्य स्थित होती है। यह बच्चों में दो वर्षो तक बढ़ती है । उसके पश्चात सिकुड़कर छोटी हो जाती है, और व्यस्क में तंतुमय अवशेष के रूप में ही रह जाती है।
6. **पीनियल ग्रन्थि (Pineal Gland)** - ये ग्रन्थि लाल रंग की गुठली के आकार की होती है। जो मस्तिष्क के पश्च भाग में स्थित होती है।

1.4.9 लसिका तंत्र (Lymphatic System)

लसिका तंत्र की शरीर की प्रतिरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका है। लसिका तंत्र के निर्माण में लसिका द्रव, लसिका कोशिकाएं एवं लसिका ग्रन्थियाँ सहायक होती हैं । लसिका द्रव छोटी - छोटी रक्त नलिकाओं से छन कर आया होता है। जो वापस रक्त वहिकाओं में नहीं जा पाता है। लसिका कोशिकायें ऊतकों के बीच में बारीक नलिकाओं के रूप में फैली होती हैं, ये ऊतकों से द्रव को एकत्रित कर लसिका वाहिकाओं में भेजती है।

लसिका गाढ़े या लिम्फनोड्स, छोटी व बड़ी दोनों आकार की हो सकती हैं लसिका वाहिकाएं इनमें लिम्फ आती है। इन गाँठों में श्वेत रक्त कणिकाएं आती है। रक्त के लिये श्वेत रक्त कणिकाओं का निर्माण भी लिम्फ गाठों में होता है। ये शरीर की सुरक्षा के लिये कुछ प्रतिपिण्डों का निर्माण करते हैं।

1.4.10 वातनाड़ी संस्थान अथवा तंत्रिका तंत्र –

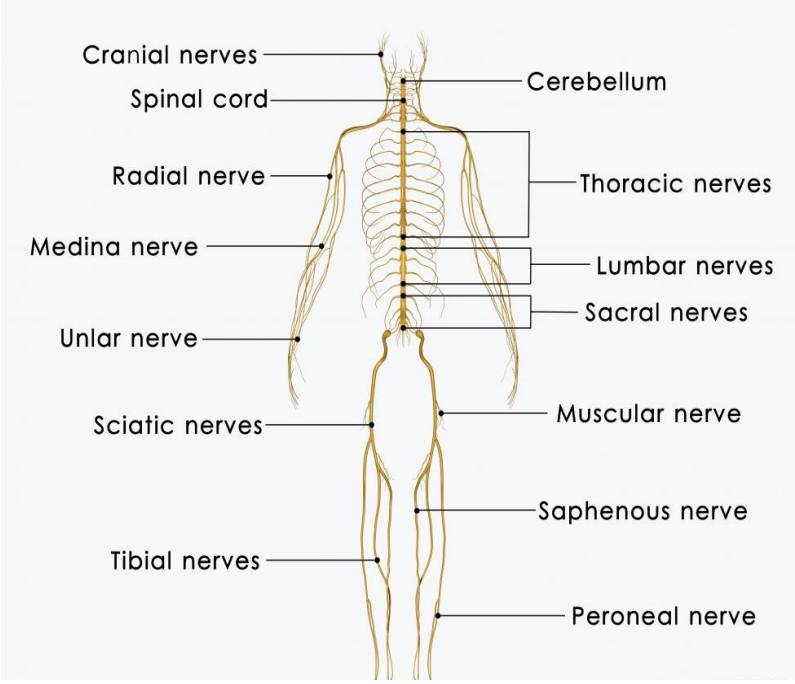

चित्र 1.5 **तंत्रिका तंत्र**

वातनाड़ी संस्थान या तंत्रिका तंत्र शरीर का एक महत्वपूर्ण तंत्र है। यह संस्थान शरीर के सभी संस्थानों पर नियंत्रण रखता है, और उनको नियमित भी करता है। इसमें मस्तिष्क, मेरूदण्ड में स्थित सुषुम्ना या मेरूरज्जु **(Spinal cord)** एवं इनसे निकलने वाली तंत्रिकायें **(Nerve)** आती है।

मस्तिष्क के दो प्रमुख भाग होते हैं, पहला लघु मस्तिष्क और दूसरा वृहद् मस्तिष्क। वृहद् मस्तिष्क के अलग - अलग क्षेत्र अपना अलग - अलग कार्य करते है। कुछ चिंतन - मनन का कार्य करते हैं। स्मरण शक्ति भी वृहद् मस्तिष्क में एक रहती है। वृहद् मस्तिष्क के कार्य हैं जैसे - पीड़ा, उष्णता, शीतलता, स्पर्श आदि का ज्ञान वृहद् मस्तिष्क का दायां हिस्सा शरीर के बायें भाग पर नियंत्रण रखता है, तथा बायाँ हिस्सा शरीर के दायें भाग पर नियन्त्रण रखता है। लघु मस्तिष्क शरीर में विभिन्न पेशियों की गति पर नियंत्रण रखता है। शरीर की गति, चलना - फिरना आदि कार्यों का नियमन इनके द्वारा होता है।

मस्तिष्क बुद्धि, विवेक, विचार, अनुभव इत्यादि का केन्द्र है। इन्द्रियों का बोध जैसे- श्रवण, दृष्टि, गंध, स्पर्श, स्वाद इत्यादि विभिन्न नाड़ियों के माध्यम से मस्तिष्क करवाता है। नाड़ियों **(Nerve)** के कार्य विद्युत तारों के समान ही होते हैं। क्योंकि जिस तरह धातु के तारों

द्वारा विद्युत एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजी जाती है। उसी प्रकार तंत्रिकाएं या नाड़ियाँ भी संदेशों को आदान - प्रदान करती है। तंत्रिकाएं समस्त शरीर में फैली होती हैं। इनमें से कुछ सीधे मस्तिष्क से निकलती हैं। इन्हें मस्तिष्कीय कपालिक तंत्रिकाए **(Cranial Nerves)** कहते हैं। इनकी संख्या 12 होती है। शेष अन्य बहुत सी तंत्रिकाएं मेरूरज्जु के अलग - अलग हिस्सों से निकलती हैं। ये 31 जोड़े होती हैं , हमारे सम्पूर्ण शरीर का संचालन इन्हीं नाड़ियों या तंत्रिकाओं द्वारा होता है।

1.4.11 उत्पादक संस्थान अथवा प्रजनन तंत्र –

प्रजनन तंत्र भी शरीर का एक महत्वपूर्ण तंत्र है। यह संस्थान जनन अंगों से मिलकर बनता है। यह संस्थान प्रजनन अथवा सन्तानोत्पत्ति के लिये समस्त प्राणियों में आवश्यक है। स्त्री और पुरूषों में अलग - अलग तरह के प्रजनन अंग होते हैं। बाह्य जननांग तथा आंतरिक जननांग। स्त्रियों के जनन अंग, डिम्ब ग्रन्थियाँ, डिम्ब वाहिनियाँ व गर्भाशय आती है, ये अंग श्रेणी गुहा के अन्दर स्थित होते है।

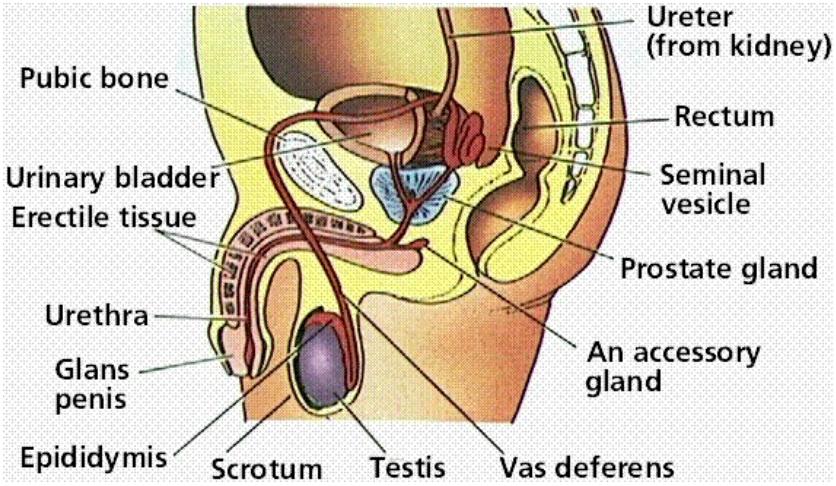

चित्र 1.6 प्रजनन तंत्र

डिम्ब ग्रन्थि डिम्ब या अण्डे का निर्माण तथा वृषण शुक्राणुओं का निर्माण करते हैं। जब डिम्ब व शुक्राणु मिलते हैं, तब भ्रूण की रचना होती है। डिम्ब व शुक्राणु के आधे - आधे क्रोमोसोम (23) होते हैं। डिम्ब और शुक्राणु जब मिलते हैं, क्रोमोसोम्स पूरे 46 हो जाते हैं।

1.5 सारांश -

प्रस्तुत इकाई पढ़ने को बाद आप जान चुके होंगे कि, मानव शरीर संगठन में शरीर के मुख्य 11 संस्थान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। ये संस्थान शरीर को आधार, दृढ़ता प्रदान करने, गति प्रदान करने, रक्त संचरण, पोषण तथा सन्तानोत्पत्ति में सहायक हैं।शरीर की सबसे छोटी इकाई कोशिका अपने आप में पूर्ण है।

इस प्रकार एक कोशिका में सभी संस्थानों की प्रतिकृति होती है। कोशिकाए आपस में मिलकर ऊतकों का निर्माण करती है। अनेक ऊतक मिलकर अंगों का निर्माण करते है, तथा अनेक अंग मिलकर एक संस्थान का निर्माण करते हैं । तथा इस प्रकार अनेक संस्थान मिलकर एक शरीर का निर्माण करते है। तथा यह शरीर के ही माध्यम से मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है। परलौकिक दृष्टि से देखें तो, यह शरीर ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और मुक्ति का साधन है।

1.6 शब्दावली -

कोशिका - मानव शरीर की सबसे छोटी इकाई

ऊतक - कोशिकाओं का समूह

प्रकोष्ठ - कोष्ठक

पक्वाशय - आमाशय

क्लोमग्रन्थि - अग्न्याशय

1.7 अभ्यास प्रश्न -

(क) सत्य / असत्य बताइये -

1. एक ही प्रकार की कोशिकाओं से मिलकर जो संरचना बनती है, उसे ऊतक कहते हैं।
2. मानव शरीर के मुख्य आठ भाग होते हैं ।
3. अस्थितंत्र 206 अस्थियों से मिलकर बना होता है।
4. मनुष्य शरीर में 619 मांसपेशियाँ पायी जाती है।

(ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति -

1. कोशिका का ऊर्जा ग्रह .....है।
2. मांसपेशियाँ .....प्रकार की होती है।
3. मेरूरज्जु के अलग - अलग हिस्सों से .....जोड़े तंत्रिकाएं निकलती है।
4. एड्रीनल ग्रन्थियाँ .....के ऊपर स्थित होती है।
5. ऑक्सीटोसिन हार्मोन पीयूष ग्रन्थि के.....भाग से स्रावित होता है।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

(क) सत्य / असत्य बताइये -

1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य, 4. असत्य

(ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति -

1. माइट्रोकान्ड्रिया, 2. दो, 3. 31जोड़े, 4. किडनी, 5. पश्च भाग

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- गुप्ता,अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
- गौढ़, शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
- प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिजियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।
- शर्मा, तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
- पाण्डेय,के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री -

- वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1, 2, 3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
- दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा।
- सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।
- अग्रवाल जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद।
- Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

1.10 निबंधात्मक प्रश्न -

1. कोशिका व ऊतक का सचित्र वर्णन करते हुये शरीर के मुख्य भागों का वर्णन कीजिये।
2. शरीर के समस्त संस्थान पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिये|

इकाई 2. श्वसन तंत्र

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 श्वसन तंत्र का अर्थ

2.4 श्वसन तंत्र की संरचना

- 2.4.1 नासिका की रचना एवं कार्य
- 2.4.2 ग्रसनी की रचना एवं कार्य
- 2.4.3 स्वर यन्त्र की रचना एवं कार्य
- 2.4.4 श्वासनली की रचना एवं कार्य
- 2.4.5 श्वसनी की रचना एवं कार्य
- 2.4.6 वायु कोष की रचना एवं कार्य
- 2.4.7 फेफड़ों की रचना एवं कार्य
- 2.4.8 डायाफ्राम की रचना एवं कार्य

2.5 श्वसन तंत्र की क्रिया विधि

2.6 श्वसन दर

2.7 वायु की धारिता

2.8 आन्तरिक श्वसन

2.9 गैसों का विनिमय

2.10 प्रश्वसित एवं निश्वसित वायु की संरचना

2.11 श्वसन का नियंत्रण

2.12 आन्तरिक श्वसन का हृदय से सम्बन्ध

2.13 श्वसन क्रिया को प्रभावित करने वाले कारक

2.14 सारांश

2.15 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.16 शब्दावली

2.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.18 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.19 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना:

प्रत्येक प्राणी को विभिन्न बाह्य एवं आन्तरिक कार्यों को पूर्ण करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है, जिसे प्राणी भोजन से प्राप्त करता है। शरीर के अन्दर भोजन पाचन के उपरान्त पोषक रस के रूप में ग्रहण कर लिया जाता है, यह पोषक रस रक्त के माध्यम से सम्पूर्ण शरीर की प्रत्येक कोशिका में भेज दिया जाता है किन्तु जब तक इस भोजन रस का दहन नहीं होता, तब तक इससे ऊर्जा मुक्त नहीं हो पाती, दहन की क्रिया में आक्सीजन का उपयोग होता है एवं कार्बन डाईआक्साइड नामक गैस उत्पन्न होती है। बाह्य वातावरण से आक्सीजन को ग्रहण करना एवं दहन की क्रिया में उत्पन्न कार्बनडाई आक्साइड को बाहर निकालना श्वसन क्रिया कहलाता है। यह श्वसन प्रत्येक प्राणी की एक ऐसी महत्वपूर्ण क्रिया है जिसे वह प्रतिक्षण जीवन पर्यत्न निर्बाध रूप से करता है। श्वसन क्रिया का सामान्य अर्थ श्वास-प्रश्वास से लिया जाता है जो जीवन की उत्पत्ति के साथ प्रारम्भ होकर जीवन पर्यत्न चलती है एवं इस क्रिया का रूक जाना ही मृत्यु कहलाता है।

मानव शरीर में स्थित वह तंत्र जो बाह्य वातावरण मे स्थित वायु को शरीर की आन्तरिक कोशिकाओं तक पहुंचाता है तथा शरीर की आन्तरिक कोशिकाओं मे स्थित कार्बनडाई आक्साइड को बाहर निकालने का कार्य करता है, श्वसन तंत्र कहलाता है। इस तंत्र की यह क्रिया श्वसन क्रिया कहलाती है।

संरचना एवं अध्ययन के दृष्टिकोण से मानव श्वसन तंत्र दो भागों में विभक्त किया जाता है।

1. बाह्य श्वसन तंत्र –

बाह्य श्वसन तंत्र के अन्तर्गत बाह्य वातावरण से वायु लेकर वायु के फेफड़ों तक पहुंचने की संरचना का वर्णन आता है। इसके अन्दर नासिका, ग्रसनी, स्वरयंत्र, श्वासनली, श्वसनी, वायुकोष एवं फेफड़ों की संरचना का वर्णन आता है।

1. अन्तःश्वसन –

अन्तःश्वसन के अन्तर्गत फेफड़ों में गैसों का आदान-प्रदान (गैसीय विनिमय), रक्त द्वारा आक्सीजन का परिवहन, कोशिका में आक्सीजन-कार्बनडाई आक्साइड का विनिमय, रक्त द्वारा

कार्बनडाई आक्साइड का परिवहन तथा कार्बनडाई आक्साइड का फेफड़ों में विनिमय की क्रिया का वर्णन आता है। प्रस्तुत इकाई में हम मनुष्य के बाह्य एवम् आन्तरिक श्वसन तंत्र की संरचना एवं कार्यों का सविस्तार वर्णन करेंगे।

2.2 उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- श्वसन तंत्र की संरचना एवं कार्यों की विवेचना कर सकेंगे।
- श्वसन तंत्र के प्रमुख अवयवों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेंगे।
- बाह्यश्वसन क्रिया की क्रिया विधि बता सकेंगे।
- आन्तरिक श्वसन की संरचना प्रकार एवं क्रियाविधि को समझ सकेंगे।
- फेफडों में गैसों के विनिमय की क्रिया का ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- प्रश्वसित वायु एवं निश्वसित वायु का विश्लेषण करने में सक्षम हो सकेंगे।
- श्वसन को नियंत्रित एवं प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कर सकेंगे।

2.3 श्वसन तंत्र का अर्थ:

मनुष्य भोजन के अभाव में कुछ दिनों तक जीवित रह सकता है, जल के अभाव में कुछ घंटे बीता सकता है किन्तु श्वास-प्रश्वास अथवा वायु के अभाव में कुछ क्षणों में ही जीवन लीला पर प्रश्न चिह्न स्थापित हो जाता है। शरीर विज्ञान के अनुसार यदि चार मिनट तक शरीर में श्वसन क्रिया नहीं होती तब शरीर की कोशिकाएं आक्सीजन के अभाव में मरने लगती है तथा सबसे पहले इसका प्रभाव मस्तिष्क एवं हृदय पर पड़ता है। इसका कारण यह है कि श्वास के माध्यम से बाह्य वायुमण्डल की आक्सीजन शरीर की आन्तरिक कोशिकाओं तक पहुंचती है तथा इस क्रिया के अभाव में आन्तरिक कोशिकाओं को आक्सीजन प्राप्त नहीं हो पाती तथा आक्सीजन के अभाव में कोशिका मे ऊर्जा उत्पत्ति की क्रिया (ग्लूकोज का आक्सीक्रण) नही हो पाती, परिणामस्वरुप ऊर्जा के अभाव में ये कोशिकाऐं में मरने लगती है।

‘‘शरीर में स्थित वह तंत्र जो वायुमण्डल की आक्सीजन को श्वास (Inspiration) के रूप में ग्रहण कर शरीर की आन्तरिक कोशिकाओं तक पहुंचाने का कार्य करता है तथा शरीर की

आन्तरिक कोशिकाओं में स्थित कार्बनडाईआक्साइड को बाह्य वायुमण्डल में छोड़ने (Expiration) का महत्वपूर्ण कार्य करता है, श्वसन तंत्र कहलाता है''।

मानव श्वसन तंत्र की संरचना नासिका से प्रारम्भ होकर फेफड़ों एवं डायाफ्राम तक फैली होती है। जो श्वसन की महत्वपूर्ण क्रिया को सम्पादित करने का कार्य करती है। श्वसन उन भौतिक-रासायनिक क्रियाओं का सम्मिलित रूप में होता है जिसके अन्तर्गत बाह्य वायुमण्डल की ऑक्सीजन शरीर के अन्दर कोशिकाओं तक पहुंचती है और भोजन रस (ग्लूकोज) के सम्पर्क में आकर उसके ऑक्सीकरण द्वारा ऊर्जा मुक्त कराती है तथा उत्पन्न CO_2 को शरीर से बाहर निकालती है।

2.4 मनुष्य श्वसन तन्त्र की संरचना:

मनुष्य में फेफड़ों द्वारा श्वसन होता है ऐसे श्वसन को फुफ्फुसीय श्वसन (Pulmonary Respiration) कहते हैं। जिस मार्ग से बाहर की वायु फेफड़ों में प्रवेश करती है तथा फेफड़ों से कार्बन-डाई-आक्साइड बाहर निकलती है उसे श्वसन मार्ग कहते हैं। मनुष्यों में बाहरी वायु तथा फेफड़ों के बीच वायु के आवागमन हेतु कई अंग होते हैं। ये अंग श्वसन अंग कहलाते हैं। ये अंग परस्पर मिलकर श्वसन तंत्र का निर्माण करते हैं। ये अंग इस प्रकार हैं -

नासिका एवं नासिका गुहा, ग्रसनी, स्वर यन्त्र,श्वास नली, श्वसनी एवं श्वसनिकाएं, वायुकोष, फेफड़े, डायाफ्राम।

ये सभी अंग मिलकर श्वसन तंत्र बनाते हैं। इस तंत्र में वायुमार्ग के अवरूद्ध होने पर श्वसन क्रिया रूक जाती है जिसके परिणामस्वरूप कुछ ही मिनटों में दम घुटने से व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

इन अंगों की संरचना और कार्यों का वर्णन इस प्रकार है –

2.4.1 नासिका एवं नासिका गुहा की रचना एवं कार्य (Nose and Respiratory Tract).

मानव श्वसन तंत्र का प्रारम्भ नासिका से होता है। नासिका के छोर पर एक जोड़ी नासिका छिद्र (External Nostrils) स्थित होते हैं। नासिका एक उपास्थिमय (Cartilaginous) संरचना है। नासिका के अन्दर का भाग नासिका गुहा कहलाता है। इस नासिका गुहा में तीन वक्रीय पेशियां Superior Nasal Concha, Middle Nasal Concha और Inferior Nasal Concha पायी जाती है। क्रोध एवं उत्तेजनशीलता की अवस्था में ये पेशियां अधिक क्रियाशील होकर तेजी से श्वसन क्रिया में भाग लेती है।

इस नासिका गुहा में संवेदी नाड़िया पायी जाती हैं जो गन्ध का ज्ञान कराती है। इसी स्थान (नासा मार्ग) के अधर और पार्श्व सतहों पर श्लेष्मा ग्रन्थियां (Mucous Glands) होती हैं जिनसे श्लेष्मा की उत्पत्ति होती है। नासिका गुहा के अग्र भाग में रोम केशों का एक जाल पाया जाता है।

नासिका एवं नासिका गुहा के कार्य -

- नासिका गुहा में स्थित टरबाइनल अस्थियां नासामार्ग को चक्करदार बनती है जिससे इसका भीतर क्षेत्रफल काफी अधिक बढ़ जाता है, और अन्दर ली गयी वायु का ताप शरीर के ताप के बराबर आ जाता है।
- यहाँ पर स्थित श्लेष्मा ग्रन्थियां श्लेष्मा का स्रावण करती हैं यह श्लेष्मा नासिका मार्ग को नम रखती है तथा इससे गुजरकर फेफड़ों में पहुंचने वाली वायु नम हो जाती है।
- यहाँ पर संवेदी नाड़ियों की उपस्थित वायु की स्वच्छता का ज्ञान कराती है।
- यहाँ पर स्थित रोम केशों का जाल फिल्टर की तरह कार्य करता हुआ हानिकारक रोगाणुओं व धुएं-धूल आदि के कणों को रोक लेता है।

2.4.2 ग्रसनी (Pharynx) की रचना एवं कार्य

नासिका गुहा आगे चलकर मुख में खुलती है। यह स्थान मुखीय गुहा अथवा ग्रसनी कहलाता है। यह कीप की समान आकृति वाली अर्थात आगे से चौड़ी एवं पीछे से पतली रचना होती है। यह तीन भागों में बँटी होती है-

(क) नासाग्रसनी (Nasopharynx)

(ख) मुखग्रसनी (Oropharynx)

(ग) स्वरयंत्र ग्रसनी (Laryngopharynx)

(क) नासाग्रसनी (Nasopharynx)

यह नासिका में पीछे और कोमल तालु के आगे वाला भाग है। इसमें नासिका से आकर नासाछिद्र खुलते हैं। इसी भाग में एक जोड़ी श्रावणीय नलिकाएं कर्णगुहा से आकर खुलती हैं, इन नलिकाओं का सम्बन्ध कानों से होता है।

(ख) मुखग्रसनी (Oropharynx)

यह कोमल तालू के नीचे का भाग है जो कंठच्छद तक होता है, यह भाग श्वास के साथ साथ भोजन के संवहन का कार्य भी करता है, अथार्त इस भाग से श्वास एवं भोजन दोनों गुजरते हैं।

(ग) स्वर यन्त्र ग्रसनी (Laryngopharynx)

यह कंठच्छद के पीछे वाला ग्रासनली से जुड़ा हुआ भाग है। इसमें दो छिद्र होते हैं पहला छिद्र भोजन नली का द्वार और दूसरा छिद्र श्वास नली का द्वार होता है। अर्थात यहां से आगे एक ओर भोजन तथा दूसरी ओर श्वास का मार्ग होता है।

ग्रसनी के कार्य -

ग्रसनी श्वसन तंत्र का प्रमुख अंग है। यह अंग वायु एवं भोजन के संवहन का कार्य करता है। श्वास के रुप में ली वायु इसी ग्रसनी से होकर श्वास नली में पहुंचती है।

2.4.3 स्वर यंत्र की रचना एवं कार्य (Larynx)

ग्रसनी के आगे का भाग स्वर यन्त्र (Larynx) कहलाता है। स्वर यन्त्र ऊपर मुख ग्रसनी से एवं नीचे की ओर श्वासनली से जुडा होता है। इसी स्थान पर थायराइड एवं पैराथायराइड नामक अन्तःस्रावी ग्रन्थियां उपस्थित होती हैं। यह गले का उभरा हुआ स्थान होता है अन्दर इसी स्थान में संयोजी उतक से निर्मित वाक रज्जु या स्वर रज्जू (Vocal Cords) पाये जाते हैं।

स्वर यन्त्र के कार्य

स्वर-यन्त्र ऐसा श्वसन अंग है जो वायु का संवहन करने के साथ साथ स्वर (वाणी) को उत्पन्न करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। प्रिय पाठकों में वास्तव में स्वर की उत्पत्ति वायु के द्वारा ही होती है। श्वास के द्वारा ली गई वायु से यहां उपस्थित स्वर रज्जुओं में कम्पन्न उत्पन्न होते हैं और ध्वनि उत्पन्न होती है। इसी अंग की सहायता से हम विभिन्न प्रकार की आवाजें उत्पन्न करते हैं तथा बोलते हैं।

स्वर रज्जुओं की तान तथा उनके मध्य अवकाश पर ध्वनि का स्वरूप निर्भर करता है अर्थात इसी कारण आवाज में मधुरता, कोमलता, कठोरता एवं कर्कशता आदि गुण प्रकट होते हैं। उच्च स्तरीय स्वरवादक (गायक) अभ्यास के द्वारा इन्हीं स्वर रज्जुओं पर नियंत्रण स्थापित कर अपने स्वर को मधुरता प्रदान करते हैं।

2.4.4 श्वास नली की रचना एवं कार्य (Trachea)

यह स्वर यन्त्र से आरम्भ होकर फेफड़ों तक पहुंचने वाली नली होती है। यह लगभग 10 से 12 सेमी. लम्बी और गर्दन की पूरी लम्बी में स्थित होती है। इसका कुछ भाग वक्ष गुहा में स्थित होता है। इस श्वासनली (Trachea) का निर्माण 16-20 अंग्रेजी भाषा के अक्षर 'C' के आकार की उपस्थियों के अपूर्ण छल्लों से होता है।इस श्वास नली की आन्तरिक सतह पर श्लेष्मा को उत्पन्न

करने वाली श्लेष्मा ग्रन्थियां(Goblet cell) पायी जाती हैं। आगे चलकर यह श्वासनली क्रमशः दाहिनी और बायीं ओर दो भागों में बँट जाती है, जिन्हें श्वसनी कहा जाता है।

श्वास नली के कार्य -

इस श्वास नली के माध्यम से श्वास फेफड़ों तक पहुंचता है। इस श्वास नली में उपस्थित गोबलेट सैल्स (goblet cell) श्लेष्मा का स्त्राव करती रहती है, यह श्लेष्मा श्वास नलिका को नम एवं चिकनी बनाने के साथ साथ अन्दर ग्रहण की गई वायु को भी नम बनाने का कार्य करती है, इसके साथ-साथ श्वास के साथ खींचकर आये हुए धूल के कण एवं सूक्ष्म जीवाणुओं भी श्वास इस श्लेष्मा में चिपक जाते हैं तथा अन्दर फेफड़ों में पहुचकर हानि नही पहुंचा पाते हैं।

2.4.5 श्वसनी एवं श्वसनिकाओं की रचना एवं कार्य (Bronchi and Bronchioles)

श्वासनली वक्ष गुहा में जाकर दो भागों में बंट जाती है। इन शाखाओं को श्वसनी (Bronchi)कहते हैं। श्वासनली मेरुदण्ड के पांचवे थोरेसिक वर्टिब्रा (5^{th} thoracic vertebra) के स्तर पर दायें और बांये ओर दो भागों में विभाजित हो जाती है।

प्रत्येक श्वसनी अपनी ओर के फेफड़े में प्रवेश करके अनेक शाखाओं में बंट जाती है। इन शाखाओं को श्वसनिकाएं (bronchioles) कहते हैं। इन पर अधूरे उपास्थीय छल्ले होते हैं। इस प्रकार श्वसनी आगे चलकर विभिन्न छोटी-छोटी रचनाओं में बटती चली जाती है तथा इसकी सबसे छोटी रचना वायुकोष (Alveoli) कहलाती है।

कार्य - श्वासनली के द्वारा आया श्वास (वायु) श्वसनी एवं श्वसनिकाओं के माध्यम से फेफड़ों में प्रवेश करता है।

2.4.6 वायुकोष की रचना एवम कार्य (Structure &function of Alveolar sac)

आगे चलकर प्रत्येक श्वसनी 2 से 11 तक शाखाओं में बँट जाती है। श्वसनी पुनः शाखाओं एवं उपशाखाओं में विभाजित होती है। श्वसनी की ये शाखाएं वायु कोषीय नलिकाएं (Alveolar ducts) कहलाती हैं। इन नलिकाओं का अन्तिम सिरा फूलकर थैली के समान रचना बनाता है। यह रचना अति सूक्ष्म वायु कोष(air sacs) कहा जाता है। इस प्रकार यहाँ पर अंगूर के गुच्छे के समान रचना बन जाती है। ये रचना एक कोशीय दीवार की बनी होती है तथा यहां पर रूधिर वाहिनियों (Blood capillaries) का घना जाल पाया जाता है।

वायुकोषों के कार्य(**Function of Alveoli)**

ये वायुकोष एक कोशीय दीवारों के बने होते हैं तथा यहाँ पर रूधिर वाहिनियों का जाल पाया जाता है। इन वायुकोषों का कार्य ऑक्सीजन एवं कार्बनडाई आक्साइड का विनिमय करना होता है।

2.4.7 फेफड़ों की रचना एवं कार्य (Structure &function of Lungs)

मनुष्य में वक्षीय गुहा (Thoracic Cavity) में एक जोड़ी (संख्या में दो) फेफड़ों पाये जाते हैं। ये गुलाबी रंग के कोमल कोणाकार तथा स्पंजी अंग है। फेफड़े अत्यन्त कोमल व महत्वपूर्ण अंग हैं इसीलिए इनकी सुरक्षा के लिए इनके चारों ओर पसलियों का मजबूत आवरण पाया जाता है। प्रत्येक फेफड़े के चारों ओर एक पतला आवरण पाया जाता है जिसे फुफ्फुसावरण (Pleura) कहा जाता है। यह दोहरी झिल्ली का बना होता है तथा इसमें गाढ़ा चिपचिपा द्रव फुफ्फस द्रव (Pleural fluid) भरा होता है। इस द्रव के कारण फेफड़ों के क्रियाशील होने पर भी फेफड़ों में रगड़ उत्पन्न नहीं होती है। इन फेफड़ों में बांये फेफड़े की तुलना में दाहिना फेफड़ा अपेक्षाकृत बड़ा तथा अधिक फैला हुआ होता है। इसका कारण बांयी ओर हृदय की उपस्थिति होता है। फेफड़ों का निचला भाग डायाफ्राम नामक पेशीय रचना के साथ जुड़ा होता है। दाहिना फेफड़ा तीन पिण्डों (lobe) में तथा बांया फेफड़ा दो पिण्डों(lobe) में बँटा होता है।

फेफड़ों के कार्य-

वायुकोष फेफड़ों में मधुमक्खी के छत्ते के समान रचना का निर्माण करते हैं। फेफड़ों का हृदय के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। हृदय से कार्बन डाई आक्साइड युक्त रक्त लेकर रक्त वाहिनी(पलमोनर्री आटरी) फेफड़ो में आकर अनेकों शाखाओं में बँट जाती है। इस प्रकार बाह्य वायु मण्डल की आक्सीजन एवं शरीर के अन्दर कोशिकाओं से रक्त द्वारा लायी गयी कार्बनडाई आक्साइड गैस में विनिमय (आदान-प्रदान) का कार्य इन फेफड़ों में ही सम्पन्न होता है।

2.4.8 डायफ्राम की रचना एवं कार्य (Structure &function of Diaphragm)

डायाफ्राम लचीली मांसपेशियों से निर्मित श्वसन की सबसे शक्तिशाली मांसपेशी होती है, जिसका सम्बन्ध दोनों फेफड़ों के साथ होता है। यह डायाफ्राम दोनों फेफड़ों को नीचे की ओर साधकर (Tone) रखता है।

डायाफ्राम के कार्य- यह डायाफ्राम वक्ष एवं उदर को विभाजित करने का कार्य करता है। फेफड़ों का इस डायाफ्राम के साथ जुड़ने के कारण जब फेफड़ों में श्वास भरता है तब इसका प्रभाव उदर (पेट) पर पड़ता है तथा डायाफ्राम का दबाव नाचे की ओर होने के कारण उदर का विस्तार होता है

जबकि इसके विपरीत फेफड़ों से श्वास बाहर निकलने पर जब फेफड़े संकुचित होते हैं तब डायाफ्राम का खिंचाव ऊपर की ओर होने के कारण उदर का संकुचन होता है। इस प्रकार श्वसन क्रिया का प्रभाव उदर प्रदेश पर पड़ता है।

2.5 श्वसनतंत्र की क्रियाविधि (Machanism of Respiratory System)

जिस समय नासिका से श्वास लिया जाता है उस समय बाह्य वातावरण से वायु नासिका एवं नासिका गुहा में प्रवेश करती है। नासिका में गुहा में उपस्थित सूक्ष्म रोम केशों का जाल धूल एवं धुंए के कणों को छान देता है। यहां पर उपस्थित संवेदी नाड़ियां वायु की गन्ध का ज्ञान मस्तिष्क को करती है। यहां से आगे यह वायु ग्रसनी में पहुंच जाती है। ग्रसनी में उपस्थित कण्ठच्छद (Epiglottis) अन्न नलिका के द्वार को बन्द कर देता है जिससे यह वायु स्वर यन्त्र से होती हुई श्वास नलिका में चली जाती है। श्वास नलिका में रोमिकाएं पायी जाती है तथा यहां पर श्लेष्मा ग्रन्थियां श्लेष्मा का स्रावण करती रहती है। इसके परिणामस्वरूप वायु के साथ आए धूल, धुंए, सूक्ष्म जीव आदि इस नलिका में चिपक जाते हैं।

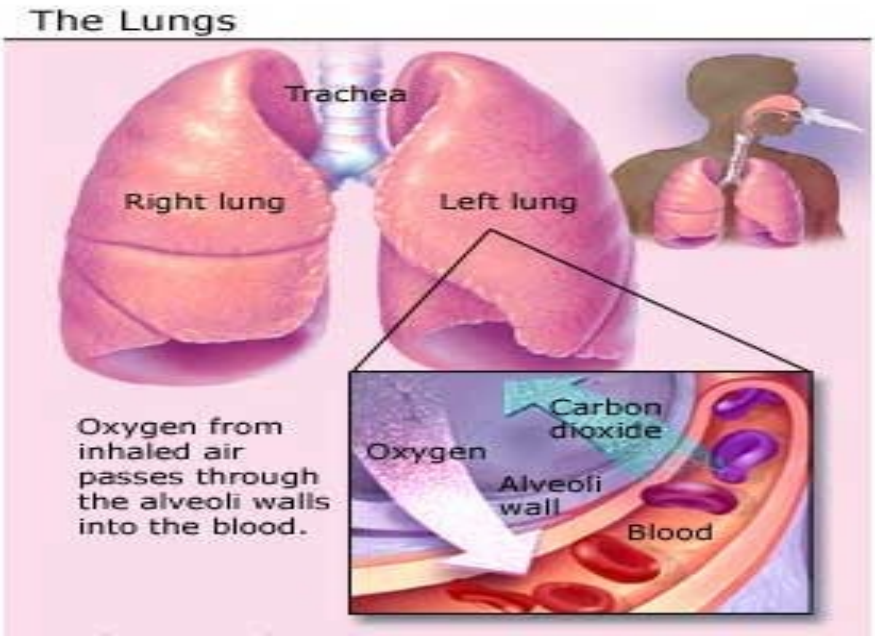

चित्र 2 .1 श्वसनतंत्र

श्वास नलिका से वायु क्रमशः दाहिने एवं बाएं फेफड़ों में भर जाती है। श्वास नलिका से श्वसनी एवं श्वसनी से श्वसनिकाओं में होती हुई यह वायु आगे चलकर वायु कोषों में भर जाती है। वायु भरने के कारण ये वायुकोष फूल जाते हैं। ये वायुकोष एककोशीय दीवारों के बने होते हैं तथा

इन वायुकोषों के मध्य रक्तवाहिनीयों का घना जाल उपस्थित होता है। इन रक्तवाहिनियों में हृदय से आया कार्बन डाई आक्साइड की अधिकता युक्त अशुद्ध रक्त भरा होता है। इस प्रकार यहाँ वायुकोषों एवं रक्त वाहिनियों के मध्य गैसों का आदान प्रदान होता है।

गैसों के आदान-प्रदान के परिणामस्वरूप बाह्य वायु मण्डल की आक्सीजन रक्तवाहिनीयों में चली जाती है एवं रक्त वाहिनियों में उपस्थित कार्बन डाई आक्साइड वायु कोषों में भर जाती है। तत्पश्चात वायुकोषों से कार्बनडाई आक्साइड श्वसनिकाओं में, श्वसनिकाओं से श्वसनी में, श्वसनी से श्वासनलिका में, श्वासनलिका से स्वर यन्त्र, ग्रसनी से होती हुई नासिका के माध्यम से बाह्य वायुमण्डल में भेज दी जाती है, श्वसन की यह क्रिया निःश्वसन कहलाती है।

2.6 श्वसन दर (Respiratory Rate)-

एक मिनट में एक मनुष्य जितनी संख्या में श्वास-प्रश्वास की क्रिया करता है, श्वसन दर कहलाती है। बाल्यावस्था के प्रथम पॉच वर्षो में शरीर का विकास तेज होने के कारण श्वसन दर तीव्र जो आगे चलकर (व्यस्क अवस्था) 16-18 श्वास प्रति मिनट स्थिर हो जाती है। एक नवजात शिशु की श्वसन दर प्रति मिनट 40 होती है, यह श्वसन दर उम्र बढ़ने के साथ कम होती हुई 16-18 श्वास प्रति मिनट पर स्थिर हो जाती है। स्त्रियों में पुरूषों की तुलना में श्वसन दर कुछ अधिक होती है। इस श्वसन दर पर कार्य, परिस्थिति, स्थान आदि कारक सीधा प्रभाव रखते हैं। स्वच्छ वातावरण एवं शान्त अवस्था में श्वसन दर कम हो जाती है जबकि इसके विपरित प्रदूषित वातावरण, क्रोध एवं चिड़चिड़ाहट की स्थिति में श्वसन दर बढ़ जाती है।

मनुष्यों में श्वसन क्रिया स्वचलित रुप में चलती रहती है। इस क्रिया पर कुछ काल तक ऐच्छिक नियंत्रण सम्भव होता है, किन्तु शरीर की कोशिकाओं में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा बढ़ने पर श्वास लेने के लिये बाध्य होना पडता है। मनुष्य में श्वसन क्रिया का नियन्त्रण मस्तिष्क में स्थित मेड्यूला नामक स्थान से होता है। शरीर की विभिन्न अवस्थाओं में यह केन्द्र श्वसन दर को कम एवं अधिक बनाता हैं। शरीर के अधिक क्रियाशील होने पर श्वसन दर बढ़ जाती है जबकि शरीर द्वारा कार्य नही करने की दशा में श्वसन दर कम हो जाती है। कठिन श्रम की अवस्था में भी श्वसन दर बढ़ जाती है। बाह्य जीवाणु अथवा रोगाणु से संक्रमण की अवस्था में जब शरीर का तापक्रम बढ़ जाता है तब ऐसी अवस्था में श्वसन दर बढ़ जाती है। पहाड़ों में ऊँचे स्थानों पर जाने पर अथवा आक्सीजन की कमी वाले स्थानों पर जाने पर श्वसन दर बढ़ जाती है। क्रोध, भय एवं मानसिक तनाव आदि विपरित अवस्थाओं में श्वसन दर त्रीव हो जाती है। इसके विपरीत सहज एवं

सकारात्मक परिस्थितियों में श्वसन दर कम एवं श्वास की गहराई बढ़ जाती है। श्वसन दर त्रीव होने पर फेफड़े तेजी से कार्य करते हैं किन्तु इस अवस्था में फेफड़ों का कम भाग ही सक्रिय हो पाता है, जबकि लम्बी एवं गहरी श्वसन क्रिया में फेफडों का अधिकतम भाग सक्रिय होता है जिससे फेफड़ें स्वस्थ बनते हैं।

2.7 वायु की धारिता:

एक मनुष्य द्वारा प्रत्येक श्वास में जिस मात्रा में वायु ग्रहण की जाती है तथा प्रश्वास में जिस मात्रा में वायु छोड़ी जाती है इस मात्रा की नाप वायु धारिता कहलाती है। इसे नापने के लिए स्पाइरोमीटर (Spirometer) नामक यंत्र का प्रयोग किया जाता है। मनुष्य की वायु धारिता के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं का वर्णन इस प्रकार है-

1. **प्राण वायु (Tidal volume)** वायु की वह मात्रा जो सामान्य श्वास में ली जाती है तथा सामान्य प्रश्वास में छोड़ी जाती है प्राण वायु कहलाती है। यह मात्रा 500 एम एल होती है। यह मात्रा स्त्री और पुरुष दोनों में समान होती है

2. **प्रश्वसित आरक्षित (Inspiratory Reserve Volume)** -

सामान्य श्वास लेने के उपरान्त भी वायु की वह मात्रा जो अतिरिक्त रूप से ग्रहण की जा सकती है। प्रश्वसित आरक्षित आयतन कहलाती है। वायु की यह मात्रा 3300 एम एल होती है।

3. **निश्वसित आरक्षित आयतन (Expiratory Reserve Volume)**

सामान्य प्रश्वास छोड़ने के उपरान्त भी वायु की वह मात्रा जो अतिरिक्त रूप से बाहर छोड़ी जा सकती है, निश्वसित आरक्षित आयतन कहलाती है। वायु की यह मात्रा 1000 एम एल होती है।

4. **अवशिष्ट आयतन (Residual Volume)** -

हम फेफड़ों को पूर्ण रूप से वायु से रिक्त नहीं कर सकते अपितु गहरे प्रश्वास के उपरान्त भी वायु की कुछ मात्रा फेफड़ों में शेष रह जाती है, वायु की यह मात्रा अवशिष्ट आयतन कहलाती है। वायु की इस मात्रा का आयतन 1200 एम एल होता है।

5. **फेफड़ों की प्राणभूत वायु क्षमता (Residual Volume)**

गहरे श्वास में ली गयी वायु तथा गहरे प्रश्वास में छोड़ी गयी वायु का आयतन फेफड़ों की प्राणभूत वायु क्षमता कहलाती है। वायु की यह मात्रा 4800 एम एल होती है।

6. **फेफड़ों की कुल वायु धारिता (Total lung capacity)** -

फेफड़ों द्वारा अधिकतम वायु ग्रहण करने की क्षमता फेफड़ों की कुल वायु धारिता कहलाती है। वायु की यह मात्रा 6000 एम एल होती है।

2.8 आन्तरिक श्वसन:

आपने जाना कि बाह्य श्वसन तंत्र के माध्यम से बाह्य वायुमण्डल से वायु (आक्सीजन) फेफड़ों की वायुकोषों में भर जाती है। यहां पर गैसों के आदान-प्रदान की क्रिया होती है। यहीं से आन्तरिक श्वसन तंत्र की संरचना का प्रारम्भ होता है। आन्तरिक श्वसन तंत्र को ऊतकीय श्वसन के नाम से भी जाना जाता है। यह श्वसन क्रिया का अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग है क्योंकि यहां से यह वायु रक्त के साथ मिल जाती है तथा रक्त के साथ परिभ्रमण करती हुई सम्पूर्ण शरीर की कोशिकाओं में फैल जाती है। वितरण के उपरान्त यह वायु भोजन रस (ग्लूकोज) के दहन की क्रिया में उपभोग में ले ली जाती है तथा दहन (आक्सीकरण) की क्रिया में कार्बनडाई आक्साइड गैस की उत्पत्ति होती है इस कार्बनडाईआक्साइड गैस को कोशिकाओं एवं ऊतकों से रक्त के माध्यम पुनः फेफड़ों में लाया जाता है।

आन्तरिक श्वसन के प्रकार

आन्तरिक श्वसन का अर्थ भोजन से उत्पन्न रस (ग्लूकोज) के दहन एवं दहन की क्रिया में उत्पन्न ऊर्जा से होता है। आन्तरिक श्वसन के फलस्वरुप शरीर के अन्दर स्थित कोशिकाएं ऊर्जा प्राप्त करती हैं। इस क्रिया में भोजन से प्राप्त ग्लूकोज का दहन होता है। आन्तरिक श्वसन की इस क्रिया में ग्लूकोज का दहन दो प्रकार से होता है -

(क) **आक्सी श्वसन** (Aerobic Respiration)

जब कोशिका में आक्सीजन उपस्थित होती है तब आक्सीजन की उपस्थिति में ग्लूकोज का पूर्ण रूप से आक्सीकरण होता है तथा इस क्रिया में जल के साथ-साथ अधिकतम ऊर्जा की उत्पत्ति होती है। ग्लूकोज के एक अणु के आक्सी श्वसन के परिणामस्वरूप 38 ए.टी.पी. की उत्पत्ति होती है। मनुष्य की अधिकांश कोशिकाओं में आक्सी श्वसन की क्रिया के परिणामस्वरूप ऊर्जा उत्पन्न होती है।

$$C_6H_{12}O_6 + 6\,O_2 \longrightarrow 6\,CO_2 + 6\,H_2O + 38\,ATP$$

ग्लूकोज आक्सीजन का. डाईआक्साइड जल ऊर्जा

(ख) **अनाक्सी श्वसन** (Anaerobic Respiration)

जब कोशिका में आक्सीजन की उपस्थिति नहीं होती किन्तु शरीर को तुरन्त ऊर्जा की अत्यधिक आवश्यकता होती है। ऐसी अवस्था में कोशिका ग्लूकोज का दहन आक्सीजन की अनुपस्थिति में ही कर देती है। यह क्रिया अनाक्सी श्वसन कहलाती है। इस क्रिया में ग्लूकोज का आंशिक विघटन होता है तथा ग्लूकोज के एक अणु के दहन के परिणामस्वरूप बहुत कम ऊर्जा (2 ए.टी.पी.) की ही उत्पत्ति होती है। मनुष्य शरीर में अनाक्सी श्वसन कठिन श्रम की अवस्था, तेज भागने, कठिन व्यायाम की अवस्था में होता है।

$C_6H_{12}O_6 \longrightarrow 2C_2H_5COCOOH + ATP$

ग्लूकोज लैक्टिक अम्ल ऊर्जा

इस प्रकार अनाक्सी श्वसन के परिणामस्वरूप लैक्टिक एसिड की उत्पत्ति होती है इस लैक्टिक एसिड की अधिकता पेशियों में थकावट उत्पन्न करती है।

2.9 गैसों का विनियम (Exchange of gases):

आन्तरिक श्वसन का प्रारम्भ फेफड़ों में गैसें के विनिमय से होता है।

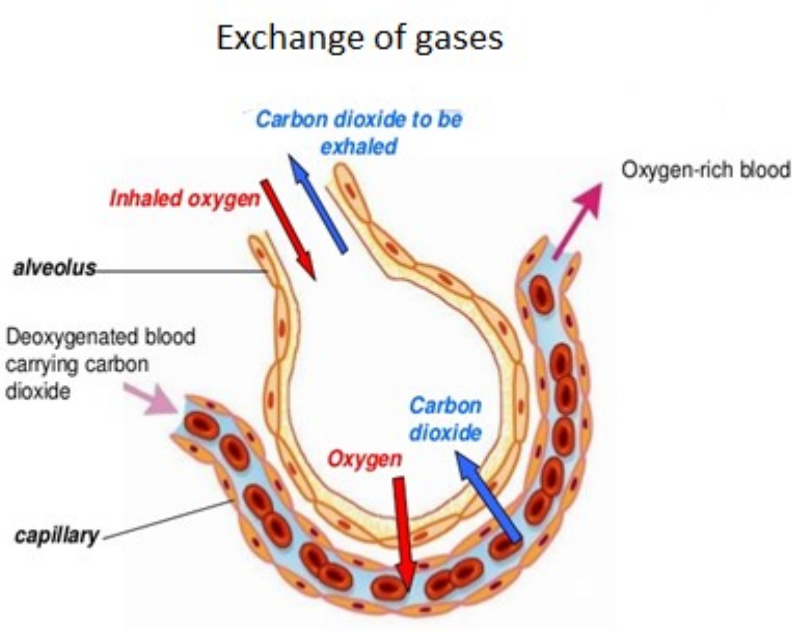

चित्र 2.2 गैसों का विनियम

फेफड़ों के वायुकोष एक कोशीय दीवारों के बने होते हैं तथा यहीं पर एक कोशीय दीवारों की घनी रक्त वाहिनियों का जाल होता है। इन रक्त वाहिनियों एवं वायुकोषों के मध्य गैसों के आदान-प्रदान की क्रिया होती है तथा यहाँ से आक्सीजन रक्त में स्थित लौह युक्त रंजक पदार्थ हिमोग्लोबिन के साथ जुड़कर आक्सी हिमोग्लोबिन नामक अस्थाई यौगिक का निर्माण करती है। यह यौगिक रक्त के माध्यम से शरीर की विभिन्न कोशिकाओं में पहुंचकर आक्सीजन को मुक्त कर देता है। इस मुक्त आक्सीजन का उपभोग कोशिका आक्सीश्वसन में करती है। आक्सीश्वसन के परिणामस्वरूप कार्बनडाई आक्साइड गैस की उत्पत्ति होती है। यहाँ हिमोग्लोबिन पुनः कार्बनडाईआक्साइड के साथ मिलकर अस्थाई यौगिक कार्बोक्सी हिमोग्लोबिन का निर्माण करता है। कार्बोक्सी हिमोग्लोबिन रक्त के साथ हृदय एवं फेफड़ों तक पहुंचता है। फेफड़ों में हिमोग्लोबिन कार्बनडाईआक्साइड को मुक्त कर देता है तथा यह कार्बन डाईआक्साइड प्रश्वास के रूप में बाह्य श्वसन तंत्र की सहायता से बाहर निकाल दी जाती है। इस क्रियाविधि को निम्न समीकरण द्वारा आसानी से समझा जा सकता है –

फेफड़ों में हीमोग्लोबिन का आक्सीजन के साथ जुड़ना

$Hb + O_2 \longrightarrow HbO_2$

हीमोग्लोबिन + आक्सीजन → आक्सी हीमोग्लोबिन

कोशिका में हीमोग्लोबिन द्वारा आक्सीजन मुक्त करना

$HbO_2 \longrightarrow Hb + O_2$

आक्सी हीमोग्लोबिन → हीमोग्लोबिन आक्सीजन

कोशिका में हीमोग्लोबिन का कार्बन डाईआक्साइड के साथ जुड़ना

$Hb + CO_2 \longrightarrow HbCO_2$

हीमोग्लोबिन कार्बन डाईआक्साइड → कार्बोक्सी हीमोग्लोबिन

फेफड़ों में हीमोग्लोबिन द्वारा कार्बन डाईआक्साइड मुक्त करना

$HbCO_2 \longrightarrow Hb + CO_2$

कार्बोक्सी हीमोग्लोबिन → हीमोग्लोबिन कार्बन डाईआक्साइड

श्वसन की क्रिया में हीमोग्लोबिन अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का वहन करता है। हीमोग्लोबिन रक्त में उपस्थित एक ऐसा यौगिक होता है जो आक्सीजन को फेफड़ों से लेकर शरीर

की आन्तरिक कोशिकाओं तक पहुँचाने का कार्य करता है, इसी प्रकार यह हीमोग्लोबिन आन्तरिक कोशिकाओं में स्थित कार्बन डाई गैस को फेफड़ों तक पहुँचाने का कार्य करता है। एक स्वस्थ मनुष्य के प्रति 100 एम.एल. रक्त में 12 से 16 मिली ग्राम हीमोग्लोबिन पाया जाता है। सुखी, सम्पन्न, प्रसन्नचित्त व्यक्तियों का रक्त प्राय हीमोग्लोबिन से परिपूर्ण पाया जाता है, ऐसे व्यक्तियों की कार्यक्षमता अधिक एवं इनके चेहरे पर तेज पाया जाता है। इसके विपरित जो दुखी, निराश, हताश, समस्याओं से घिरे हुए एवं हीनता से ग्रस्त रहते हैं उनके रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा कम हो जाती है ऐसे व्यक्तियों की कार्यक्षमता कम हो जाती है। रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा कम होने पर आक्सीजन तथा कार्बनडाईआक्साइड गैसों का परिवहन भलीभाँति नहीं हो पाता जिससे कोशिकाओं में आन्तरिक श्वसन की क्रिया बाधित होती है तथा कोशिकाओं में ऊर्जा उत्पत्ति की क्रिया धीमी पड़ जाती है। ऊर्जा उत्पत्ति की क्रिया धीमी पडने से उस व्यक्ति की कार्यक्षमता कम हो जाती है। ऐसी अवस्था में भोजन में लौहयुक्त पदार्थो जैसे पालक, सेब, गाजर, चुकुन्दर आदि का अधिक सेवन करने से रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा बढ़ जाती है तथा व्यक्ति की कार्यक्षमता बढ़ जाती है।

2.10 प्रश्वसित एवं निश्वसित वायु की संरचना-

श्वसन के रूप में अन्दर ग्रहण की गयी वायु प्रश्वसित वायु कहलाती है। इस वायु में सबसे अधिक नाइट्रोजन गैस की मात्रा होती है इसके बाद आक्सीजन गैस होती है तथा इसमें अल्प मात्रा में कार्बनडाइ आक्साइड की मात्रा भी रहती है। प्रश्वसित वायु की संरचना इस प्रकार है-

1.	नाइट्रोजन	78 प्रतिशत
2.	आक्सीजन	21 प्रतिशत
3.	कार्बन डाईआक्साइड	0.03 प्रतिशत
4.	अन्य गैसें	0.93 प्रतिशत

फेफड़ों में गैसों के विनिमय की क्रिया में ऑक्सीजन एवं कार्बन डाईआक्साइड का आदान-प्रदान होता है तथा वहां उपस्थित कार्बन डाई आक्साइड को प्रश्वास के रूप में बाहर निकाला जाता है। इस निश्वसित वायु की संरचना इस प्रकार है-

1.	नाइट्रोजन	78 प्रतिशत
2.	ऑक्सीजन	16 प्रतिशत
3.	कार्बन डाईआक्साइड	4.5 प्रतिशत

4. अन्य गैसें 1.5 प्रतिशत

इस प्रकार अन्दर ग्रहण की गयी वायु में आक्सीजन की मात्रा अधिक होती है जबकि बाहर निकाली वायु में आक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है एवं कार्बन डाईआक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है।

2.11 **श्वसन का नियंत्रण-**

श्वसन क्रिया अनैच्छिक रूप से प्रतिक्षण स्वतः ही होती रहती है। इस क्रिया का नियन्त्रण केन्द्र मस्तिष्क में स्थित होता है। इस क्रिया पर हमारी इच्छा का कुछ नियंन्त्रण अवश्य पाया जाता है किन्तु यह पूर्ण रूप से हमारी इच्छा के अधीन कार्य नहीं करती है। इस क्रिया के नियन्त्रण को दो भागों में बाँटा जा सकता है-

क. तंत्रिका नियन्त्रण

ख. रासायनिक नियन्त्रण

क. **तंन्त्रिका नियन्त्रण-**

मस्तिष्क में स्थित सेरिबरल कोर्टेक्स इच्छित रूप से श्वसन क्रिया को नियन्त्रित करने का कार्य करता है जबकि मस्तिष्क के मैडूयला नामक स्थान को श्वसन केन्द्र माना गया है। इस केन्द्र से स्वतः ही श्वसन क्रिया नियन्त्रित होती रहती है तथा आवश्यकतानुसार श्वसन दर बढ़ाई एवं घटाई जाती है। चूंकि मस्तिष्क शरीर की समस्त क्रियाओं का नियंत्रण, नियामन एवं समन्वयन करता है। इसी समन्वयन क्रिया के अन्तर्गत मस्तिष्क श्वसन दर को घटाता एवं बढ़ाता रहता है। जब शरीर में अधिक ऊर्जा का प्रयोग होता है तब श्वसन दर अधिक हो जाती है एवं जब शरीर में कम ऊर्जा का प्रयोग होता है उस अवस्था में श्वसन दर कम हो जोती है, इसका नियंत्रण मस्तिष्क से होता है।

ख. **रासायनिक नियन्त्रण-**

रक्त में कुछ रासायनिक पदार्थो की मात्रा बढ़ने पर स्वतः ही श्वसन दर को बढ़ा देती है। शरीर में कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ (हार्मोन्स) का स्रावण होने पर श्वसन दर बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए अधिवृक्क ग्रन्थियों से एड्रीनलीन नामक हार्मोन के स्रावण होने पर श्वसन दर बहुत तीव्रता से बढ़ती है जबकि पीनियल ग्रन्थि से मेलाटानिन नामक हार्मोन के स्रावण होने पर श्वसन दर स्वतः ही कम हो जाती है। रक्त में आक्सीजन की सान्द्रता कम होने पर एवं कार्बन डाई आक्साइड की सान्द्रता बढ़ने पर श्वसन दर बढ़ जाती है। श्वसन नियन्त्रण इस प्रकार समझा जा सकता है-

2.11 आन्तरिक श्वसन का हृदय से सम्बन्ध-

आन्तरिक श्वसन का हृदय के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। क्योंकि हृदय के द्वारा ही आक्सीजन युक्त रक्त सम्पूर्ण शरीर में भेजा जाता है तथा शरीर के विभिन्न भागों से कार्बन डाईआक्साइड युक्त रक्त एकत्र किया जाता है। श्वसन दर का हृदय दर के साथ एक ओर चार का अनुपात होता है अर्थात 18 श्वास प्रतिमिनट लेने पर हृदय 72 बार स्पंदन करता है। वहीं श्वसन दर कम होने पर हृदय की धड़कन भी कम हो जाती है तथा इसके विपरित श्वास गति बढ़ने पर हृदय स्पंदन की दर इसी अनुपात में बढ़ जाती है। जब भी कठोर श्रम किया जाता है तब उसमें अधिक ऊर्जा की खपत होती है इस ऊर्जा की पूर्ति करने के लिए आन्तरिक श्वसन की दर बढ़ जाती है तथा इसी अनुपात में हृदय की स्पदन दर भी बढ़ जाती है जबकि गहन विश्राम की अवस्था में जब शरीर की चयापचय दर न्यूनतम हो जाती है, इस अवस्था में श्वसन की दर कम हो जाती है तथा हृदय की स्पदन दर कम हो जाती है।

वातावरण में आक्सीजन की मात्रा कम होने पर जैसे अधिक ऊँचाई पर जाने पर श्वसन दर एवं हृदय की गति बढ़ जाती है। इसका कारण यह होता है कि प्रति मिनट अधिक श्वसन करने पर ही शरीर को कोशिकाओं को आवश्यक आक्सीजन प्राप्त हो पाती है।

2.12 श्वसन क्रिया को प्रभावित करने वाले कारक-

श्वसन एक अनैच्छिक क्रिया के रूप में प्रतिक्षण शरीर में चलने वाली क्रिया है। यह क्रिया विभिन्न कारकों से प्रभावित होती है।इनमें से कुछ महत्वपूर्ण कारकों का वर्णन इस प्रकार है-

1.प्रदूषण एवं घुटन युक्त वातावरण- प्रदूषण एवं घुटन युक्त वातावरण के प्रभाव से शरीर की कोशिकाओं को प्रर्याप्त मात्रा में आक्सीजन प्राप्त नहीं हो पाती परिणाम स्वरूप पहले श्वसन क्रिया तीव्र होती है तथा यदि श्वसन क्रिया तीव्र होने पर भी आक्सीजन की पूर्ति नहीं होती तब सिर दर्द, उल्टी, चक्कर, बेचैनी तथा बेहोशी आदि लक्षण प्रकट होते है। लम्बे समय तक ऐसे वातावरण में रहने पर दमा, एलर्जी, श्वासनली सूजन तथा फेफड़ों के कैंसर आदि रोग जन्म लेते है। वातावरण में कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) गैस की उपस्थिति होने पर जब श्वसन क्रिया के साथ यह गैस फेफड़ों में भरती है, तब रक्त में स्थित हीमोग्लोबिन इसके साथ बहुत तेजी से जुडता है। हीमोग्लोबिन आक्सीजन की तुलना मे कार्बन मोनोऑक्साइड के साथ 230 गुणा तेजी से जुडकर एक स्थाई यौगिक का निमार्ण करता है। यह स्थाई यौगिक कोशिका में पहुंच कर भी हिमोग्लोबिन को मुक्त नही करता, परिणाम स्वरुप पहले सिरदर्द, घुटन व बैचेनी आदि लक्षण प्रकट होते हैं तथा

आगे चलकर आक्सीजन के अभाव में शरीर की कोशिकाएं मृत होने लगती हैं। इस अवस्था में दम घुटने से व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

2.**आहार** -आहार का श्वसन क्रिया एवं वृक्कों की क्रियाशीलता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। तेज नमक एवं मिर्च मसाले युक्त उत्तेजक आहार का सेवन करने से श्वसन क्रिया एवं वृक्कों की क्रियाशीलता बढ़ती है। आहार में कृत्रिम एवं रासायनिक पदार्थों की अधिकता होने पर भी श्वसन दर बढ़ जाती है।

श्वसन क्रिया एवं वृक्कों पर दवाईयां उत्तेजक प्रभाव रखती है। दवाईयों का अधिक सेवन करने वाले मनुष्य की श्वसन दर एवं चयापचय दर प्रायः बढ़ी रहती है तथा ऐसे मनुष्यों के हाथों-पैरों में सूक्ष्म कम्पन होने लगता है।

3.**श्रमहीन जीवन शैली**-श्रम करने पर शरीर में ऊर्जा की अधिक मात्रा का उपयोग होता है इसकी पूर्ति के लिए श्वसन क्रिया तेज हो जाती है तथा फेफड़ों का अधिकांश भाग क्रियाशील होकर कोशिकाओं को आक्सीजन की पूर्ति करता है। इसके विपरित जीवन में श्रम का पूर्ण अभाव होने पर फेफड़ों की क्रियाशीलता कम होती चली जाती है तथा ऐसी अवस्था में फेफड़ों का केवल एक चौथाई भाग ही सक्रिय रहता है जबकि शेष तीन चौथाई भाग निष्क्रिय पडा रहता है। फेफड़ों के इस निष्क्रिय भाग में टी0 बी0 आदि के जीवाणु अपना आश्रय बना लेते है जो दमा, टी0 बी0, श्वास फूलना आदि रोग पैदा करते है। ऐसी मनुष्य की कार्यक्षमता लगातार कम होती चली जाती है।

4.**प्रातःकालीन भ्रमण एवं योगाभ्यास**-प्रातःकालीन भ्रमण का श्वसन क्रिया पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है चूकि प्रातःकाल में वातावरण में प्रदूषण का न्यूनतम स्तर होता है अतः इस समय घूमने एवं व्यायाम आदि करने से फेफड़ों की प्राण ऊर्जा बढ़ती है, फेफड़ों की वायु धारिता बढ़ती है तथा फेफड़ों का अधिक से अधिक भाग क्रियाशील होता है। योगाभ्यास श्वसन क्रिया को सुव्यवस्थित एवं नियंत्रित बनता है। यौगिक क्रियाओं का जैसे षट्कर्म, आसन, प्राणायाम एवं ध्यान आदि अभ्यास श्वसन तंत्र को कफ, मेद एवं श्लेष्मा आदि दोषों से मुक्त रखता है। इन क्रियाओं का अभ्यासी व्यक्ति सर्दी जुकाम, खाँसी, न्यूमोनिया, ब्रोन्काइटिस, टी.बी. व दमा आदि श्वसन रोगों से मुक्त रहता है।

5.मानसिक आवेग-मानसिक आवेग जैसे क्रोध, ईष्या, भय, तनाव, अवसाद एवं हिंसक वृन्ति श्वसन क्रिया में बाधाएं उत्पन्न करती है। इन अवस्थाओं में श्वसन क्रिया अत्यधिक तीव्र हो जाती

है, हृदय गति तीव्र एवं अनियंत्रित हो जाती है तथा रक्तचाप बढ़ जाता है। इसके विपरित मन में सकारात्मक विचार एवं विश्रान्ति की भावना श्वसन क्रिया को स्थिरता प्रदान करती है। ध्यान का अभ्यास करने पर श्वसन क्रिया धीमी एवं दीर्घ बनती है। इससे श्वसन सम्बन्धी रोग दूर होते है एवं सम्पूर्ण श्वसन तंत्र को आराम मिलता है।

2.14 सारांश:

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ चुके होंगे कि श्वसन क्रिया शरीर की अत्यन्त महत्वपूर्ण क्रिया है। इस क्रिया के अंतर्गत बाह्य वायुमण्डल से वायु ग्रहण की जाती है यह वायु श्वसन अंगों के द्वारा फेफड़ों में भर जाती है। फेफड़ों से यह वायु रक्त में मिल जाती है। रक्त में स्थित हिमोग्लोबिन नामक पदार्थ इस वायु में उपस्थित आक्सीजन को अपने साथ जोड़कर एक अस्थाई यौगिक का निर्माण कर लेता है। तत्पश्चात यह रक्त सम्पूर्ण शरीर की कोशिकाओं में जाकर आक्सीजन मुक्त कर देता है तथा कोशिकाओं में उपस्थित कार्बन डाई आक्साइड को ग्रहण कर लेता है। यह रक्त हृदय से होता हुआ फेफड़ों में आता है तथा फेफड़ों में कार्बन डाईआक्साइड को मुक्त कर देता है। यह कार्बन डाईआक्साइड गैसें निश्वसन के रूप में शरीर से बाहर निकल जाती है।

एक स्वस्थ मनुष्य प्रति मिनट 16-18 बार श्वसन क्रिया करता है। इसे श्वसन दर कहा जाता है। इस श्वसन दर का नियन्त्रण तन्त्रिका तंत्र एवं रासायनिक पदार्थो के द्वारा होता है।यद्यपि श्वसन शरीर में प्रतिक्षण होने वाली अनैच्छिक क्रिया है जिस पर वातावरण, जीवन शैली, दिनचर्या, मानसिक स्थिति एवं श्रम-विश्राम आदि कारक अपना प्रभाव रखते है। साफ स्वच्छ वातावरण, शुद्ध आहार सुव्यवस्थित दिनचर्या एवं जीवन शैली तथा सकारात्मक सोच विचार श्वसन तंत्र को स्वस्थ, सक्रिय एवं निरोगी बनाते है। ऐसा व्यक्ति श्वसन तंत्र से सम्बन्धित रोगों से मुक्त जीवन व्यतीत करता है। ये कारक वाह्य श्वसन तंत्र के साथ-साथ आन्तरिक श्वसन तंत्र को भी सक्रिय एवं स्वस्थ बनाते हैं। इसके परिणामस्वरूप रक्त शुद्ध स्वच्छ एवं हीमोग्लोबिन से परिपूर्ण रहता है तथा शरीर में गैसों का परिवहन भली भांति होता है।

2.15 अभ्यास हेतु प्रश्न:

सत्य असत्य-

1. बाल्यावस्था में विकास की दर तीव्र होने के कारण श्वसन दर धीमी होती है।
2. स्वर यन्त्र के आगे का भाग ग्रसनी कहलाता है।

3. स्वर रज्जुओं की तानता तथा उनके मध्य अवकाश पर ध्वनि का स्वरूप निर्भर करता है।
4. मनुष्य में श्वसन क्रिया का नियन्त्रण मस्तिष्क में स्थित मेड्यूला नामक स्थान से होता है।
5. स्त्रियों की प्राण वायु पुरुषों से अधिक होती है।
6. आन्तरिक श्वसन में ग्लूकोज का दहन दो प्रकार से होता है।
7. मनुष्य की अधिकांश कोशिकाओं में अनाक्सी श्वसन की क्रिया के परिणाम स्वरूप ऊर्जा उत्पन्न होती है।
8. रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा बढ़ने से व्यक्ति की कार्यक्षमता घटती है।
9. अधिवृक्क ग्रन्थियों से एड्रीनलीन नामक हार्मोन के स्रावण होने पर श्वसन दर बहुत तीव्रता से बढ़ती है।
10. अधिक ऊँचाई पर जाने पर श्वसन दर व हृदय गति कम हो जाती है।

2.16 **शब्दावली:**

- आक्सीकरण - आक्सीजन की उपस्थिति में दहन क्रिया
- ए0टी0पी0 - एडोनोसीन ट्राई फास्फेट(ऊर्जा युक्त अणु)
- प्रश्वास - वातावरण की वायु अन्दर ग्रहण करना
- निश्वास - फेफड़ों की वायु को बाहर वातावरण में छोड़ना
- विनिमय - आदान-प्रदान
- अनैच्छिक - इच्छा के नियन्त्रण से मुक्त
- स्पंदन - धड़कन
- उपभोग - प्रयोग
- आश्रय - शरण लेना
- मेद - वसा
- यौगिक - दो अथवा अधिक तत्वों के मिलने से उत्पन्न तत्व

2.17 **अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:**

क. असत्य,	ख. असत्य,	ग.सत्य,	घ.सत्य,	ड.असत्य
क. सत्य,	ख. असत्य,	ग.असत्य,	घ सत्य,	ड़ असत्य

2.18 संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान- प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
2. शरीर और शरीर क्रिया विज्ञान - मंजु तथा महेश चन्द्र गुप्ता, सांई प्रिन्ट, नई दिल्ली।
3. मानव शरीर रचना भाग एक, दो, तीन - मुकुन्द स्वरुप वर्मा, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
4. Textbook of Physiology (Vol.1) - Prof. A.K. Jain, Avichal Publishing Company, Sirmour (H.P.) Essentials of Medical Physiology – K.Sembulingam&Prema Sembulingam, Medical Publishers (P) Ltd. New Delhi.
5. The Fundamentals of Human Physiology (Vol.1) - Dr. G.C. Agarwal, Acupressure Research Centre, Allahabad.

2.19 निबन्धात्मक प्रश्न:

1. श्वसन तंत्र की संरचना सचित्र समझाइये।
2. आंन्तरिक श्वसन की संरचना, प्रकार एवं क्रिया विधि सविस्तार समझाइये।
3. श्वसन में प्रयुक्त प्रश्वसित एवं विश्वसित वायु की संरचना लिखिए।
4. श्वसन नियंत्रण को समझाते हुए श्वसन को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक लिखिए।

इकाई –3 कंकाल तन्त्र

इकाई संरचना-

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 अस्थि कंकाल: एक परिचय
3.3.1 कंकाल के कार्य
3.3.2 अस्थियों का आकार – प्रकार
3.3.3 अस्थियों का संगठन एवम रचना
3.3.4 अस्थि पंजर में अस्थियों की संख्या
3.4 संधि परिचय
3.5 संधियों की रचना
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
3.9 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना:

मानव शरीर विभिन्न तंत्रों से मिलकर बना है। शरीर का एक अति महत्वपूर्ण संस्थान कंकाल तंत्र है। मानव शरीर का ढाँचा अस्थियों से मिलकर बना है। अस्थियों के इस ढाँचे को अस्थि पंजर या कंकाल तंत्र कहते है। यह कंकाल शरीर के कोमल अंगों को सुरक्षा प्रदान करता है। अस्थियों से बना मानव शरीर का ढाँचा, जो कि अलग आवृत्ति की होने के कारण शरीर के अलग - अलग हिस्सों को सहारा, सुरक्षा एवं गति प्रदान करता है।

3.2 उद्देश्य:

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- ❖ अस्थि संस्थान अथवा कंकाल तंत्र के विषय में सामान्य परिचर्चा प्राप्त कर सकेंगे।
- ❖ कंकाल के विभिन्न कार्यों की विवेचना कर सकेंगे।

- ❖ अस्थि पंजर में अस्थियों के आकार, उनके संगठन के विषय में जान सकेंगे।
- ❖ अस्थियों की संरचना, उनके स्थान एवं स्वरूप को जान सकेंगे।
- ❖ संधियों के विषय में जानेंगे।

3.3 अस्थि कंकाल: एक परिचय:

शरीर की रचना का आधार अस्थियां हैं। अस्थियां शरीर की कठोरतम रचना है। यह शरीर अस्थि कंकाल के सहारे टिका रहता है। जिस प्रकार वृक्ष की स्थिति उसके सार भाग पर स्थित होती है , उसी प्रकार मनुष्य का शरीर भी अस्थि रूपी सार के द्वारा धारण किया जाता है। शरीर की कोमल वस्तुएं त्वचा, मांस आदि के नष्ट होने पर भी अस्थियां नष्ट नहीं होती। इसी कारण इन्हें शरीर का सार कहा जाता है।

मांस पेशियां, शिरायें और स्नायु, अस्थियों पर ही आस्रित होकर रहते हैं। अस्थियों का आलम्बन मिलने से न तो वे नष्ट होती हैं और न ही अपने स्थान से च्युत होती हैं। मूल रूप से अस्थियाँ नियमित रूप से बढ़ने वाली, अपने आकार को नियमिति करने वाली अपने अन्दर होने वाली किसी भी प्रकार की टूट - फूट को ठीक करने में सक्षम है। मनुष्य का अस्थि संस्थान विभिन्न प्रकार के ऊतकों का समूह है।

1. अस्थि ऊतक (Bone or Osseous tissue)
2. उपास्थि (Cartilage)
3. घन संयोजी ऊतक (Dense Connective tissue)
4. उपकला ऊतक (Epithelium)
5. मेदवह ऊतक (Adipose tissue)
6. नाड़ी वह ऊतक (Nervous tissue)

इसी कारण एक अस्थि को अपने आप में एक अव्यव (Organ) माना जा सकता है। अस्थि समूह को अस्थिवह संस्थान के अन्तर्गत रखा जाता है। मानव शरीर में अस्थियों की कुल संख्या 206 है। शरीर के अन्य अंग प्रत्यंगों के ही समान ये भी विकसित अथवा वृद्धि को प्राप्त होती है। वृद्धावस्था आने पर जीर्ण होती है और व्यायामादि द्वारा मजबूत होती है। हमारे शरीर के भार का 18 प्रतिशत हिस्सा अस्थियों से बना है।

मांसपेशी, पेशीबन्धन, बन्धनी आदि अस्थियों से लिपटे रहते हैं। मानव शरीर का बाह्य स्वरूप इसी ढाँचे के अनुरूप होता है। विभिन्न अस्थियाँ जिस स्थान पर आपस में जुड़ी होती है। उस स्थान को संधि कहते है।

हड्डियों के बीच में रिक्त स्थान होते है। जिनमें मज्जा भरी होती है। मज्जा एक प्रकार का द्रव है। यह दो प्रकार का होता है लाल एवं पीली। लाल मज्जा में रक्त की लाल एवं सफेद कोशिकाओं का निर्माण होता है। पीली मज्जा में मेद वाही कोशिका (Fat Cells) होते है।

3.3.1 कंकाल के कार्य -

1. यह शरीर के कोमल अंगों, मांसपेशियों के लिए आधार का कार्य करती है।
2. शरीर के कोमल एवं प्रमुख अंगों की सुरक्षा इनका प्रमुख कार्य है। यह मस्तिष्क, हृदय आदि को बाहरी आघात से सुरक्षा प्रदान करते है।
3. शरीर को कार्य करने, चलने - फिरने आदि के योग्य बनाना।
4. यह शरीर के लिए उपयोगी खनिज कैल्शियम, फास्फोरस आदि का संग्रह करते है और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें रक्त में पुनः लौटा देते हैं।
5. लाल रक्त कोशिकाओं का निर्माण बड़ी अस्थियों के मध्य में स्थित लाल मज्जा (Red bone marrow में होता है।
6. पीली मज्जा में मेद (Fat) जमा होती है।
7. मांस पेशियों, स्नायु ,कला और कंड्राओं आदि को आधार प्रदान करना और इनकी क्रिया का आधार भी अस्थियां है ।

3.3.2 अस्थियों का आकार - प्रकार -

अस्थियों के आकार और संरचना के आधार पर अस्थियों के निम्न पाँच प्रकार कहे गए हैं –

1. **लम्बी अस्थियाँ (Long Bones)** - यह अस्थियाँ लम्बी होती है। इनके बीच के भाग को दण्ड (Shaft) कहते है। इसके दो सिर (Head) होते है। यह लम्बाई में बढ़ती है। जैसे उरू अस्थि (Femur), प्रगण्डास्थि (Humorous) आदि।
2. **छोटी अस्थियाँ (Short Bones)** - यह हड्डियाँ लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई में लगभग बराबर होती है। यह कलाई में (Carpals) एवं टकनों में पायी जाती है।
3. **चपटी अस्थियाँ Short Bones)** - यह चपटे आकार की होती है। जैसे सिर की अस्थियाँ, (Skull Bones)] असफलक आदि।
4. **असमाकृति अस्थियाँ (Irregular Bones)** - यह विषमाकार अस्थियाँ है और किसी भी प्रकार में नहीं रखी जा सकती है । जैसे कशेरूका **(Vertebrae)** नितम्बास्थि **(Hip Bone)** आदि।

5. **कण्डरास्थि (Sea-maid Bones)**- यह कण्डराओं (Tendons)] या जोड़ों में विकसित होने वाली हड्डियाँ है। जैसे जन्वास्थि (Patella)

3.3.3 अस्थियों का संगठन एवं रचना –

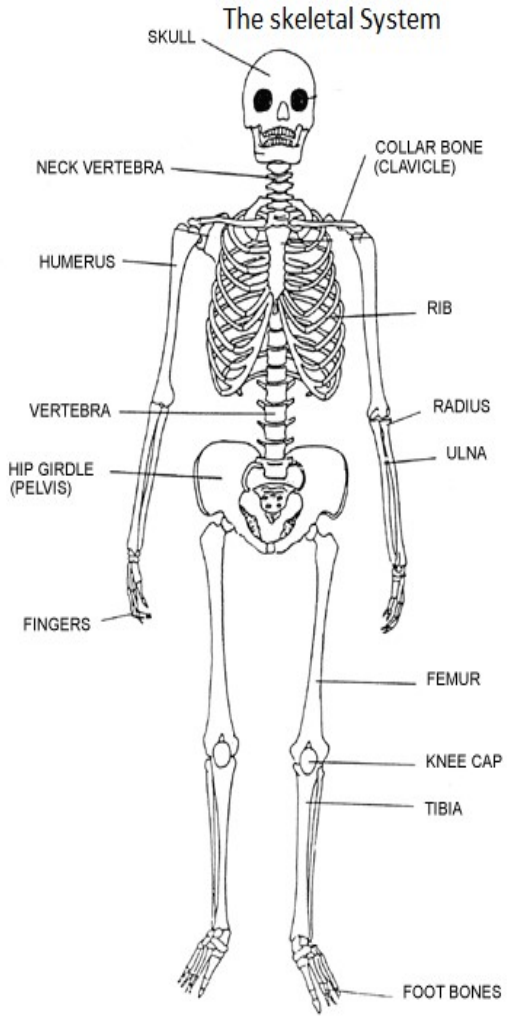

चित्र 3.1 कंकाल तंत्र

अस्थियाँ भले ही अन्य अंगों की तरह कोमल न दिखें पर इनमें बढ़ने, किसी भी प्रकार की टूट - फूट को ठीक करने की क्षमता होती है और इसका कारण इनमें मौजूद चार प्रकार की कोशिकाऐं है -

1. **आस्टिओजैनिक कोशिका (Osteogenic Cells)** - यह विभाजन में सक्षम अस्थि कोशिका है यह आस्टिओब्लास्ट का निर्माण करते हैं। यह अस्थि आवरक कला के अन्दरूनी भाग में पाए जाते हैं।
2. **आस्टिओब्लास्ट (Osteoblasts)** - यह कोशिकाऐं अपने चारों तरफ कोलैजन (Collagen) नामक प्रोटीन एवं कैल्शियम आदि का स्राव कर अस्थि निर्माण करते हैं।
3. **आस्टिओसाइट (Osteocytes)** - यह अस्थि निर्माण कर चुकी कोशिकाऐं हैं जो अस्थियों के बीच में बारीक रिक्त स्थान में होती है। इनमें कोई विभाजन नहीं होता है।
4. **आस्टियोक्लास्ट (Osteoclast)** - यह बड़ी - बड़ी कोशिका होती है और इसका कार्य अस्थि को घोलकर सोखना है। जिससे उनका आकार नियंत्रित हो सके।

इनके अलावा अस्थियों में आस्टियोब्लास्ट द्वारा स्रावित **कोलेजन** (Collagen) नामक **प्रोटीन**, **कैल्शियम कार्बोनेट** (Calcium Carbonate)कैल्शियम फॉस्फेट (Calcium Phosphate) **मैग्नीशियम , पोटेशियम** आदि खनिज होते है। व्यस्क की अस्थियों का दो तिहाई हिस्सा खनिज लवणों से बना होता है।

कोलेजन से अस्थियों में लचक और खजिन लवणों से मजबूती आती है। इनके कारण ही हड्डियों में स्टील जितनी मजबूती होती है।

3.3.4 अस्थि पंजर में अस्थियों की संख्या -मनुष्य शरीर में कुल 206 हड्डियाँ पायी जाती है। अंगों के आधार पर इनकी गणना निम्न प्रकार की जा सकती है।

1.	कपाल (Cranium) में	- 8
2.	चेहरा (Face) में	- 14
3.	कान (Ear) में	- 6
4.	गले में हाइऑइड (Hyoid) में	- 1
5.	रीढ़ (Spinal Column) में	- 26
6.	पसली (Ribs) में	- 24
7.	छाती (Sternum) में	- 1
8.	उर्ध्व शाखा (प्रत्येक हाथ में 30)	- 60
9.	अधो शाखा (प्रत्येक पैर मे 30)	-60
10.	नितम्बास्थि	- 2
11.	अक्षकास्थि (Clavicle)	- 2
12.	स्कन्धास्थि (Scapula)	- 2
	योग	=206

इन अस्थियों का विशेष विवरण निम्न प्रकार है -

1. **कपाल** - कपाल में कुल 22 अस्थियाँ है। इनको दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। कपाल (Cranial) अस्थि, चेहरे (Facial) अस्थियाँ। कपाल की अस्थियाँ, मस्तिष्क को सुरक्षा प्रदान करती है। चेहरे की अस्थियाँ निम्न है।

1. **नासास्थि (Nasal Bones)**	-	**2**
2. **उर्ध्वहन्वास्थि (Maxilla Bones)**	-	**2**
3. **कपोलास्थि (Zygomatic Bones)**	-	**2**
4. **अधोहन्वास्थि (Mandible Bones)**	-	**2**
5. **अश्रुअस्थि (Lactic Bones)**	-	**2**
6. **तालु अस्थि (Palatine Bones)**	-	**2**
7. **अधः शुक्तिकास्थि (Inferior nasal Bones)**	-	**2**
8. **नासाफलकास्थि (Bomber)**	-	
कुल	-	**14**

इनमें से केवल अधोहन्वास्थि ही चल संधि युक्त है। कपाल अस्थियाँ 8 है।

1. **ललाटास्थि (Frontal Bone)**
2. **पार्ष्विकास्थि (Parietal Bone)**
3. **शंखास्थि (Temporal Bone)**
4. **पष्च कपालास्थि (Occipital Bone)**
5. **कीलकास्थि (Sphenoid Bone)**
6. **झर्झरास्थि (Ethmoid Bone)**

इसके अलावा सिर में कान की अस्थियाँ भी मिलती हैं जो तीन अस्थियों का जोड़ा है - मुद्गर **(Malleus)** नेहाई **(Incus)** रकाब **(Stapes).**

कपाल में दो रन्ध्र भी मिलते है। ब्रहम्रन्ध्र और अधिपति रन्ध्रा। यह बच्चों में एक वर्ष होने तक भर जाते है।

1. **गर्दन (Neck) की अस्थियाँ** - गर्दन में कुल आठ अस्थियाँ होती है। जिसमें एक आगे की तरफ श्वास नलिका के आगे की तरफ होती है। जिसे हाइआइड **(Hyoid)** अस्थि कहते हैं। बाकी सात ग्रीवा कशेरूका है जिनके बीच में कशेरूका रन्ध्रक होता है **(Vertebral Foramen)**। इसमें से सुषुम्ना नाड़ी **(Spinal Cord)** रहती है।
2. **वक्ष (Thorax Bone)** की अस्थियाँ - वक्ष के बीचों बीच आगे की तरफ उर्वास्थि **(Sternum)** होता है। यह चपटी अस्थि है। पसलियाँ आगे की तरफ इसी अस्थि से

जुड़ी रहती है। पसलियाँ उर्वास्थि के दोनों तरफ 12 की संख्या होती है। जिनमें से ऊपर की 10 उर्वास्थि से जुड़ी रहती है। बाकी की 2 जिन्हें फ्लोटिंग रिब्स **(Floating Ribs)** कहते हैं।यह उर्वास्थि से नहीं जुड़ी होती है। पीछे की ओर यह 12 वक्षीय कशेकरूकाओं से जुड़ी रहती है। इनका कार्य हृदय और फेफड़ों की रक्षा करना है। कशेरूका के कशेरूक रन्ध्रक से सुषुम्ना नाड़ी होती है। इनके अलावा एक अक्षकास्थि **(Clavicle)** और एक स्कन्धास्थि **(Scapula)** भी है।

3. **उदर एवं श्रोणी की अस्थियाँ** - उदर में केवल पाँच कशेरूका होती है। जिसके रन्ध्रक में सुषुम्ना नाड़ी सुरक्षित रहती है।

   श्रोणी में दो नितम्बास्थि एक त्रिकास्थि और एक अनुत्रिकास्थि होती है। त्रिकास्थि अनुत्रिकास्थि में सुषुम्ना की नाड़ियाँ सुरक्षित रहती है। पैर उर्वास्थि नितम्बास्थियों से जुड़ी रहती है।

4. **भुजाओं की अस्थियाँ** - हर भुजा में सबसे ऊपर की तरफ प्रगण्डास्थि होती है। जो स्कन्धास्थि से जुड़ा रहता है। इस सन्धि को स्कन्ध संधि कहते है। नीचे की तरफ प्रण्डास्थि बहिःकोष्ठाअस्थि एवं अन्तः प्रकोष्ठास्थि से जुड़ी होती है। इस संधि को कूर्पर संधि कहते है। हाथ की कलाई 8 मणिबन्ध की अस्थियाँ से बनती है। यह 8 अस्थियाँ चार - चार अस्थियों की दो पंक्तियों में लगी होती है। इन अस्थियों से हथेली की 5 शलाकास्थियाँ जुड़ी होती है। जिनके अग्रभाग में अंगुलियों की अस्थियाँ होती है। हर अंगुली में तीन अंगुलास्थि होती है और अंगूठे में दो अंगुलास्थि होती है।

5. **टाँगों की अस्थियाँ** - जाँघ की अस्थि को उर्वास्थि **(Femur)** कहते है। यह नितम्बास्थि से जुड़ी होती है नीचे की तरफ यह अन्तर्जघास्थि **(Tibia)** और बहिर्जघास्थि **(Fibula)** से जुड़ी होती है। इसी जोड़ में ऊपर की तरफ जान्वास्थि **(Patella)** होती है। एड़ी में 7 गुल्फास्थियाँ **(Tarsals)** होती है। इनसे 5 अनुगुल्फास्थियाँ **(metatarsals)** जुड़ी होती है। इनसे प्रत्येक पैर की अंगुली की तीन अंगुलास्थियाँ और पैर के अंगूठे से दो अंगुलास्थि जुड़ी होती है। इस प्रकार मनुष्य के कंकाल में कुल 206 हड्डियाँ होती है।

3.4 संधि परिचय:

शरीर में कहीं दो या दो से अधिक अस्थियाँ मिलकर एक-दूसरे से जुड़ती है वह ही जोड़ या सन्धियां बनती हैं। संन्धियों के कारण ही शरीर में किसी भी प्रकार की गति संभव हो पाती है। लेकिन कुछ संधियों गतिशील नही होती। संधि संस्थान में अस्थियों, उपस्थियों, स्नायुओं, तन्तुमय ऊतक एवम शलेषक कला का समावेश होता है।

क्रिया अथवा गति के आधार पर सन्धियों के निम्न भेद कहे गए हैं।

1. **सिनाथ्रोसिस (Synarthrosis)** - यह वह संधियाँ है जिनमें बिल्कुल भी गति संभव नहीं है। इस प्रकार की संधियाँ कपाल में मिलती है। यह पूर्ण अचल संधियाँ हैं।

2. **एम्फी आर्थोसिस (Amphiarthrosis)** - यह अर्ध चल संधियाँ है। जिसमें बहुत कम गति संभव हैं। अन्तः और बहिर्जंघास्थि संधि इसका उदाहरण है।

3. **डाय - आर्थोसिस (Amphiarthrosis) -** यह पूर्ण चल संधियाँ है जिनमें अत्यधिक गति संभव है जैसे कूर्पर संधि **(Elbow Joint)**] स्कन्ध संधि **(Shoulder Joint)** इत्यादि।

संरचना के आधार पर संधियों को निम्न तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

1. **तन्तुमय संधियाँ (Fibrous Joints)**
2. **उपस्थिमय संधियाँ (Cartilaginous Joints)**
3. **साइनोवियल संधियाँ (Synovial Joints)**

1. **तन्तुमय संधियाँ (Fibrous Joints)** - यह वह संधियाँ है जिनमें तन्तुमय संयोजी ऊतक से जुड़ी होती है। इनमें या तो बिल्कुल भी गति संभव नहीं होती है या कुछ गति संभव होती है।

   I. **सूचर्स (Sutures)**- यह कपाल की संधि में पाए जाते है। यह केवल नवजात शिशु में ही अर्धचल होते है बाद में यह पूर्ण अचल हो जाते हैं।

   II. **सिण्डेस्मोसिस (Syndesmosis)** - इनमें अस्थियाँ स्नायुओं **(ligaments)** से बहुत मजबूती से जुड़ी होती है। जिस कारण इनमें बहुत मजबूती से जुड़ी होती है। जिस कारण इनमें बहुत कम गति संभव होती है। अधः अन्तर्जघास्थि और बहिर्जघास्थि संधि इसका उदाहरण है।

   III. **गोम्फोसिस (Gomphosis)** - दाँत और जबड़े की संधि इसका उदाहरण है। इसमें जबड़े में बने गर्तो में दाँत गड़े होते है।

2. **उपास्थिमय संधियाँ (Cartilaginous Joints)**- इनमें अस्थियाँ उपास्थि **(Cartilage)**]

से जुड़ी होती है। इसके दो प्रकार हैं।

I. **सिन्कान्ड्रोसिस (Synchondrosis)** - यह विकासशील अस्थियों में पाए जाते है। इनमें गति संभव नहीं होती है। अस्थि विकास पूर्ण होने पर यह अस्थि भाग जुड़ जाते है औ एक लम्बी अस्थि का निर्माण करते हैं। यह लम्बी अस्थियाँ मध्य और सिरा भाग के बीच में एक होने से पहले (पूर्ण विकास से पहले) पाए जाते है।

II. **सिम्फाइसिस (Symphyses)** - इसमें अस्थि के बीच में तन्तुमय कार्टिलेज **(Fibro Cartilage)** होती है जिससे इनमें बहुत कम गति संभव होती है। उदाहरण - कशेरूका संधि **(Intervertebral Joint)**

3. **साइनोवियल संधियाँ (Synovial Joints)** - यह शरीर की अधिकांश संधियाँ है। इनमें अत्यधिक गति संभव है। (चल संधि) इन संधियों में अस्थियों के जोड़ वाले भाग पर उपास्थि की परत चढी होती है। यह भाग एक संधि कैप्सूल **(Joint capsule)** नामक झिल्ली से ढका रहता है और इसके अन्दर चिकना द्रव **(Synovial Fluid)** भरा होता है। इनके उदाहरण कोहनी, घुटने, टखने आदि की संधियाँ है। इन्हें संधि भाग **(Articular surface)** के आधार पर छः भागों में बाँटा गया है –

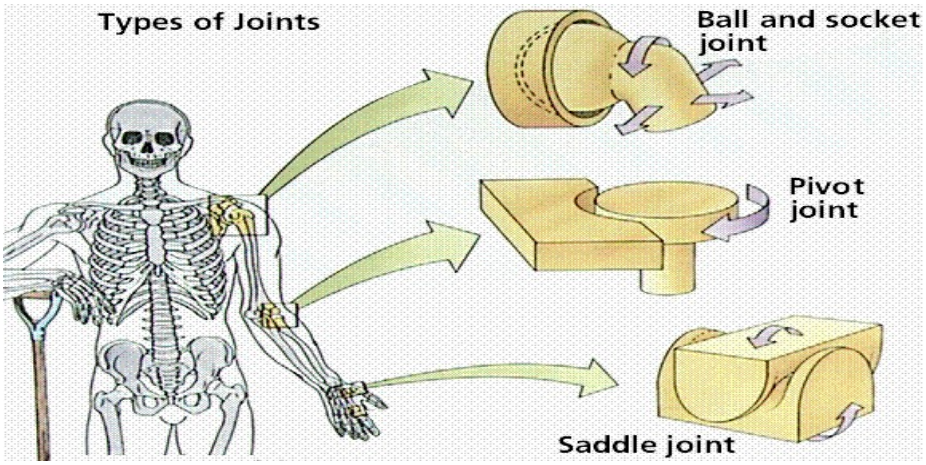

चित्र 3.2 संधि

a. **संसपी/प्रसर संधि (Gliding/Planar Joint)** - यह कलाई की हड्डियों के बीच में पाई जाती है।

b. कोर/ कब्जेदार संधि **(Hinge capsule)** - यह घुटने, कोहनी की संधि है।
c. धुराग्र / कीलदार संधि **(Pivot Joint)** - यह बहिर्प्रकोष्ठास्थि और अन्तःप्रकोष्ठास्थि **(Radio – ulna Joint)** में मिलती है।
d. **कौन्डाइलाइड संन्धि -** यह वहिप्रकोष्ठास्थि और मणिबन्ध अस्थि संधि में पाई जाती है। उदाहरण यह संधि घुटने के जोड़ में पायी जाती है।
e. **सैडल संधि (Saddle Joint)** - यह मणिबन्ध और शलाकास्थियों **(Carpo – Metacarpal joint)** की सं्धि में मिलता है।
f. **गेंद - बल्ला संधि (Ball and Socket Joint)** - यह स्कन्ध संधि आदि में मिलती है। शरीर की सभी संधियों को उपरोक्त प्रकारों में बाँटा जा सकता है।

3.5 संधियों की रचना:

शरीर में संधियों का प्रयोजन गति होता है। इसलिए इनकी रचना भी इस प्रकार की है कि अस्थियाँ गति कर सकें और साथ ही अपने स्थान से च्युत भी न हों। प्रत्येक संधि पर एक तंतुक या स्नायविक कोशिका चढ़ी रहती है, जो संपूर्ण संधियों को ढकती हुई संधि में भाग लेने वाली अस्थियों के सिरों पर लगी रहती है। इस तंतुस्तर के विशेष भागों का विशेष विकास हो जाता है और वे अधिक दृढ हो जाते हैं। इन भागों को स्नायु कहते हैं, जो भिन्न भिन्न संधियों में भिन्न भिन्न संख्या में होती है। तंतुस्तर के भीतर स्नेहकस्तर होता है, जो अस्थियों के ऊपर तक पहुँचकर उन्हें ढक लेता है। जिन संधियों के भीतर संघायक चक्रिका (articular dise) रहती है, वहाँ स्नेहक स्तर की एक परत सघायंक चक्रिका के ऊपर भी फैली होती है, जिससे स्नेहक स्तर तथा संघायक चक्रिका के बीच में, स्नेहक कला की खाली में, स्नेहक द्रव्य उपस्थित हो जाता है। यह स्नेहक द्रव्य संधिस्थित अस्थि के भागों को चिकना रखता है और उनको रगड़ से बचाता है।

स्नायु

स्नायु (Ligaments) तंतुमय ऊतक के समांतर सूत्रों के लबें पट्ट होते हैं। इनसे दो अस्थियों के दोनों सिरे जुड़ते हैं। इनके भी दोनों सिरे दो अस्थियों के अविस्तारी भागों पर लगे रहते हैं। ये स्नायु कोशिका के बाहर स्थित रहती है और कुछ भीतर। भीतरी स्नायु की संख्या कम होती है।

श्लेष्मल आवरण (Mucous sheath)

यह पेशियों को स्नायुओं (ligaments) पर चढ़ा रहता है। इन आवरणों की दो परतों के बीच एक द्रव होता है, जो विशेषकर उन स्थानों पर पाया जाता है, जहाँ स्नायु अस्थि के संपर्क में आती है। इससे संधि के कार्य के काल में स्नायुओं में कोई क्षति नहीं होने पाती।

स्नेहपुटी (Bursa)

यह भिन्न आकार की झिल्ली होती है, जिसकी स्नेहक कला (synovial membrane) की कोशिका में गाढ़ा स्निग्ध द्रव्य भरा रहता है। यह उन अस्थियों के पृष्ठों के बीच अधिक रहती है, जो एक दूसरे पर रगड़ खाती हैं, या जिन संधियों में केवल सरकने की क्रिया होती है।

संधियों में होनेवाली गतियाँ

प्रत्येक चल संधि में मांसपेशियों की सिकुड़न और प्रसार से निम्नलिखित क्रियाएँ होती है :

- ❖ आकुंचन (flexion),
- ❖ विस्तार (extension),
- ❖ अभिवर्तन (adduction),
- ❖ अपवर्तन अपवर्तन (abduction),
- ❖ पर्यावर्तन (circumduction),
- ❖ परिभ्रमण (rotation), एवं
- ❖ विसर्पन (gliding)

1.6 सारांश:

आपने जाना कि मानव शरीर का ढाँचा अस्थियों से मिलकर बना है। अस्थियों के इस ढाँचे को अस्थि पंजर या कंकाल तंत्र कहते है। यह कंकाल शरीर के कोमल अंगों को सुरक्षा प्रदान करता है। मांस पेशियां, शिरायें और स्नायु, अस्थियों पर ही आस्रित होकर रहते हैं । अस्थियों का आलम्बन मिलने से न तो वे नष्ट होती हैं और न ही अपने स्थान से च्युत होती हैं । मूल रूप से अस्थियाँ नियमित रूप से बढ़ने वाली, अपने आकार को नियमिति करने वाली अपने अन्दर होने वाली किसी भी प्रकार की टूट - फूट को ठीक करने में सक्षम है।

दो या दो से अधिक अस्थियों के जोड़ को सन्धि कहते है। संन्धियों के कारण ही शरीर में किसी भी प्रकार की गति संभव हो पाती है।प्रत्येक संधि पर एक तंतुक या स्नायविक कोशिका चढ़ी रहती है, जो संपूर्ण संधियों को ढकती हुई संधि में भाग लेने वाली अस्थियों के सिरों पर लगी रहती है। इस तंतुस्तर के विशेष भागों का विशेष विकास हो जाता है और वे अधिक दृढ हो जाते हैं। इन भागों को स्नायु कहते हैं, जो भिन्न भिन्न संधियों में भिन्न भिन्न संख्या में होती है।

3.7 शब्दावली:

1. कार्बनिक पदार्थ - कार्बन युक्त पदार्थ
2. अस्थि - हड्डी
3. कंकाल - अस्थियों का समूह
4. बन्धनी - स्नायु
5. स्नायु - दो अस्थियों को जोड़ने वाले प्रतानवत/ सूत्र रचनाऐं

3.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न:

प्रश्न 1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

क) हमारे शरीर के भार का .....हिस्सा अस्थियों से है।

ख) जिस स्थान में अस्थियाँ आपस में जुड़ी होती है। उसे .....कहते है।

ग) कंकाल का प्रमुख कार्य कोमल एवं .....अंगों की रक्षा करना होता है।

घ) मनुष्य शरीर में छोटी - बड़ी कुल अस्थियों की संख्या .....है।

ड़) रचना के आधार पर अस्थियों को .....प्रकारों में बाँटा जा सकता है।

2. सत्य / असत्य बताइये -

क) हड्डियों के बीच में रिक्त स्थान में मज्जा होती है।

ख) चेहरे की अस्थियों की संख्या 14 होती है।

ग) गेंद एवं बल्ला संधि हाथों की अंगुलियों में पायी जाती है।

स्वमूल्यांकन प्रश्नों के उत्तर :

(क) 18 प्रतिशत, (ख) सन्धि, (ग) प्रमुख अंगों, (घ) 206 (ड) 5

सत्य/असत्य-

(क) 18 सत्य (ख) सत्य (ग) असत्य

3.9 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

- ❖ गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
- ❖ गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

- ❖ प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिजियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।
- ❖ शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
- ❖ पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
- ❖ वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
- ❖ दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा।
- ❖ सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।
- ❖ अग्रवाल, जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न:

1. अस्थि संस्थान का परिचय दीजिए, एवं कंकाल तंत्र के कार्यो का वर्णन कीजिए?
2. अस्थियों के संगठन एवं रचना का वर्णन कीजिए तथा अस्थियों की संख्या का वर्णन कीजिए ?
3. संधियों का परिचय दीजिए?

इकाई 4 पेशी तंत्र

इकाई संरचना

4. 1 प्रस्तावना

4. 2 उद्देश्य

4. 3 मांस संस्थान अथवा पेशी तंत्र - एक परिचय

4.3.1 पेशियों का नामकरण

4.3.2 पेशियों का उद्गम एवं निवेशन

4.3.3 पेशियों की बनावट

4. 4 मांसपेशियों के भेद

4.5.1 ऐच्छिक पेशियाँ

4.5.2 अनैच्छिक पेशियाँ

4. 5 पेशियों के कार्य एवं गतियाँ

4. 6 शरीर की मुख्य पेशियाँ

4.7 सारांश

4. 8 शब्दावली

4. 9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

4 .10 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4. 11 सहायक पाठ्य सामग्री

4. 12 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना:

पिछले इकाई में आपने जाना कि शरीर की रचना का आधार अस्थियां हैं। मांस पेशियां, शिरायें और स्नायु, अस्थियों पर ही आस्रित होकर रहते हैं।

इस इकाई में आप पेशी प्रणाली का अध्ययन करेंगे । पेशी प्रणाली एक अंग प्रणाली है जिसमें कंकाल, चिकनी और हृदय की मांसपेशियों को शामिल किया गया है। यह शरीर के गति की अनुमति देता है और पूरे शरीर में खून फैलता है। रीढ़ में पेशी तंत्र तंत्रिका तंत्र के माध्यम से नियंत्रित होता है। पेशी प्रणाली मानव शरीर के गति के लिए जिम्मेदार है।

इस इकाई में आप पेशी प्रणाली के बनावट, कार्य व उनकी संख्याओं के बारे में जानेंगे ।

4 .2 उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

- ❖ पेशियों के उद्गम एवं निवेशन के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ❖ पेशियों की बनावट तथा मांसपेशियों के भेदों का विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे।
- ❖ पेशियों के विभिन्न कार्यो एवं गतियों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ❖ शरीर की मुख्य पेशियों के बारे में व पेशियों की संरचना एवं कार्यों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

4 .3 मांस संस्थान अथवा पेशी तंत्र - एक परिचय:

शरीर के विभिन्न अंगों का निर्माण अनेक कोशिकाओं एवं उनके समूह ऊतकों द्वारा ही होता है। इन्हीं कोशिकाओं से ही मांसपेशी की उत्पत्ति होती है। मांसपेशी के प्रत्येक तन्तु में अनेक कोशिकाएं होती है। मनुष्य शरीर का अधिकांश वाह्य व आन्तरिक भाग मांसपेशियेां से ढका रहता है। शरीर का ऊपरी हिस्सा पूर्ण रूपेण मांसाच्छादित होने के कारण ही शरीर सुन्दर तथा सुडौल दिखाई देता है।

मांसपेशियां अथवा मांस एक लसदार समूह को कहते हैं। मांसपेशियां या तो मांस के गुच्छे के रूप में होती है या एक - एक मांस सूत्र के रूप में होती हे। इन पेशियों में 'संकोचन' का विशेष गुण पाया जाता है। इस संकुचन के गुण के कारण ही हम अपने हाथ - पाव, सिर आदि शारीरिक अंगों को विभिन्न दिशाओं में घुमा सकते हैं तथा उनके द्वारा विभिन्न कार्य किये जा सकते हैं। जैसे - मुँह का खोलना, तथा बंद करना, हाथों से लिखना, पाँवों से चललना आदि, हृदय की धड़कन, भोजन का सरककर गले से नीचे उतरा, आँखों की पुतलियों का सिकुड़ना और फैलना आदि भी इन्हीं के कारण सम्पन्न होते हैं ।

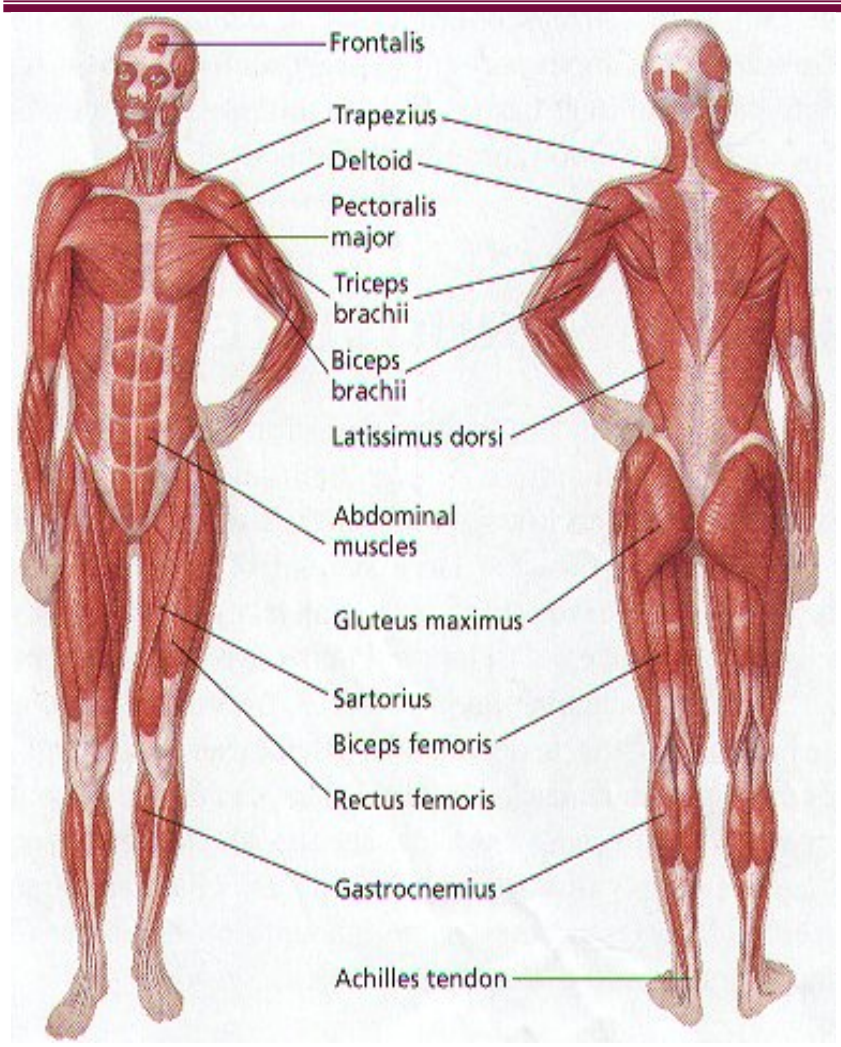

चित्र 4.1

4.3.1 पेशियों का नामकरण-

पेशियों के नाम, उनकी बनावट के आधार पर, उनके कार्य के आधार पर शरीर में उनकी स्थिति एवं उनके तन्तुओं की दिशा के आधार पर रखा जाता है। उदाहरण के लिए - कार्य के आधार पर पेशियों का नामकरण - बांह की पेशी (Flexor Policies Longs) नामक पेशी या आकृति के आधार पर डेस्टाइड (Deltoid Muscle) जो कि डेस्टा के आकार की है व स्थिति के आधार पर External Intercostals and Internal Intercostals पेशियों के नाम रखे गये है।

4.3.2 पेशियों का उद्गम एवं निवेशन-

I. **उद्गम** - उद्गम से तात्पर्य पेशी का वह सिरा जो पेशीय संकुचन होने पर स्थिर अवस्था में होता है। वह सिरा अस्थि जिस हिस्से से जुड़ता है उस स्थल या सम्बन्धित स्थान को उद्गम स्थल कहा जाता है। पेशियों के उनके कार्य के अनुसार उनके उद्गम स्थल में परिवर्तन होते रहते है। पेशी का उद्गम स्थल सामान्यतः अक्षीय कंकाल के अधिक समीप रहता है।

II. **निवेशन** - पेशी के निवेशन का अर्थ पेशी के गतिशील से है। अर्थात् अस्थि के उस हिस्से (स्थल) से पेशी का निवेशन होता है। सामान्यतः पेशी का उद्गम अक्षीय कंकाल (Axial Skeleton) के अधिक समीप होता है, तथा निवेशन दूरस्थ जुड़ाव होता है। पेशियों की क्रिया के अनुसार ही इनके उद्गम स्थल परिवर्तित होते है, साथ ही निवेशन स्थल भी परिवर्तित हो जाते है।

4.3.3 पेशियों की बनावट-

पेशियों की बनावट पेशी तन्तुओं के विभिन्न आकारों में व्यवस्थित होने के कारण होती है। तन्तुओं की विभिन्न व्यवस्थाओं के फलस्वरूप ही पेशियों की शक्ति, गतिशीलता, स्थिरता, लचीलापन आदि होता है। पेशी के मध्य भाग के लम्बे होने से पेशी में गति अधिक होती है। मोटी पेशी में शक्ति अधिक होती होगी। किसी पेशी में तन्तुओं की संख्या अधिक है तो उस पेशी में शक्ति अधिक होती है। यह पेशियाँ विभिन्न आकार - प्रकार की होती है। फेशीकिल्स (Fascicles) जो कि कंकालीय तन्तु के छोटे - छोटे गुच्छों के समूह होते है। इसी फेशीकल्स की व्यवस्था तथा उनके टेन्डम्स से जुड़ाव स्ट्रेप पेशी, पंख के समान पीनेट पेशी तथा गोलाकार पेशी मुख की ऑर्बिकुलेरिस ओरिस, आँखों की पेशी आर्बिकुलेरिस ऑक्यूलाइ प्रेशी आदि है। स्ट्रेप पेशी का उदाहरण - गर्दन की स्टर्नोहाइड पेशी उदरीय भित्ती की रेक्टस एण्डोमिनिस पेशी, फ्यूजीफार्म पेशी का उदाहरण - बाँह की बाइसेप्स पेशी, यह तकले के आकार की हाती है।

4.4 मांसपेशियों के भेद:

मानव शरीर में छोटी - बड़ी कुल 519 मांसपेशियां पायी जाती है। इनके निम्नलिखित दो भेद माने जाते है -

1.ऐच्छिक पेशी (Voluntary)

2.अनैच्छिक पेशी (Non Voluntary)

4.4.1 **ऐच्छिक पेशियाँ**- ऐच्छिक पेशी को पराधीन मांसपेशी भी कहते है। ये मांसपेशियां मनुष्य की इच्छानुसार कार्य करती है। ऐच्छिक पेशियों का प्रयोग करना या ना करना मनुष्य की इच्छा पर निर्भर करती है। ऐच्छिक पेशियाँ जैसे हाथ - पाँव आदि की मांसपेशियाँ।

4.4.2 **अनैच्छिक पेशियाँ** -अनैच्छिक मांसपेशी को स्वाधीन मांसपेशी भी कहते हैं । ये मांसपेशियां स्वतंत्र रूप से अपना कार्य करती है तथा मनुष्य इन मांसपेशियों को अपनी इच्छानुसार नहीं चला सकता है। अनैच्छिक मांसपेशियों अपना कार्य निरन्तर दिन - रात करती ही रहती है। जैसे - श्वसन संस्थान की मांसपेशीयां, हृदय की पेशी, अग्न्याशय, अन्ननली आदि की मांसपेशियां स्वतः ही अपना कार्य निरन्तर करती ही रहती है।

4.5 पेशियों के कार्य एवं गतियां:

पेशियों के क्रियात्मक होने के कारण ही शरीर में विभिन्न अंगों में गति संभव होती है। जिससे मनुष्य विभिन्न प्रकार के कार्यो को सम्पादित कर पाता है। सामान्यतः पेशियों में निम्न गतियाँ होती रहती है। जैसे – पेशियों में आकुंचन (Flexion) प्रसारण (Extension) तथा अपवर्तन, (Refraction) अभिवर्तन (Adduction) एवं घूर्णन (Rotation) तथा पर्यावर्तन (Circumduction)।

पेशियाँ शरीर के विभिन्न भागों में गति लाने के लिए समूहों (Group) में कार्य करती है। पेशियों का समूह, दूसरे समूह के विरूद्ध कार्य करने के कारण उसका विरोधी (Antagonist) कहलाता है। संकोचक पेशी शरीर के किसी भी भाग में गति का कार्य करती है। वे अविरोधी (Agonists) होती है। जो इनके विपरीत कार्य करती है । वे प्रतिरोधी पेशियाँ (Antagonists) होती है। अपवर्तक पेशी व अभिवर्तक पेशियाँ एक - दूसरे के विरोधी होती है। कुछ पेशियाँ स्थिरीकारक पेशियां (Fixates) होती है जो भुजा के भागों को तब स्थिर रखती है। जब शरीर के अन्य भाग में गति हो रही हो। ऐसी पेशियाँ जो गति उत्पन्न करती है तथा दो या दो से अधिक हो, उन्हें योगवाही पेशी कहा जाता है।

शरीर के किसी भी भाग में गति किसी एक पेशी के कारण उत्पन्न नहीं होती है। बल्कि कई पेशियाँ मिलकर यह कार्य करती है। उदाहरण के लिए - पेन उठाने के लिए कोई एक पेशी कार्य नहीं करती, इस कार्य को सम्पन्न करने में अंगुलियों, अंगूठे, कलाई, कोहनी, कंधा धड़ तक की गति आवश्यक होती है।

4.6 शरीर की मुख्य पेशियाँ :

मानव शरीर की मुख्य पेशियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार से है -

1. **सिर की पेशियां (Muscles of the head)** - मनुष्य शरीर में सिर की अधिकतर पेशियां चेहरे में स्थित रहती है। सिर में कपाल आक्सीपीटोफ्रन्टैलिस पेशी (Occipitafrontales Muscles) की एपोन्यूरोसिस से ढका होता है। जिसे गैलीया एपोन्यूरोटिका (Gales Aponeurotica) कहा जाता है। यह पेशी दो भागों एन्टीरियर एवं पोस्टीरियर दो भागों में विभक्त होती है। यह दोनों भाग क्रमशः फ्रन्टल अस्थि एवं ऑक्सीपीटल अस्थि पर स्थित होते है।
2. **चेहरे की पेशियाँ (Muscles of face)**- चेहरे की पेशियों को उनके कार्यो के अनुसार दो भागों में विभक्त किया है -

हाव भाव की पेशियाँ (Muscles of facial Expression)

चबाने की पेशियाँ (Muscles of Mastication)

1. **हाव भाव की पेशियाँ** (Muscles of facial Expression) - ये पेशियां त्वचा में खिचांव उत्पन्न कर विभिन्न प्रकार के हाव - भाव उत्पन्न करती है। ये पेशियाँ निम्न है।

I. **आक्सीपिटोफ्रन्टैलिस पेशी** (Occipitofrontalis- यह ललाट एवं आँखों के ऊपरी भाग का निर्माण करती है ।

II. **आर्बिकुलेरिस आक्यूलाइ पेशी** (orbicularis oculi) - यह गोलाकार पेशी आँखों को खोलने और बंद करने का कार्य करती है, तथा ऑखों को गोल - गोल घुमाने के लिए इस पर छोटी - छोटी पेशियां होती है।

III. **ऑर्बिकुलेरिस ऑरिस पेशी** (Orbicularis Oris) - यह गोलाकार पेशी मुँह के चारों ओर स्थित है।

2. **चबाने की पेशियाँ (Muscles of Mastication)** ये पेशियां भोजन को चबाते समय निचले जबड़े को ऊपर व नीचे, दायें - बायें तथा मुँह को बंद करती है। जिससे भोजन अच्छी तरह पिस जाता है। ये पेशियां निम्न है।

I. **टेम्पोरेलिस पेशी (Temporaries Muscles)**- यह पेशी निचले जबड़े को ऊपर उठाकर मुँह को बंद करने का कार्य करती हैं।

II. **टैरीगाइड पेशी (Pterygoid Muscles)** - यह टैरीगाइड प्रवर्ध से लेकर मेण्डीबूलर तक फैली होती हैं इस पेशी से एक प्रकार से जुगाली सी होती है। जिससे भोजन को भली - भाँति चबाया जा सकता है।

III. **मैसेटर पेशी (Master muscle)** - यह पेशी जबड़े के कोण से जाइगोमेटिक आर्च तक फैली होती है। यह चबाते समय निचले जबड़े को ऊपर उठाकर ऊपरी जबड़े से मिलाती है। जिससे भोजन अच्छी तरह पिस जाता है।

3. **गर्दन की पेशियाँ (Neck Muscles)** - गर्दन को अनेक पेशियां लगी होती है। जिनके सहारे सिर दांये – बायें, ऊपर - नीचे, घुमाया जा सकता है। ये पेशियाँ निम्न है -

I. **स्टर्नोक्लीडोमैस्टॉइड पेशी (Sternocleidomastoid Muscles)&** - यह पेशी गर्दन के सामने स्थित होती है। जब दोनों ओर की पेशी में एक साथ संकोच होता है। तब यह पेशी गर्दन झुकाने का कार्य करती है।

II. **टैपीजियस पेशी (Trapeziums Muscles)** - यह पेशी वक्ष के पीछे वे गर्दन में स्थित होती हैं। यह पेशी त्रिकोणाकार होती है। इस पेशी के ऊपरी भाग में संकुचन से स्कैपुला ऊपर की और तथा निचले भाग के संकुचल से नीचे की ओर खिचांव होता है। परन्तु जब सम्पूर्ण पेशी में एक साथ संकुचन होता है, तो यह स्कैपुला कंधों के पीछे की ओर खीचती है। अर्थात् मेरूदण्ड की ओर खींचती है।

III. **प्लैटिज्मा मायोइड्स (Platys Myoides)** - यह पेशी गर्दन की निचली सतह पर त्वचा के नीचे स्थित होती है। इस पेशी के संकुचित हाने पर मुँह के कोण के नीचे हो जाते है तथा गर्दन की त्वचा खींच जाती है। इनके अतिरिक्त गर्दन में स्टर्नोहायाइड पेशी (Stern hyoid Muscles) माइलोहायाइड (Mylohyoid) स्टाइलोहायइड (Stylohyoid) आदि पेशियां होती है।

4. **वक्ष भाग की पेशियां (Muscles of Trunk)** - वक्ष भाग की पेशियां निम्न है -

I. **पेक्टोरेलिस मेजर पेशी (Pectoralis Major Muscles)** - यह पेशी भुजा (बाँह) को वक्ष के सामने की ओर खींचने का कार्य करती है तथा कंधे का घुमाव भी इसी पेशी में होता है।

II. **पेक्टोरेलिस माइनर पेशी (Prctoralis Minor Muscles)** यह पेशी पेक्टोरेलिस मेजर पेशी के नीचे स्थित होती है तथा यह स्कैपुला को नीचे की ओर खींचती है।

I. सीरेटस एन्टीरियर पेशी **(Serratus Anterior)** - यह पेशी स्कैपुला को आगे की ओर तथा बाहर की ओर खींचने का कार्य करती है।

II. **डायाफ्राम (Diaphragm)** - यह पेशी वक्ष स्थल व उदर क्षेत्र को अलग करती है। यह गुम्बद के आकार की चौड़ी पेशी है।

III. **वाह्य इन्टरकॉस्टल पेशियाँ (External Intercostals Muscles)** - यह पेशी पसलियों को आगे और ऊपर की ओर उठाने का कार्य करती है। इसी पेशी के कारण फेफड़ों में वायु भर पाती है।

IV. **आन्तरिक इन्टरकॉस्टल पेशियाँ (Internal Intercostals Muscles)** - यह पेशी भीतर की ओर स्थित होती है। यह पेशी पसलियों को नीचे एवं अन्दर की ओर खींचने का कार्य करती है। इस पेशी के कारण ही श्वसन बाहर निकलने में मदद होती है।

5. **पीठ की पेशियाँ (Muscles Of the Back)** - पीठ के ऊपरी भाग एवं निचले भाग की चौड़ी सपाट पेशी क्रमशः (trapeziums muscles) एवं लेटीमीसम डॉसाई (Latissimus Dassi Muscles तथा रोहम्बॉइडियस व लीवेटर स्कैपुल (levator scapulae)पेशियाँ प्रमुख है। जिनका निवेशन ऊपरी भुजा की अस्थियों से होता है। पीठ की पेशियों में कुछ अतिविशिष्ट पेशियों के अन्तर्गत श्वसन में भाग लेने वाली सीरेटस पोस्टीरियर (Serratus Posterior Superior Muscles) पेशी है एवं स्प्लैनियस (Splenius Muscles) है। इस पेशी में संकुचलन हाने से सिर का प्रसारण (Extension) होता है। सैक्रोस्पाइनैलिस पेशी का कार्य वर्टिबल कॉलम को प्रसारित करना है। इन पेशी का दूसरा नाम रेक्टस स्पाइनैलिस (Rectus Spinalis) भी है।

6. **भुजा की पेशियाँ** - इसके अन्तर्गत वाइसेप्स ब्रैकिएलिस (Biceps Branchi Muscles) तथा सवस्कैपुलेरिस पेशी (Supscapularis Muscles) टेरीस मेजर पेशी (Teres Major Muscles) डेल्टॉइड पेशी (Deltoid Muscles) कोरेकोब्रैकिएलिस पेशी आदि पेशियां आती है।

7. **श्रोणिगत पेशियाँ (Pelvic Muscles)** इसमें लीवेटर एनाई Levator ani Muscles) कौक्सिजाई पेशियां (Coccyges Muscles) ग्लूटियस मैक्सिमस (Gluteus Maximums) आदि पेशियां आती है।

8. **पैरों की पेशियां-** जंघा के आगे की तरफ सार्टोरियस रैक्टस (Rectus Femora's) वास्टस लेटेलिस, मिडिएलिस (Vastus Lateralis, vastus medialis) और पीछे की तरफ बाइसेप्स फिमोरिस (Biceps femoris), सेमिटेन्डिनोसस (Semitendinosus) आदि मांसपेशियां होती है। घुटने के नीचे के हिस्से में गैस्ट्रोक्नीमियस (gastrocnemius muscle और सोलियस (soleus) आदि प्रमुख हैं।

शरीर की सबसे बड़ी मांसपेशी ग्लूटियस मैक्सिमस (Gluteus Maximus) है। यह नितम्ब भाग में मिलती है। सबसे लम्बी मांसपेशी सार्टोरियस (Sartorius) है। यह जंघा के अग्रभाग में पाई जाती है। शरीर की सबसे छोटी मांसपेशी स्टेपीडियस (stapedius) है। यह कर्ण के अन्दर पाई जाती है।

4 .7 सारांश:

मांसपेशीय संस्थान शरीर की समस्त क्रियाओं के लिए उत्तरदायी है। सभी अंग मांसपेशियों के समूह के रूप में ही है। मांसपेशियों में कुछ पेशियां ऐसी होती है जो स्वयं अपनी इच्छानुसार कार्य करती है तथा कुछ पर हमारा नियन्त्रण नहीं होता है।जिन्हें क्रमश:ऐच्छिक पेशी व अनैच्छिक पेशी कहते हैं ।

4.8 शब्दावली:

- ❖ ऐच्छिक पेशी - जिस पेशी को इच्छानुसार गति दी जा सके।
- ❖ अनैच्छिक पेशी - जिस पेशी को इच्छानुसार गति नहीं दी जा सकती।
- ❖ आंकुचन – संकोच
- ❖ प्रसारण - फैलाव

4 .9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न:

1.रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

क) पेशी का विशेष गुण .....है।

ख) मानव शरीर में छोटी - बड़ी कुल .....पेशियां पायी जाती है।

ग) ऐच्छिक पेशी को ..... पेशी भी कहते हैं।

घ) पेशी के निवेशन का अर्थ .....हिस्से से है।

2.सत्य / असत्य बताइये

क) मनुष्य शरीर का अधिकांश बाह्य व आंतरिक भाग मांसपेशियों से ढका रहता है।

ख) संकुचन के कारण ही मनुष्य शारीरिक अंगों को विभिन् दिशाओं में घुमा सकता है।

ग) आर्बिकुलेरिस आक्यूलाइपेशी भुजाओं की पेशी है।

घ) डायफ्राम वक्ष स्थल व उदर क्षेत्र को अलग करता है।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1 क) संकुचन, ख) 519 ग) स्वाधीन पेशी घ) गतिशील

2 क) सत्य ख) सत्य ग) असत्य घ) सत्य

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

- ❖ गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
- ❖ गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
- ❖ प्रकाश, ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिजियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली।
- ❖ शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
- ❖ पाण्डेय डा0 के0के0 (2003) रचना शरीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
- ❖ वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
- ❖ दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा।
- ❖ सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।
- ❖ अग्रवाल जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद।

- Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.
- https://en.wikipedia.org/wiki/Muscular_system

4.11 सहायक पाठ्य सामग्री –

- वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1,2,3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
- दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन, मथुरा।
- सक्सेना, ओ0पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा।
- अग्रवाल जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद।
- Chaurasia's B.D (1995) Human Anatomy Vol 1,2,3 – CBS pule & Distributors New Delhi.

4.12 निबंधात्मक प्रश्न:

1. मांसपेशियों का भेद सहित वर्णन करते हुये पेशियों के उद्गम एवं निवेशन समझाइये?
2. शरीर की मुख्य पेशियों का वर्णन कीजिए, तथा पेशियों के कार्य एवं गतियों का वर्णन कीजिए?

इकाई 5- ज्ञानेन्द्रियाँ

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 ज्ञानेन्द्रियां

5 .3.1 घ्राणेन्द्रिय या नाक

5.3.2 श्रवणेन्द्रियाँ या कान

5.3.3 दृश्येंद्रिय

5 .3.4 स्पर्शेनिद्रय या त्वचा

5 .3.5 स्वादेन्द्रिय या जीभ

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 अभ्यास प्रश्न

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना:

पिछली इकाई में आपने शरीर की विभिन्न पेशियों के बारे में जाना। प्रस्तुत इकाई में आप शरीर में उपस्थित ज्ञानेन्द्रियाँ के बारे में जानेंगे। ज्ञानेन्द्रियाँ मनुष्य के वे अंग है जो देखने, सुनने, महसूस करने, स्वाद- ताप- रंग अदि का पता लगाते हैं। मानव शरीर में त्वचा, आँख, कान, नाक और जिह्वा आदि पाँच प्रकार की ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं । त्वचा महसूस करने का, आँखे देखने का, कान सुनने का,नाक गंध का पता लगाने का और जिह्वा स्वाद को परखने का काम करती है।

5.2 उद्देश्य

- ❖ ज्ञानेन्द्रियों के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- ❖ ज्ञानेन्द्रिय कितने प्रकार की होती है, इसका वर्णन कर सकेंगे।

- ❖ नासिका एवम कान की संरचना तथा कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।
- ❖ नेत्र की संरचना एवं कार्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- ❖ नेत्र, कर्ण एवं नासिक की उपयोगिता का वर्णन कर सकेंगे।
- ❖ त्वचा एवम जिह्वा की कार्यप्रणाली का वर्णन कर सकेंगे।

5.3 ज्ञानेन्द्रियां:

बह्य जगत के ज्ञान की प्राप्ति विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं (Sensations) के द्वारा ही संभव होती है। संवेदना का अनुभव तभी संभव है जब उससे संबन्धित संवेदी तन्त्रिकाओं (Sensory nerves) को उचित उद्दीपन (Stimulus) प्राप्त हो सके। उद्दीपनों के उत्पन्न हो जाने पर और उनके मस्तिष्क या स्पाइनल कॉर्ड में संचारित होने के बाद उनका विश्लेषण केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के द्वारा होता है और हम उस विशेष संवेदना का अनुभव मस्तिष्क के द्वारा अनुवादित होने पर ही करते हैं। शरीर ध्वनि, प्रकाश, गंध, दाब आदि के सांवेदनिक अंगों (Special sense organs) पर निर्भर करती है, जो शरीर के विभिन्न भागों में स्थित होते हैं।

विशिष्ट सांवेदनिक अंगों से तन्त्रिका तन्तुओं का सम्बन्ध रहता है। तन्त्रिका तन्तुओं का विशिष्ट सांवेदनिक अंगों में अन्त (Termination) होने से पहले ये अपने न्यूरोलीमा (Neurolemma) तथा मायलिन आवरण (Myelin sheath) का त्याग कर देते हैं। प्रत्येक संवेदी तन्त्रिका का अन्तिम भाग कुछ विशेष प्रकार का बना होता है, जिसे अन्तांग (End organ) कहते हैं और ये अन्तांग ही संवेदन (Sense) के विशेष अंग होते हैं। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय से सम्बन्धित अनेक उपांग होते हैं, जो उद्दीपन को अन्तांग तक संचारित (Transmit) करते हैं। परन्तु, वास्तविक उद्दीपन अन्तांग में ही होता है और वहाँ से यह मस्तिष्क में पहुँचता है, जहाँ इसका विश्लेषण होता है और विशिष्ट संज्ञा (Special sense) का ज्ञान होता है। मानव शरीर में निम्न पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (Sense organs) होती हैं, जिनके द्वारा बाह्य जगत का ज्ञान होता है। ये हैं-

घ्राणेन्द्रिय या नाक **(Nose)-** यह किसी वस्तु की गंध का ज्ञान कराती है।

श्रवणेन्द्रियाँ या कान **(Ears)-** कान हमें विभिन्न प्रकार की ध्वनियों का ज्ञान कराते हैं।

द्रश्येन्द्रियाँ या आँख **(Eyes)-** इनके द्वारा संसार की वस्तुओं को देखा जाता है।

स्पर्शेनिद्रय या त्वचा **(Skin)-** इससे स्पर्श, दाब, पीड़ा, वेदना, ताप (heat) एवं शीत (cold) का ज्ञान होता है।

स्वादेन्द्रिय या जीभ (Olfaction) इससे किसी वस्तु को चखने से उसके स्वाद का ज्ञान होता है।

5.3.1 घ्राणेन्द्रिय या नाक (Nose)-

नाक का कार्य किसी वस्तु या पदार्थ की गन्ध का ज्ञान करना या सूँघना (Olfaction) है। जिस प्रकार स्वाद के ज्ञान के लिए पदार्थ का घोल रूप में होना अनिवार्य है, उसी प्रकार गन्ध के ज्ञान या सूँघने के लिए पदार्थ या वस्तु का गैस या वाष्प के रूप में होना आवश्यक है। नाक में पहुँचकर वाष्प या गैस स्थानीय स्राव में घुल जाता है और घ्राण क्षेत्र की कोशिकाओं (Olfactory cells) को उद्दीप्त करता है। यहाँ से उद्दीपन के आवेग घ्राण बल्ब में और फिर घ्राण-पथ से होकर मस्तिष्क के घ्राण क्षेत्र में पहुँचते हैं जहाँ पर आवेगों का विश्लेषण होकर गन्ध का ज्ञान होता है।

नासिका की संरचना एवं कार्य

नासा गुहा (Nasal cavity) की श्लेष्मा, तीन छोटी अस्थियों (Nasal Concha) द्वारा कई कक्षों में बँट जाती है, जो नाक की बाहरी भित्ति से आरम्भ होते हैं। तीनों अस्थियों (Nasal concha) के कारण इस स्थान पर तीन छोटे टीलों के समान उभार बन जाते हैं। सम्पूर्ण क्षेत्र पर नेजल म्यूकस मेम्ब्रेन बिछी रहती है, जो कॉल्यूमनर सिलिएटेड एपीथीलियम से बनी हैं। इन कोशिकाओं के स्राव से नाक की म्यूकस मेम्ब्रेन तर, चिकनी तथा चिपचिपी-सी रहती है।नेजल कोंचा से नासिका में ऊर्ध्व, मध्य तथा निम्न क्षैतिज खाँचें बन जाती हैं। अस्थि निर्मित तीनों खाँचें नासिका के प्रत्येक आधे भाग को अपूर्ण रूप से चार कक्षों में विभाजित के प्रत्येक आधे भाग को अपूर्ण रूप से चार कक्षों में विभाजित कर देती है, जो सामने से पीछे की ओर जाते हैं तथा एक के ऊपर एक स्थित रकते हैं। प्रश्वसित वायु, नीचे के तीन कक्षों से हाकर जाती है, परतु सबसे ऊपर वाले में सामान्य रूप से नहीं जाती है।

घ्राण (Smell) के अंग, सबसे ऊपर वाले कक्ष की घ्राण श्लेष्मिक कला (Olfactory mucous membrane) में स्थित होते हैं। घ्राण कोशिकाओं के अन्तांत इसी मेम्ब्रेन में फैले रहते हैं। नासा गुहा का सबसे ऊपर वाला कक्ष एक अंधगुहा या पॉकेट के समान है, जिसका वही अंत हो जाता है। घ्राण उपकला (Olfactory epithelium) घ्राण (गंध) के लिए संवेदनशील होती है, जो नाक की छत के समीप होती है। इन ग्रन्थियों का स्राव समस्त सतह को तर रखता है तथा गंधयुक्त वाष्पों (Odorous vapors) को घोलने का कार्य करता हैं सहारा देने वाली कोशिकाओं का आधार (Base) ऊपर की ओर रहता है और एक सतही मेम्ब्रेन बनाता है, जिसके बीच के

रिक्त स्थानों में से घ्राण कोशिकाओं (Olfactory cells) के बाल के समान प्रवर्ध (Cilia) बाहर की ओर निकले रहते हैं।

वस्तुतः द्विध्रुवीय तन्त्रिका कोशिकाएँ (Bipolar nerve cells) ही घ्राण की रिसेप्टर कोशिकाएँ (Receptor cells) होती हैं। मानव में ये 25 मिलियन से अधिक होती हैं तथा प्रत्यक सहारा देने वाली कोशिकाओं से घिरी रहती है। प्रत्येक रिसेप्टर कोशिका में एक गोल न्यूक्लियस तथा एक लम्बे धागे के रूप में प्रोटोप्लाज्म रहता है। ये कोशिकाएँ म्यूकस मेम्ब्रेन में घँसी रहती है। प्रत्येक कोषिका के दो प्रवर्ध (Processes) दोनों ध्रुवों पर से निकले रहते हैं। कोशिकाएँ लम्बे अक्ष में एक-दूसरी से सटी हुई, सतह से लम्बबद्ध दिशा में (Perpendicular) खड़ी-सी स्थित रहती हैं। इन कोशिकाओं के पार्ष्वतन्तु (Dendrite) छोटे आकार के अभिवाही प्रवर्ध रिक्त स्थानों से निकले रहते हैं। ऊपर ये थोड़े प्रसारित होकर ऑल्फेक्टरी रॉड्स बनाते हैं तथा विस्फारित घ्राण स्फोटिका (Bulbous olfactory vesicle) में समाप्त हो जो हैं। प्रत्येक स्फोटिका (Vesicle) से 6-20 लम्बे बाल के समान प्रवर्ध (Cilia) निकले रहते हैं, जो सतही एपीथीलियम (Surface epithelium) को आच्छादित किए रहते हैं। इन्हें घ्राण-रोम-कोशिका कहते हैं। स्फोटिका (Vesicle) एवं इसके प्रवर्ध (Cilia) ही घ्राण के अन्तांग (Olfactory end organs) होते हैं। रिसेप्टर कोशिकाओं के अक्षतर्न्तु (एक्सोन्स) जो **घ्राण तन्त्रिका** (Olfactory nerve) का निर्माण करते हैं, दूसरे सिर से निकलकर ऊपर उठते हैं और इथमॉइड अस्थि की छिद्रित प्लेट (Cribriform plate) से होकर गुजरते हैं और घ्राण-बल्ब्स (Olfactory bulbs) में पहुँचते हैं। घ्रण बल्ब्स भूरे द्रव्य की विशेष संरचनाएँ हैं, जो मस्तिष्क के घ्राण-क्षेत्र (Olfactory region) के स्तम्भाकार विस्तार होते हैं। घ्राण-बल्ब के अन्दर रिसेप्टर कोशिकाओं के टर्मिनल एक्सॉन्स (अक्ष तन्तुओं के अन्तांग) गुच्छित कोशिकाओं (Tufted cells)] गै्रन्यूल कोशिकाओं (Granule cells) एवं माइट्रल कोशिकाओं (Mitral cells) के डेण्ड्राइट्स (पार्ष्वतन्तुओं) के साथ तन्तुमिलन (Synapse) होता है। जिससे एक विशिष्ट गोलकार अंग घ्राण गुच्छिका या ऑल्फेक्टरी ग्लोमेरूलाई (Olfactory glomeruli) बनता है। प्रत्येक ग्लोमेरूलस (Glomerulus) रिसेप्टर कोशिका के लगभग 26,000 एक्सॉन्स से आवेगों को प्राप्त करता है। माइट्रल एवं गच्छित (Tufted) कोशिकाओं के अक्षतन्तु (एक्सॉन्स) ही घ्राण-(Olfactory tract) बनाते हैं, जो पीछे जाकर प्रमस्तिष्क कॉर्टेक्स के टेम्पोरल लोब में घ्राण केन्द्र (Olfactory

of smell centre) में पहुँचता है, जहाँ पर आवेगों का विश्लेषण होता है, और हमें विशेष गन्ध का ज्ञान होता है।

5.3.2 श्रवणेन्द्रियाँ या कान (Ear)

कान या कर्ण शरीर का एक आवश्यक अंग है, जिसका कार्य सुनना (Hearing) एवं शरीर का सन्तुलन (Equilibrium) बनाये रखना है तथा इसी से ध्वनि (Sound) की संज्ञा का ज्ञान होता है।

कान की रचना अत्यन्त जटिल होती है, अतः अध्ययन की दृष्टि से इसे निम्नलिखित तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जाता है-

- बाह्य कर्ण (External ear)
- मध्य (Middle ear)
- अंतः कर्ण (Internal ear)

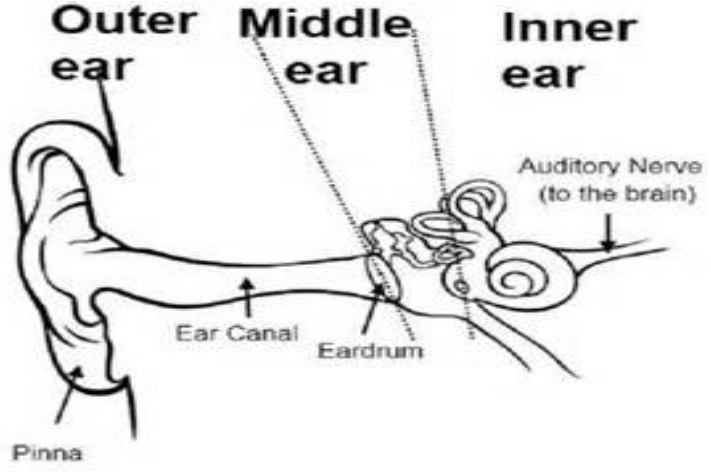

बाहरी और मध्य कान केवल सुनवाई में सहायता करते हैं, जबकि आंतरिक कान संतुलन में भी मदद करता है।

बाहरी कान में पिन्ना (pinna) और बाह्य कर्ण कुहर (External auditory meatus)] है। कर्णपाली (Auricle or pinna) कान का सिर के पार्श्व से बाहर को निकला रहने वाला भाग होता है, जो लचीले फाइब्रोकार्टिलेज से निर्मित् तथा त्वचा से ढँका रहता है। यह सिर के दोनों ओर स्थित रहता है। सीबेसियस एवं सेर्यूमिनस ग्रन्थियाँ होती हैं जो क्रमशः सीबम (तैलीय स्राव)

एवं सेर्यूमेन (कान का मैल या ईयर वैक्स) स्रावित करती हैं। ईयर वैक्स (Ear wax) से, बालों (रोम) से तथा कुहर के घुमावदार होने से बाहरी वस्तुएँ जैसे धूलकण, कीट-पतंगें आदि कान के भीतर नहीं जा पाते हैं। पिन्ना कुहर में ध्वनि का निर्देशन करता हैं।

कर्णपटही गुहा (Tympanic cavity) बाहरी कर्णपटह (Tympanic membrane) द्वारा तथा आंतरिक रूप से श्रवणीय कैप्सूल (Auditory capsule) द्वारा बाध्य है। श्रवण कैप्सूल के दो झिल्ली युक्त छिद्र हैं जिन्हें अंडाकार खिड़की और गोल खिड़की कहा जाता है। मध्य कान में तीन अस्थिकाएँ होते हैं जिन्हें स्थित मैलीयस (Malleus), इन्कस या एन्विल और स्टेपस कहा जाता है, ये एक चेन की तरह संलग्न होते हैं। ये संचरण की दक्षता में वृद्धि करते हैं. ईस्टाचियन ट्यूब द्वारा वायु दबाव संचालित होता हैं।

I. भीतर का कान श्रवणेन्द्रिय का प्रमुख अंग है। इसी में सुनने तथा सन्तुलन के अंग अवस्थित होते हैं। भीतर का कान लैबिरिन्थ से मिलकर बना होता हैं, जिसमें दो कार्यात्मक हिस्से होते हैं - सुनवाई के लिए कर्णावर्त या कॉक्लिया (Cochlea), और बैलेंस के लिए प्रघाण या वेस्टिब्यूल (Vestibule) ।
लैबिरिन्थ दो प्रकार की होती है - हड्डी और झिल्लीदार

I. कॉक्लिया में दो झिल्ली हैं, अर्थात् रीइस्नेर की झिल्ली (Reissner's membrane) और बेसिलर झिल्ली(basilar membrane) जो अस्थिल लैबिरिन्थ (Bony labyrinth) को स्कैला वेस्टिब्यूलाइ और स्कैला टिम्पेनाइ में बांटते हैं। लैबिरिन्थ के तरल पदार्थ और नरम संरचनाएं मध्य कान से श्रवण अंग (organ of Corti) तक तरगें आचरण करती हैं । जो कि, ध्वनि का वास्तविक रिसेप्टर है यह बालों वाली कोशिकाओं से बना है, जो टेक्टोरियल झिल्ली के संपर्क में हैं।

II. भीतर के कान में वेस्टिबुलर उपकरण होते हैं जो शरीर के संतुलन को बनाए रखने में सहायता करता है। इसमें तीन अर्द्धवृत्ताकार नलिकाओं और ओटोलिथ अवयव (otolith organ) होते हैं जिसमें यूट्रिक्ल (Utricle)] सैक्यूल (Saccule)होते है जो कि शरीर के संतुलन और आसन को बनाए रखने के लिए जिम्मेदार होते हैं।

बाहरी कान ध्वनि तरंग प्राप्त करता है और उन्हें ईयर ड्रम की ओर निर्देशित करता है। कंपित तरंगे मैलीयस, इन्कस और स्टेपस के माध्यम से अंडाकार खिड़की तक प्रसारित की जाती हैं। Ossicles, बदले में, ध्वनि को बढ़ाना और अंडाकार खिड़की के माध्यम से कंपन को कॉक्लिया के द्रव के पास लाता हैं। यह तरंगों को उत्पन्न करती है जो बेसिलर झिल्ली में एक लहर को प्रेरित करती है, फिर रोम कोशिकाओं को मोड़, उन्हें टेक्टोरियल झिल्ली के खिलाफ दबाकर, रोम कोशिकाओं को उत्तेजित करता है, तंत्रिका आवेग उत्पन्न करने के लिये, जो मस्तिष्क के श्रवण प्रांतस्था(auditory cortex) में फैलाता है। मस्तिष्क इन तंत्रिका आवेगों की व्याख्या करता है और ध्वनि को समझता हैं.

शरीर की साम्य स्थिति एवं सन्तुलन (Equilibrium and balance of the body)- शरीर को साम्य स्थिति एवं सन्तुलन में बनाए रखने का कार्य अन्तःकर्ण के वेस्टिब्यूलर उपकरण (Vestibular apparatus)] यूट्रिक्ल, सैक्यूल एवं अर्द्धवृत्ताकार नलिकाओं द्वारा संपादित होता हे। सिर की स्थिति (Position) में कैसा भी परिवर्तन (हिलना) होता है, तो पेरिलिम्फ एवं एण्डोलिम्फ तरह हिल जाता है, जिससे रोम कोशिकाएँ (Hair cells) मुड़ (झुक) जाती हैं तथा यूट्रिक्ल, सैक्यूल एवं एम्पूलाओं (Ampullae) में स्थित संवेदी तन्त्रिका अन्तांग उद्दीप्त हो उठते हैं। इससे उत्पन्न तन्त्रिका आवेगों को वेस्टिब्यूलर तन्त्रिका (आठवीं कपालीय तन्त्रिका की शाखा) के तन्तु मस्तिष्क के सेरीबेलम को संचारित कर देते हैं। मस्तिष्क के आदेश से उन सभी पेशियों में तदनुकूल गति और क्रिया होती है जिससे शरीर की साम्य स्थिति गनी रहती हैं।

5.3.3 दृश्येंद्रिय (Eye)

आँखों या नेत्रों के द्वारा हमें वस्तु का 'दृष्टि ज्ञान' होता है। मानव आंख हमारे शरीर का सबसे महत्वपूर्ण अंग है जो एक ऑप्टिकल डिवाइस है जो दृष्टि के अंग के रूप में कार्य करता है। इसमें एक कठिन रेशेदार झिल्ली होती है जिसे स्क्लेरा कहा जाता है जो आंख के आंतरिक भागों की सुरक्षा करता है।

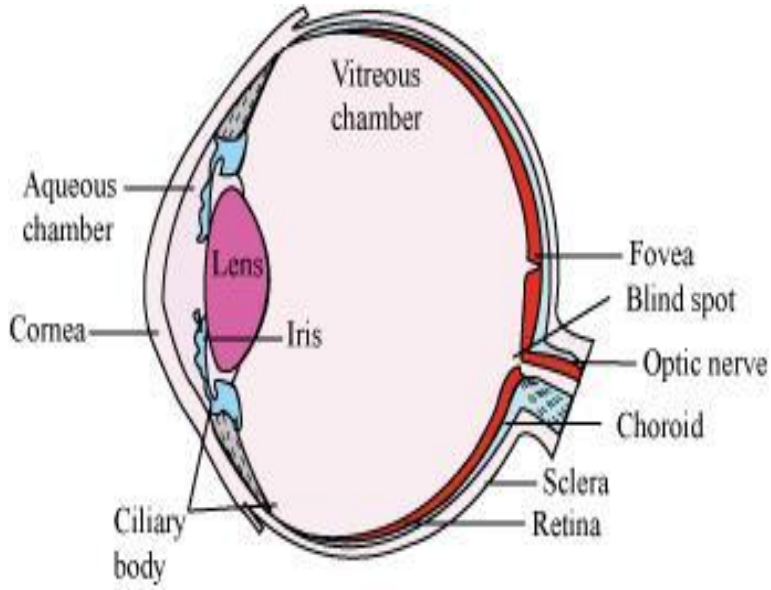

आँख के भाग

ए) स्क्लेरा: श्वेत पटल (स्क्लेरा) नेत्रगोलक के पिछले भाग (Posterior segment) की अपारदर्शी, दृढ़ तन्तु ऊतकों की श्वेत परत होती हैं। यह आंतरिक भागों को सुरक्षित रखता है।

बी) कॉर्निया: कॉर्निया आंख के सामने को कवर करने वाला झिल्ली है, जो आंखों में ढंका हुआ है और आंख में प्रवेश करने वाले प्रकाश की अधिकतम अपवर्जन के लिए जिम्मेदार है। कॉर्निया घटना प्रकाश की अधिकतम अपवर्जन के लिए जिम्मेदार है।

ग) आईरिस: आंख के रंगीन हिस्से को आइरिस कहते हैं| यह पुतली के आकार को समायोजित करता है, जिससे आंखों में प्रकाश की मात्रा नियंत्रित होती है।

घ) क्रिस्टलीय लेंस: क्रिस्टलीय लेंस, आइरिस के पीछे स्थित है, जो कि एक उभयोत्तल(biconvex)संरचना है जो प्रकाश को बेहतर समायोजन करने में मदद करता है जिससे कि यह आंख की स्क्रीन पर केंद्रित हो, जिसे रेटिना कहा जाता है। लेंस रेटिना पर ऑब्जेक्ट्स द्वारा प्रतिबिंबित प्रकाश को केंद्रित करता है।

ई) सिलिअरी पेशी (Ciliary muscle): सिलिअरी पेशी लेंस की फोकल लम्बाई को संकुचन या आराम से समायोजित करने में मदद करती है। नेत्रकाचाभ द्रव(viterous humor)के पीछे झुकाव है जो एक घने, स्पष्ट, जेली की तरल पदार्थ है जो आंख के आकार को बनाए रखने में

मदद करता है और छवि को रेटिना पर स्पष्ट रूप से केंद्रित करता है। यह क्रिस्टलीय लेंस की केंद्रीय लम्बाई बदल देती है।

च) रेटिना: नेत्रगोलक के सबसे भीतर की परत की दृष्टिपटल या रेटिना Retina) कहा जाता है, जो तन्त्रिका कोशिकाओं (Nervous) एवं तन्त्रिका तन्तुओं की अनेकों परतों से बना होता है और नेत्र के पोस्टीरियर चैम्बर में अवस्थित होता है। जिसके माध्यम से छवियों को बिजली के आवेगों में परिवर्तित किया जाता है और छवि की प्राप्ति के लिए मस्तिष्क को स्थानांतरित किया जाता है। यह एक ऑप्टिकल छवि प्राप्त करता है और इसे विद्युत आवेगों में परिवर्तित करता है।

छ) जलीय द्रव : कॉर्निया के पीछे जलीय द्रव है जो आँख को वायुमंडलीय परिवर्तन से सामना करने में सक्षम बनाता है। वायुमंडलीय दबाव में परिवर्तन के कारण आँख के पतन रोकता है।

ज) नेत्रकाचाभ द्रव(viterous humor): यह आंख के आकार को बनाए रखता है।

झ) ऑप्टिक तंत्रिका: मस्तिष्क में बिजली के आवेगों को लेता है। ब्रेन इन आवेगों की व्याख्या करता है और दृष्टि की भावना पैदा करता है।

नेत्र दृष्टि का अंग है जो परिवर्तनों का पता लगाता है और केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को संकेत देता है। यह खोपड़ी के आंखों की कुर्सियां में स्थित है, और द्विनेत्री दृष्टि के लिए अनुकूलित है, ये आइब्रो, पलकों और लच्रिमल ग्रंथियों(lachrymal glands) द्वारा संरक्षित हैं। मानव आँख तीन परतों से बनी है स्क्लेरा या श्वेतपटल, कोरॉयड और रेटिना, श्वेतपटल का पूर्वकाल हिस्सा कॉर्निया है जो कि कोरियॉइड और सिलिअरी शरीर का निर्माण करता है जो आईरिस बनाता है, नेत्रगोलक में सिलिअरी बॉडी के स्नायुबंधन द्वारा एक पारदर्शी क्रिस्टलीय लेंस होता है। लेंस के सामने आईरिस है जो पुतलि के व्यास को नियंत्रित करता है। आंतरिक परत रेटिना है जो नाड़ीग्रन्थि कोशिकाओं(ganglion cells, द्विध्रुवी कोशिकाओं(bipolar cells) और फोटोरिसेप्टर कोशिकाओं(Photoreceptor cells) से युक्त कोशिकाओं की तीन परतें होती हैं। फोटोरिसेप्टर कोशिकाएं दो प्रकार के होते है- छड़ और शंकु(Rods and cones) रोडॉप्सन के छड़ (Rhodopsin of rods), मंद प्रकाश के प्रति संवेदनशील है, ये रंग दृष्टि में कोई भूमिका नहीं निभाते हैं। शंकु के आयोडॉप्सन दिन के प्रकाश के प्रति संवेदनशील है। शंकु(cones) तीन प्रकार के होते हैं और इसमें विभिन्न फोटो रंजक(pigments) होते

हैं और लाल, हरे और नीले प्रकाश के विकिरणों का जवाब देते हैं। रेटिना के ऑप्टिकल हिस्से में अंधे स्थान(blind spot) और क्षुद्र विवर(fovea) नामक दो स्पॉट शामिल हैं जलीय कक्ष कॉर्निया और लेंस के बीच स्थित होता है, जलीय द्रव(aqueous humor) जो लेंस और कॉर्निया को पोषण प्रदान करता है। नेत्रकाचाभ कक्ष लेंस और रेटिना के बीच स्थित है। यह नेत्रकाचाभ द्रव(viterous humor) से भरा है, यह आवरण को आकृति प्रदान करता है, रेटिना और लेंस का समर्थन करता है, हल्के किरणों को रिफ्रैक्ट करता है और अंतर-ओक्यूलर दबाव बनाए रखता है।

मानव आँख एक कैमरे की तरह काम करती है कॉर्निया, जलीय द्रव, लेंस और नेत्रकाचाभ द्रव, सभी छोटे लेंस के रूप में कार्य करते हैं। छड़ और शंकु में आवेग पैदा करने के लिए प्रकाश किरणों का ध्यान रेटिना पर केंद्रित करते हैं । रेटिना पर दृश्य तरंगदैर्ध्य फ़ोकस में प्रकाश किरण। फोटोरिसेप्टर ऑप्सीन और रेटिनल के फोटो रंजक हल्का ऑप्सीन से रेटिनल को अलग करता है, जो ऑप्सिन की संरचना को बदलने में परिणाम देता है। ऑप्सिन में संरचनात्मक परिवर्तन झिल्ली पारगम्यता को बदलता है, जो बदले में, फोटोरिसेप्टर कोशिकाओं में संभावित अंतर होता है। इससे क्रिया क्षमता की पीढ़ी होती है जो ऑप्टिक तंत्रिका द्वारा मस्तिष्क के दृश्य क्षेत्र में फैलती है। ये तंत्रिका आवेगों का दृश्य क्षेत्र में विश्लेषण किया जाता हैऔर छवि को पहचानने में सहायता करती है।

5.3.4 स्पर्शेनिद्रय या त्वचा;

त्वचा की संरचना तथा कार्य

त्वक संवेदांग हमारी त्वचा में स्थित अनेक कायिक संवेदी तन्त्रिका तन्तुओं के स्वतंत्र और शाखान्वित सिरों के रूप में होते हैं स्पर्शेन्द्रिय का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है, जबकि शरीर की अन्य समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ स्थानीय होती हैं, तथा एक निश्चित क्षेत्र में कार्य करती हैं। स्पर्श के अतिरिक्त ताप, शीत, दाब, पीड़ा, वेदना, हल्का, भारी, सूखा, चिकना आदि संवेदनाओं का ज्ञान इसी के द्वारा होता है। समस्त शरीर की त्वचा में तन्त्रिका तन्तुओं के अंन्तांगों (Nerve endings) का एक जाल-सा फैला रहता है, जो भिन्न-भिन्न संवेदनाओं को ग्रहण कर मस्तिष्क में पहुँचाते हैं, इन्हें रिसेप्टर्स (Receptors)कहा जाता है।

किसी एक संवेदना के रिसेप्टर्स एक समान होते हैं तथा विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं के रिसेप्टर्स एक-दूसरे से भिन्न होते हैं और इनकी रचना में भी भिन्नता होती है। त्वचा में विद्यमान विभन्नि प्रकार के रिसेप्टर्स एक-दूसरे से पर्याप्त दूरी पर स्थित रहते हैं। उचित प्रकार के उद्दीपक को त्वचा पर लगाकर विशिष्ट वर्ग के रिसेप्टर की स्थिति (Location) को ज्ञात किया जाता है। उस बिन्दु को उस विशष संवेदना का बिन्दु (Spot) कहा जाता है। त्वचा के जिन बिन्दुओं पर कुछ कड़े बाल (hair) के द्वारा स्पर्श कराने से स्पर्श की संवेदना (Sense of touch) का ज्ञान होता है, उन क्षेत्रों को 'ताप बिन्दु (Warm spots), 'शीत बिन्दु' (Cold spots)] पीड़ा बिन्दु (Pain spots) कहा जाता है। किसी विशष संवेदना के बिन्दु, त्वचा के किसी भाग पर अधिक और कहीं कम रहते हैं।

यदि किसी कड़ी वस्तु जैसे पेन्सिल की नोंक से त्वचा पर दबाव डालते हुए स्पर्श कराया जाए तो वह दाब (Pressure) की संवेदना होती है, जिसके रिसेप्टर्स विशेष वर्ग के होते हैं। इस प्रकार के रिसेप्टर्स त्वचा के अतिरिक्त शरीर के अन्य भाग, जैसे अस्थिआवरण (Periosteum)] टेन्डन्स के नीचे, आन्त्रयोजनी (Mesentery) ग्रन्थियों में भी पाए जाते हैं। इस संवेदना से हमें अपने शीर या इसके विभिन्न भागों की स्थिति एवं उनकी गति का ज्ञान होता है। इस प्रकार के रिसेप्टर्स को लेमीलेटेड या पैसिनियन (Lamellated or Pacinian) कॉर्पसल्स (कणिका) कहते हैं। इसी से शरीर में स्थिति और गति की जानकारी होती हे। उदाहरण के तौर पर यदि आप एक व्यक्ति को दोनों आँखे बन्द कर उसके एक हाथ को टेबल पर रख दें और उसे अपने दूसरे हाथ को ठीक वैसी ही स्थिति में टेबल पर रखने को कहें, तो वह सहज ही पहले रखे गए हाथ के समीप दूसरे हाथ को ठीक वैसी ही स्थिति में रख लेगा।

उसी प्रकार विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं के लिए रिसेप्टर्स भी विशिष्ट प्रकार के होते हैं, जैसे स्पर्श की संवेदना के लिए 'स्पर्श कणिकाएँ' (Tactile corpuscles) दाब के लिए 'पैसिनियन कणिका'(Pacinian corpuscles) कॉर्पसल्स ऑफ रफीनी (Corpuscles of Ruffini)] कार्पसल्स ऑफ क्रॉज (corpuscles of Krause) ताप के लिए गॉल्जी-मेजोनी (Golgi-Mazzoni organs) एवं रफीनी (Ruffini) कॉर्पसल्स के तन्त्रिका-अन्तांग, शीत के लिए बल्बस कॉर्पसल्स ऑफ क्रॉज (Bulbous corpuscles of Krause)के तन्त्रिका अन्त्रांग, आदि कुछ विशिष्ट संयोजक ऊतकों से निर्मित अन्तांग हैं, जिनमें क्यूटेनियस तन्त्रिकाओं के छोरों (Cutaneous nerve endings) का अंत होता है। पेशी स्पिन्डल (Muscle spindle) गाल्जी

बॉडी तथा अन्तांग प्लेट्स (End plates) आदि भी त्वचा संवेदनाओं के माध्यम हैं। इनके अतिरिक्त पीड़ा एवं वेदना के आवेगों को ले जाने वाली तन्त्रिकाओं के अन्तांग स्वतन्त्र (Free nerve endings) रहते हैं अर्थात् ये त्वचा पर स्वतन्त्र रूप से फैले रहते हैं। स्पर्श संवेदन से सम्बन्धित कुछ तन्त्रिका-अन्तांग बालों की जड़ों में भी लिपटे रहते हैं, जिनसे स्पर्श का ज्ञान होता है।

इस प्रकार विभिन्न वर्ग के रिसेप्टर भिन्न-भिन्न संवेदनाओं को ग्रहण करते हैं। किसी एक प्रकार के रिसेप्टर्स किसी एक ही संवेदना को ग्रहण कर सकते हैं, जो तन्त्रिका अन्तांग ताप के लिए हैं उनसे स्पर्श की संवेदना नहीं हो सकती है।

5.3.5 स्वादेन्द्रिय या जीभ (Tongue)

जीभ या जिह्वा का मुख्य कार्य किसी वस्तु को चखकर उसके स्वाद को ज्ञात करना है क्योंकि स्वाद के रिसेप्टर्स (Receptors) इसी में स्थित होते हैं। स्वाद के कुछ रिसेप्टर्स कोमल तालू (Soft palate) टॉन्सिल्स एवं कंठच्छद (Epiglottis) आदि की म्यूकस मेम्ब्रेन में भी होते हैं।

जीभ एक अत्यधिक गतिशील अंग है, जो स्वाद-संवेदन के अतिरिक्त चबाने (Mastication)] निगलने (Swallowing) तथा बोलने (Speech) जैसे महत्वपूर्ण कार्यों को भी संपदित करती है। जीभ मुख में स्थित म्यूकस मेम्ब्रेन से पूर्णतः ढँकी हुई ऐच्छिक पेशियों से निर्मित एक संवेदांग है। जीभ की पेशियाँ आन्तरिक (Intrinsic) एवं बाह्य (Extrinsic) दोनों प्रकार की होती हैं। आन्तरिक पेशियाँ जीभ के मुख्य अंग बनाती हैं तथा सभी प्रकार की नाजुक गतियाँ (Extrinsic) कराती हैं एवं बाह्य पेशियाँ जीभ तथा हॉयाड अस्थि (Hyoid bone)] निचले जबड़े (Mandible) और टेम्पोरल अस्थि के स्टाइलॉइड प्रवर्ध के बीच में स्थित रहती हैं तथा चबाने एवं निगलने में होने वाली गतियाँ (ऊपर-नीचे, आगे-पीछे) कराती है।

जीभ के छोर या अग्रभाग (Tip) काय (Body) एवं आधार (Base or root) तीन भाग होते हैं। इसका आधार हॉयाड़ अस्थि से जुड़ा होता है जबकि इसका छोर तथा काय स्वतन्त्र होते हैं। जीभ की ऊपर की सतह डॉर्सम (Dorsum) कहलाती है, जो स्टैªटिफाइड स्क्वेमस एपीथीलियम (Stratified squamous epithelium) से स्तरित होती है। जब जीभ को ऊपर की ओर पलटा (Turned up) जाता है तो इसकी निचली सतह पर ऊपर की ओर मध्य रेखा की ओर आती हुई म्यूकस मेम्ब्रेन की कई तहें दिखाई देती हैं, जिसे जिह्वा बंध या फ्रेनुलम

(Frenulum-linguae) कहते हैं। यह जीभ के पोस्टीरियर भाग को मुख के तल से जोड़ती है। जीभ का एन्टीरियर भाग स्वतन्त्र रहता है। जीभ को बाहर की ओर निकालने पर इसका छोर (Tip) नुकीला हो जाता है, किन्तु जब यह मुख तल में तथा शिथिल रहती है, तो इसका छोर (अग्रभाग) गोल रहता है।

स्वस्थ अवस्था (Health) में जीभ की म्यूकस मेम्ब्रन तर (Moist) एवं गुलाबी रहती है। इसकी ऊपरी सतह मखमली (Velvety) दिखाई पड़ती है तथा बहुत से उभारों (protuberances) से आच्छादित रहती है, जिन्हें अंकुरक या पैपिली (Papillae) कहते हैं। अंकुरक, जीभ की केवल ऊपरी सतह पर रहते हैं, निचली सतह पर इनका पूर्णतः अभाव रहता है किन्तु ये तालू (Palate)] गले (Throat) एवं कंठच्छद (Epiglottis) की पोस्टीरियर सतह पर भी पाए जाते हैं। अंकुरकों में रक्तकोशिकाएँ (Capillaries) जाल के रूप में फैली रहती है। स्वाद-तन्त्रिकाओं-सातवीं (VII)] नौवीं (IX)] तथा दसवीं (X)] कपालीय तन्त्रिकाओं के तन्तुओं का अन्त इन्हीं अंकुरकों (पैपिली) में होता है। इन अंकुरकों को 'स्वाद कलिकाएँ' (Taste buds) भी कहा जाता है। मानव में लगभग 10,000 स्वाद कलिकाएँ रहती हैं। वृद्धवस्था में इनकी संख्या में कमी आ जाती है।

अंकुरक (पैपिली) मुख्यतः निम्न तीन प्रकार के होते हैं-

I. परिवृत्त या सरकमवैलेट पैपिली (Circumvallated Papillae)
II. छत्रिकांकुर या फन्गिफॉर्म (Fungi form Papillae)
III. सुत्रिकांकुर या फिलिफॉर्म पैपिली (Filiform Papillae)

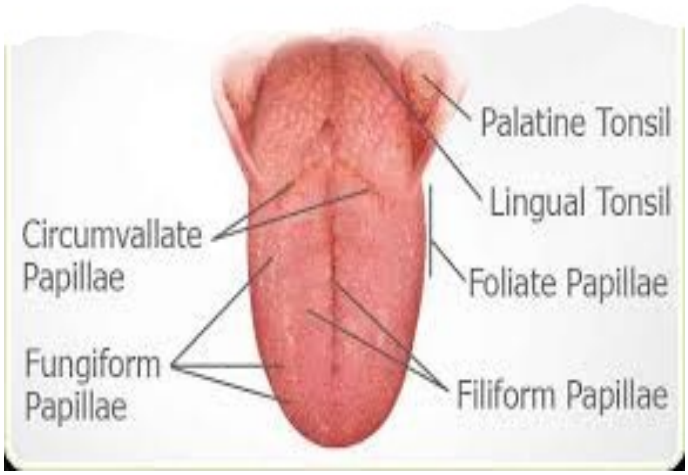

परिवृत्त अंकुरक (Circumvallated Papillae)- ये जीभ की सतह पर पीछे की ओर अर्थात् पोस्टीरियर दो तिहाई भाग के समीप अंग्रेजी के उल्टे 'V' के आकार में दो समान्तर पंक्तियों 'V' में 10 से 12 की संख्या में व्यवस्थित रहते हैं। प्रत्येक परिवृत्त या सरकमवैलेट पैपिली में 90 से 250 स्वाद कलिकाएँ विद्यमान रहती हैं। ये काफी बड़ी आकार के और आसानी से दिखाई देने वाले अंकुरक (पैपिली) होते हैं।

छत्रिकाकुंर (Fungi form Papillae)- ये जीभ पर विशेषकर उसके छोर (अग्रभाग) तथा किनारों प8र स्थित मशरूम (Mushroom) के समान दिखाई देने वाले, एकल फैले हुए (Singly scattered) अंकुरक होते हैं। इन प्रत्येक अंकुरक में 1 से 8 स्वाद कलिकाएँ विद्यमान रहती हैं।

सूत्रिकांकुर (Filiform Papillae)- ये जीभ के अगले दो तिहाई भाग की सतह पर पाए जाने वाले धागे के समान (Thread like) नुकीले अंकुरक होते हैं। इनमें स्वाद कलिकाओं का अभाव रहता है। इनका कार्य स्वाद ज्ञान कराने की अपेक्षा वस्तु को प्रतीत कराना है। स्वाद की अनुभूति सरकमबैलेट एवं फन्गिफॉर्म पैपिली से ही होती है।

स्वाद कलिकाएँ एवं स्वाद ग्रहण करने की क्रिया विधि- स्वाद कलिकाएँ (Taste buds) ही स्वाद की विशिष्ट अन्तांग हैं। इनकी प्रत्येक कोशिका में स्वाद-तन्त्रिका (Lingual and gloss pharyngeal nerve) की शाखा आती है। प्रत्येक स्वाद कलिका अंकुरक (पैपिली) की सतह पर सूक्ष्म रन्ध्र (Tiny pore) से खुलती है और उसकी सभी कोशिकाएँ जो इस स्थान पर सामूहिक

रूप से पहुँचती है, उनका अन्त सूक्ष्म बाल के समान अनेकों उभारों में होता है। खाद्य पदार्थ इन रन्ध्रों में प्रवेश कर इन उभारों को अपने संस्पर्श से उद्दीप्त करते हैं। इनमें उत्पन्न उद्दीपन के आवगे स्वाद-संवेद की तन्त्रिकाओं (VII, IX व X कपालीय तन्त्रिकाएँ द्वारा मस्तिष्क के स्वाद केन्द्र (Taste centre) में संचारित होते हैं और वहाँ स्वाद का विश्लेषण होता है, तत्पश्चात ही हमें विभिन्न प्रकार के स्वादों का ज्ञान होता है।

प्रत्येक स्वाद कलिका अण्डाकार होती है। इनके अक्ष सतह पर सीधे एवं सम्बद्ध (Perpendicular) दिशा में स्थित रहते हैं। इनमें नीचे की ओर से रक्तवाहिकाएँ और तन्त्रिकाएँ भी प्रवेश करती हैं स्वाद कलिकाओं में कीमोरिसप्टर या गस्टेटरी कोशिकाएँ तथा सहारा देने वाली समोर्टिंग कोशिकाएँ रहती हैं।

मूलभूत स्वाद संवेदन (Basic taste sensation)-. मुख्य रूप से स्वाद की अनुभूतियाँ मीठी, खट्टी, कड़वी एवं नमकीन चार प्रकार की होती है। आधिकांश खाद्य पदार्थों में स्वाद के साथ-साथ महक (Flavor) भी होते हैं, किन्तु यह गंध की संवेदना से सम्बन्धित रहती है और गंध के रिसेप्टर्स को उद्दीप्त करती है न कि स्वाद के रिसेप्टर्स को।

मूलभूत स्वाद संवेदनाएँ जीभ की सतह पर समस्त भागों में समानरूप से उत्पन्न नहीं होती हैं। जीभ के निश्चित भाग ही विशेष स्वाद द्वारा प्रभावित होते हैं। मीठे एवं नमकीन स्वाद जीभ के छोर या अग्रभाग (Sides) पर, खट्टा स्वाद जीभ के दोनों पार्श्वों (Sides) में तथा कड़ुवा स्वाद जीभ के पिछले भाग (गले के पास) में पता लगता है। जीभ के मध्य भाग में विशेष 'स्वाद संवेदना' नहीं रहती है। इस प्रकार, प्रत्येक निश्चित विशेष स्वद के लिए जीभ में निश्चित विशेष स्वाद कलिकाएँ (Taste buds) रहती हैं, जो किसी विशेष प्रकार के उद्दीपन से ही प्रभावित होती हैं।

स्वाद आवेगों का पथ (Pathways for taste impulses)-स्वाद संवेदनाओं के आगेग जीभ के अगले दो तिहाई भाग से फेशियल तन्त्रिका **(**Facial nerve) की शाखा द्वारा**,** पिछले एक तिहाई भाग से ग्लॉसोफेरन्जियल तन्त्रिका (Gloss pharyngeal nerve) द्वारा तथा तालू (Palate) एवं ग्रसनी **(**Pharynx) से वेगस तन्त्रिका (Vagus nerve) द्वारा मस्तिष्क तक को संचारित होते हैं। उपर्युक्त तीनों कपालीय तन्त्रिकाओं के स्वाद तन्तु (Taste fibres) मेड्यूला ऑब्लांगेटा समाप्त (Terminate) होते हैं। यहाँ से अक्षतन्तु या एक्सॉन्स (Axons) थैलेमस

(Thalamus) की ओर निकलते हैं तथा फिर प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स के पैराइटल लोब् में स्थित 'स्वाद केन्द्र' (Taste centre) में पहुँच जाते हैं।

5.4 सारांश

आपने जाना कि ज्ञानेन्द्रियां क्या हैं तथा किस प्रकार से ये हमें बाहरी सूचनाओं से अवगत करवाती है। तथा बाहय वस्तुओं तथा सूचनाओं का ज्ञान करवाने में इनका कितना महत्व है। ऑखों के द्वारा हम किसी भी दृश्य को देखने में, कान के द्वारा सुनने में तथा नाक के द्वारा गन्ध का अनुभव करने में सक्षम होते हैं। जीभ इन्द्रियां न हो तो खाने के जितने भी पदार्थ हैं , वे सब हमें स्वादहीन लगेंगे।इसके साथ ही चबाने एवं बोलने के कार्य में भी बाधा आयेगी। इसी प्रकार त्वचा इन्द्रियों के कार्य न करने पर हम किसी प्रकार की संवेदना का ही अनुभव नहीं कर पायेंगे।

यदि ये ज्ञानेन्द्रियां ना हो अथवा इनमें किसी प्रकार की कोई चोट लग जाये या क्षतिग्रस्त हो जाये तो हम देखने, सुनने एवं सूँघने में असमर्थ हो जाते हैं। अतः ज्ञानेन्द्रियां का भी हमारे शरीर की संरचना एवं कार्यप्रणाली में महत्वपूर्ण योगदान है।

5.5 शब्दावली

- घ्राण - नाक।
- त्वक - त्वचा।
- दीप्तिमान - प्रकाशमान।
- आच्छादित - आवृत
- स्पाइनल कार्ड - रीढ़ की हड्डी ।

5.6 अभ्यास प्रश्न:

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:-

1. मानव शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां होती है। जिनके द्वारा ..... का ज्ञान होता है।
2. प्रत्येक संवेदी तंत्रिका का अंतिम भाग कुछ विशेष प्रकार का बना होता है। जिसे..... कहते हैं ।
3. ..... इन्द्रिय किसी वस्तु की गंध का ज्ञान करवाती है।
4. ..... टिम्पोनिक मेम्ब्रेन एवं अन्तःकर्ण के बीच स्थित एक छोटा कक्ष है।
5. ..... में सुनने तथा संतुलन के अंग अवस्थित होते हैं।

1.बाहय जगत,2. अन्तांग, 3.घ्राण, 4. मध्यकर्ण, 5. अन्तःकर्ण।

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

- मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान- प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
- शरीर और शरीर क्रिया विज्ञान - मंजु तथा महेश चन्द्र गुप्ता, सांई प्रिन्ट, नई दिल्ली।
- मानव शरीर रचना भाग एक, दो, तीन - मुकुन्द स्वरुप वर्मा, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
- Essentials of Medical Physiology – K. Sembulingam & Prema Sembulingam, Medical Publishers (P) Ltd. New Delhi.

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न:

1. ज्ञानेन्द्रियों के अर्थ को स्पष्ट करते हुए नेत्र की संरचना एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. जिहवा की संरचना तथा कार्यों का वर्णन ।
3. त्वचा की संरचना एवं कार्यप्रणाली पर प्रकाश डालिए ।

इकाई - 6 पाचन तंत्र

इकाई संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 पाचन तंत्र का परिचय

6.4 पाचन तंत्र के प्रमुख अंग

- 6.4.1 मुँह
- 6.4.2 ग्रसनी
- 6.4.3 ग्रासनली
- 6.4.4 आमाशय
- 6.4.5 छोटी ऑत
- 6.4.6 बड़ी ऑत
- 6.4.7 मलाशय
- 6.4.8 गुदा

6.5 पाचन तंत्र के सहायक अंग

- 6.5.1 दांत
- 6.5.2 जिह्वा
- 6.5.3 गाल
- 6.5.4 लार ग्रन्थियॉ
- 6.5.5 अग्न्याशय
- 6.5.6 यकृत

6.6 पाचन तंत्र की क्रिया विधि

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 अभ्यास प्रश्न

6. 10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6. 11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.12 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाई में आपने शरीर की प्रमुख ज्ञानेंद्रियों का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप पाचन तंत्र जो कि शरीर का एक अति महत्वपूर्ण तंत्र है, के बारे में अध्ययन करेंगे। पाचन तंत्र में वे सभी अंग सम्मिलित होते हैं जो भोजन को चबाने, निगलने, पचने और अवशोषित करने के अलावा अधपचे भोजन को बाहर निकालने का कार्य करते हैं। इसमें कई पाचक अंगों समेत विभिन्न्य सहायक अंगों का समावेश होता है।

आप जानते हैं कि पाचन तंत्र की कार्यप्रणाली क्या है व शरीर को स्वस्थ रखने में तथा किसी भी कार्य करने में जिस ऊर्जा की हमें आवश्यकता होती है वह पाचन तंत्र द्वारा किस प्रकार सम्पादित होती है।

इसके अतिरिक्त आप पाचन तंत्र के विभिन्न अवयवों जैसे मुख, अन्न प्रणाली, पाकस्थली पक्वाशय, ऑतें इत्यादि की कार्य प्रणाली व संरचना को समझेंगे। वास्तव में पाचन संस्थान जो समस्त खाद्य पदार्थों को पचाकर शरीर में खपने योग्य बनाता हैं। साथ हैं । पाचन संस्थान शरीर को ऊर्जा प्रदान कर सारे तंत्रों को पोषण देने का कार्य करता है।

6.2 उद्देश्य:-

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- पाचन तंत्र के बारे में एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- पाचन तंत्र की रचना व क्रिया की विस्तृत रूप से विवेचना कर सकेंगे।
- पाचन अंगों की कार्य विधि का विश्लेषण कर सकेंगे।
- मुख की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से अध्ययन कर सकेंगे।
- आमाशय की संरचना एवं कार्य प्रणाली को समझ सकेंगे।
- ग्रहणी की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- छोटी ऑत की संरचना एवं कार्य प्रणाली का अध्ययन कर सकेंगे।
- बड़ी ऑत की संरचना एवं कार्य प्रणाली का ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।

- यकृत की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे।
- पित्ताशय की संरचना एवं इसकी कार्य प्रणाली को जान सकेंगे।
- अग्न्याश्य की संरचना एवं कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- पाचन क्रिया की कार्य प्रणाली का विश्लेषण कर सकेंगे।

6.3 पाचन तंत्र का परिचय:-

साधारण रूप में जो भी भोजन हम ग्रहण करते हैं वह वास्तव में तभी हमारे लिए उपयोगी होता है, जब वह इस लायक हो जाये कि शरीर के अन्तर्गत रक्त कोशिकाओं एवं अन्य कोशिकाओं तक पहुँच कर शक्ति व ऊर्जा उत्पन्न कर सके। यह कार्य पाचन प्रणाली के विभिन्न अंग मिलकर करते हैं। पाचन का कार्य पेशियों की गतियों, रासायनिक स्राव के माध्यम से होता है। पाचन वह रासायनिक व यान्त्रिक क्रिया है, जिसमें ग्रहण किया गया भोजन अत्यन्त सूक्ष्म कणों में विभक्त होकर विभिन्न एन्जाइम्ज व पाचन रसों की क्रिया के फलस्वरूप परिवर्तित होकर, रक्त कणों द्वारा अवशोषित होने योग्य होकर कोशिकाओं के उपयोग में आता है। पाचन की यह सम्पूर्ण क्रिया पाचन अंगों के द्वारा सम्पन्न होती है। वास्तव में पाचन की प्रक्रिया एक रासायनिक एवं यान्त्रिक प्रक्रिया है। जिसमें भोजन के दीर्घ अणु टूटकर विविध एन्जाइम्स की सहायता से सूक्ष्म अणुओं में विभक्त हो जाते हैं। सूक्ष्म अणुओं का अवशोषण आंतों में होकर वह शरीर में खपने योग्य बनता है तथा शरीर की कोशिकाओं को ऊर्जा प्रदान करता है। हम भोजन को जिस रूप में लेते हैं वह उसी रूप में शरीर की कोशिकाओं द्वारा ग्रहण नही होता है वरन् भोजन में सम्मिलित तत्व जब अपने सरल रूप में आते हैं तभी वह ग्रहण हो पाते हैं । नीचे एक सारणी दी जा रही है जो यह प्रदर्शित करती है कि भोजन के रूप में ग्रहण की गई वस्तु किस रूप में परिवर्तित होती है:

क्रम संख्या	**भोज्य पदार्थो के नाम**	**परिवर्तित पदार्थ**
1.	कार्बोहाइड्रेट	ग्लूकोज,फैक्टोज,गैलेक्टोज,सुक्रोज आदि सरल शर्करा में।
2.	प्रोटीन	पेप्टोन्स तथा अमीनो अम्ल में।
3.	वसा	वसीय अम्ल में तथा ग्लिसरॉल में।
4.	जल	अपनी वास्तविक स्थिति में अवशोषित हो जाता है।

5.	खनिज लवण	अपनी वास्तविक स्थिति में अवशोषित हो जाते हैं।
6.	विटामिन	अपनी वास्तविक स्थिति में अवशोषित हो जाते हैं।

6.4 पाचन तंत्र के प्रमुख अंग:-

पाचन संस्थान में निम्नलिखित अंग अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

6.4.1 मुख (Mouth):-

मुँह पाचन तन्त्र का प्रमुख अंग है। मुँह को दो भागों में विभक्त किया जाता है पहला भाग मुख गुहा (Buccal Cavity) जो बाह्य रूप से होंठ गाल तथा अन्दर से दाँत तथा मसूड़ों में विभक्त रहता है। दूसरा भाग दाँत व मसूड़ों से पीछे की ओर ग्रसनी में खुलता है। मुँह का भीतरी भाग श्लेष्मिक झिल्लियों द्वारा निर्मित है। ये भी त्वचा जैसी होती है, तथा इसका रंग लाली लिए रहता है। इसमें रसस्रावी ग्रन्थियॉ (Secreting glands) होती हैं और इसमें पास आने वाले पदार्थ का शोषण करने की क्षमता भी रहती है। जीभ, तालुमूल, तालु तथा दाँत - ये सब मुख के भीतर ही रहने वाले अवयव हैं।

6.4.2 ग्रसनी (Pharynx)

मुख गुहा पश्चभाग की ओर जहॉ खुलती है उस भाग को ग्रसनी कहते हैं। ग्रसनी से श्वास तथा पाचन संस्थान का मार्ग शुरू होता है। श्वास प्रणाली के मार्ग का श्वासनली (Trachea) तथा पाचन संस्थान के मार्ग को ग्रासनली (Esophagus) कहते हैं। ध्यान रहे हम जो भी भोजन को चबाते हैं वह ग्रसनी के द्वारा ही ग्रासनली में पहुँचता है। इसकी लम्बाई 4 से 6 इंच तक होती है। ग्रसनी के मुख्य रूप से जीन विभाग होते है।

S. No	Part of Pharynx	Position
1.	नासा ग्रसनी	नासिका का पीछे वाला भाग जहाँ से नेति को पकड़कर खींचा जाता है।
2.	मुख ग्रसनी	जहाँ पर जीभ की मूल है। इसके पार्श्वीय भित्तियों को में टॉन्सिल रहते हैं।
3.	स्वर ग्रसनी	यह वह भाग है जो आहार नाल में खुलता है।

ग्रसनी के बीच का अस्तर तन्तुमय ऊतक तथा वाह्य अस्तर पेशीय होता है जिसे संकुचन पेशियॉ कहते हैं।

6.4.3 ग्रासनली (Esophagus)

जिन नली के द्वारा भोजन अमाशय में पहुँचता है, उसे अन्न प्रणाली अथवा अन्न मार्ग (Alimentary canal) कहते हैं। ग्रासनली सर्वाइकल क्षेत्र के 6वें कशेरूक से शुरू होती है और नीचे की ओर होती हुई थोरेसिक क्षेत्र के 10 वें कशेरूक तक होती है। ग्रासनली की भित्ति की निम्न परतें होती हैं।

- श्लेष्मिक कला (Mucosa)
- अवश्लेष्मिक परत (Sub mucosa)
- पेशीय परत (Muscular External)

ग्रासनली गले (pharynx) से आरम्भ होती है। इसके नीचे की गलनली अथवा ग्रासनली (Gullet) है, जो लगभग 10-15 इंच तक लंबी होती है तथा भोजन को मुॅह से आमाशय तक पहुॅचाने का कार्य करती है। इसमें कोई हड्डी नही होती। यह मॉशपेशियॉ तथा झिल्लियों से बनी होती है।

6.4.4 आमाशय (Stomach)

यह नाशपती के आकार की एक खोखली थैली जैसा अवयव है जो बांई ओर के उदर - गह्वर के ऊपरी भाग में तथा उदर वक्ष (महाप्राचीरा) के ठीक नीचे की ओर स्थित है। हृत्पिण्ड इसी पर स्थित है। यह गलनली के द्वारा मुॅह से संबधित रहता है।

आमाशय पाचन संस्थान का सबसे चौड़ा भाग है इसका एक भाग ग्रासनली तथा एक भाग छोटी ऑत के पहले भाग ग्रहणी पर खुलता है। आमाशय को पाकस्थली भी कहा जाता है। पाकस्थली का भीतरी भाग श्लैष्मिक झिल्ली से भरा रहता है। जब पेट खाली होता है, तब इस श्लैष्मिक झिल्ली की तह जैसी बन जाती है। श्लैष्मिक झिल्ली का अधिकांश भाग पाकस्थली के भीतरी भाग को तर बनाये रखने के लिए श्लैष्मिक स्राव करता है, जिससे कितने ही भागो में रसस्रावी ग्रन्थियॉ भर जाती हैं। इन ग्रन्थियों से पेप्सिन तथा हाइड्रोक्लोरिक एसिड के स्राव होते हैं। इन ग्रन्थियों को पेप्सिन ग्रंथियॉ कहा जाता है। पानी तथा नमक पर आमाशयिक रस की कोई क्रिया नही हो पाती।

पाकस्थली के तीन स्तर होते हैं। इसका बाहरी तथा ऊपर वाला स्तर उदरक (Peritoneum or Serous Coat) कहा जाता है। इसे पाकस्थली का एक ढक्कन कहना अधिक उपयुक्त रहेगा। इस स्तर एक प्रकार की रसस्रावी झिल्ली है जो उदर प्राचीर (Abdominal Wall) के भीतरी ओर रहती है। पाकस्थली का मध्यस्तर (Middle or Muscular portion) मॉसपेशी द्वारा निर्मित होता है। खाये हुए पदार्थ के मांशपेशी में पहुंचते ही इसकी सब पेशियॉ एक-के-बाद-एक संकुचित होने लगती हैं, जिसके कारण लहरें भी उठकर पाकस्थली की एक छोर से दूसरी छोर तक हिलाती हैं। इस क्रिया के कारण खाया हुआ पदार्थ चूर-चूर होकर लेई जैसा रूप ग्रहण कर लेता है।

पाकस्थली का अन्तिम तीसरा स्तर (Mucous Coat) मधुमक्खी के छत्ते जैसा होता है। इसमें श्लैष्मिक झिल्ली के बहुत से छोटे- छोटे छिद्र रहते हैं। इस झिल्ली की ग्रन्थियॉ में उत्तेजना होते रस स्राव होने लगता है। ये ग्रन्थियॉ दानेदार सी होती हैं। इन्हें लसिका ग्रंथियॉ कहा जाता है। आमाशय 24 घंटे में लगभग 5-6 लीटर रस निकालता है। इसमें भोजन प्रायः 4 घंटे तक रहता है तथा इसमें लगभग 1.5 किलोग्राम भोजन समा सकता है। परन्तु कई लोगों में इसकी क्षमता बहुत अधिक पायी जाती है।

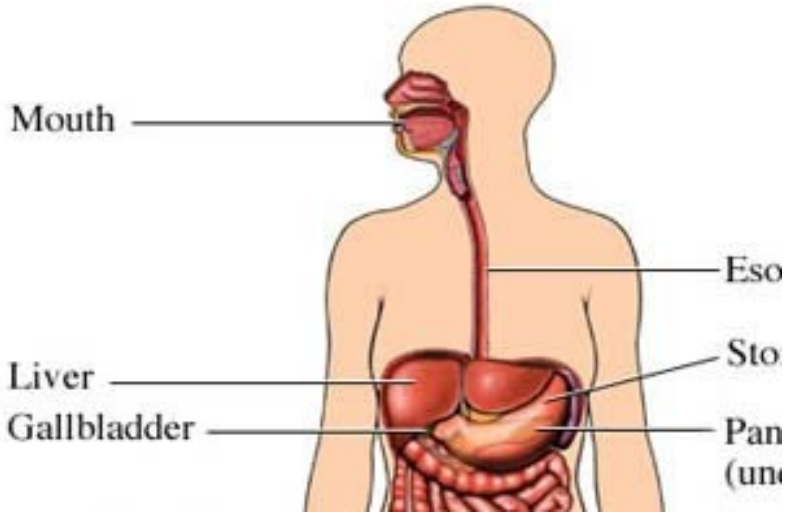

6.4.5 छोटी ऑत (Small Intestine). छोटी ऑत लगभग 6-7 मीटर लम्बी बड़ी ऑत से ढकी रहती है। छोटी ऑत के तीन विभाग होते हैं।

- ग्रहणी (Duodenum)
- मध्यान्त्र (Jejunum)

- शेषान्त्र (Ileum)

I. **ग्रहणी (**Duodenum). आमाशय के पाइलोरिक छोर के आरम्भ होने वाले अंत के भाग को पक्वाशय कहते हैं। यह अर्द्ध-गोलाकार में मुड़ कर अग्नयाशय ग्रंथि के गोल सिर को तीन दिशाओं में लपेटे रहता है यह लगभग 19 इंच लम्बा तथा आकार में घोड़े की नाल अथवा अंग्रेजी के (c) अक्षर जैसा होता है। यह आमाशय के पाइलोरिक से आरंभ होता है। इसका पहला भाग ऊपर दाईं ओर पित्ताशय के कण्ठ तक जाता है तथा वहॉ से दूसरा भाग नीचे की ओर बढ़ता है।

पक्वाशय के भीतर पित्त वाहिनी तथा अग्न्याशय के मुँह एक ही स्थान पर खुलते हैं जिनसे निकले स्राव एक ही छिद्र द्वारा पक्वाशय में गिरते हैं। पक्वाशय का ऊपरी भाग पैरीटोनियम से ढॅका रहता है तथा अन्तिम भाग मध्यान्त्र (Jejunum) से मिला रहता है। पक्वाशय में आमाशय से जो आहार रस आता है, उसके ऊपर पित्त रस (Bill juice) तथा क्लोम रस (Pancreatic Juice) की क्रिया होती है। क्लोम रस पानी जैसा पतला, स्वच्छ, रंगहीन, स्वादरहित तथा क्षारीय - प्रतिक्रिया वाला होता है। इसका आपेक्षित गुरूत्व लगभग 1.007 होता है। इसमें चार विशेष पाचक तत्व-(1) ट्रिप्सीन (Tyrosine) , (2) एमिलौप्सीन (Amylopsin), (3) स्टीप्सीन (Stimson) तथा (4) दुग्ध परिवर्तक पाये जाते हैं। ये आहार रस पर अपनी क्रिया करके प्रोटीनों को पेप्टोन्स में, श्वेतसार को वसा को ग्लीसरीन तथा अम्ल एवं दूध को दही में परिवर्तित कर देते हैं।

II. **मध्यान्त्र** (Jejunum). ग्रहणी को छोडकर यह छोटी ऑत का 2/5 भाग होता है। लगभग 2.5 से 3 मीटर (लगभग 8-10 फीट) लम्बा होता है। इस भाग पर छोटे छोटे रसांकुर होते हैं जो भोजन का अवशोषण करते हैं।

III. **शेषान्त्र** (Ileum).यह छोटी ऑत का सबसे अन्तिम भाग है जो बड़ी ऑत के प्रथम भाग (**Ascending Colon**)से चिपका रहता है। यह लगभग 3 मीटर लम्बा होता है जो भाग बड़ी ऑत के शुरूवाद सीकम पर जुड़ता है वहॉ पर इलियोसीकम वालवद होते हैं जो संकुचित होते हुए भोज्य पदार्थों को वापस आने से रोकता है।

6.4.6 बड़ी ऑत (Large Intestine)

छोटी ऑत जहा समाप्त होती है वहॉ से एक बड़ी ऑत आरंभ होती है। जिससे अन्न-पुट (Intestinal Cancun) मिली होती है। यह छोटी ऑत से अधिक चौड़ी तथा लगभग 5-6 फुट

लंबी होती है। इसका अन्तिम डेढ़ अथवा 2 इंच का भाग ही मलद्वार अथवा गुदा कहा जाता है। गुदा के ऊपर वाले 4 इंच लम्बे भाग को मलाशय कहते हैं। यह बड़ी ऑत , छोटी ऑत के चारों ओर घेरा डाले पड़ी रहती है। छोटी ऑत की तरह ही बड़ी ऑत में भी कृमिवत् सकुंचन होता रहता है। इस गति के कारण छोटी ऑत से आये हुए आहार रस (Chyme)के जल भाग का शोषण होता है। छोटी ऑत से बचा हुआ आहार रस जब बड़ी ऑत में आता है, तब उसमें 95 प्रतिशत जल रहता है। इसके अतिरिक्त कुछ भाग प्रोटीन , कार्बोहाइड्रेट तथा वसा का भी होता है। बड़ी ऑत में इन सबका ऑक्सीकरण होता है तथा जल के बहुत बड़े भाग को सोख लिया जाता है। अनुमानतः 24 घण्टे में बड़ी ऑत में 400 बण्बण् पानी का शोषण होता है। यहॉ से भोजन रस का जलीय भाग रक्त में चला जाता है तथा गाढ़ा भाग विजातीय द्रव्य के रूप में मलाशय में होता हुआ मलद्वार से बाहर निकल जाता है।

वस्तुतः बड़ी ऑत के निम्न सात भाग होते हैं।

- सीकम (Cecum)
- आरोही कोलन (Ascending)
- अनुप्रस्थ कोलन (Transfer Colon)
- अवरोही कोलन (Descending Colon)
- सिग्मॉयड कोलन (Sigmoid)
- मलाशय (Rectum)
- गुदाद्वार (Anus)

6.4.7 मलाशय (Rectum). यह बड़ी ऑत के सबसे नीचे थोड़ा फैला हुआ लगभग 12 से 18 से0 मी0 लम्बा होता है। इसकी पेशीय परत मोटी होती है। मलाशय के म्यूकोशा में शिराओं का एक जाल होता है जब ये फूल जाती है तो इनमें से रक्त निकलने लगता है जिसे अर्श या बवासीर कहा जाता है

6.4.8 गुदा (Anus). गुदा पाचन संस्थान अन्तिम भाग है। इसी भाग से मल का निष्कासन होता है। गुदीय नली श्लैष्मिक परत, एक प्रकार के शल्की उपकला की बनी होती है जो ऊपर की ओर मलाशय की म्यूकोसा में विलीन हो जाती है।

6.5 पाचन तंत्र के सहायक अंग;

6.5.1 दॉत - दॉत मुख गुहा में ऊपरी जबड़े एवं निचले जबड़े के अस्थिल पर्तों में स्थिर रहते है। एक व्यस्क व्यक्ति में इनकी संख्या 32 होती है। दॉतों की सहायता से भोजन को चबाया जाता है।

6.5.2 जिह्वा - जिह्वा हॉयड अस्थि से जुड़ी हुई मुख के तल में स्थित एक पेशीय रचना होती है। जिह्वा में छोटे - छोटे उभार होते हैं जिन्हें (**Papillae**) कहते हैं। **Papillae** में स्वाद कलिकाएं (Taste buds) होती हैं। हम जब भोजन करते है तो हमें स्वाद का अनुभव होता है यह अनुभव हमें स्वाद कलिकाओं (**Taste buds**) के कारण ही होता है।

6.5.3 गाल -गाल हमारे दोनों ऑखों के नीचे स्थित होता है। गाल में (**Buccinators Muscles**) बक्सीनेटर नामक मॉसपेशियां पायी जाती हैं। गाल में अन्दर की ओर बहुत छोटी श्लेष्मा का स्रावण करने वाली ग्रन्थियॉ पायी जाती है जो श्लेष्मा का स्रावण कर पाचन में बहुत मदद करती हैं।

6.5.4 लार ग्रन्थियॉ - मानव शरीर में तीन जोडी लार ग्रन्थियॉ पायी जाती हैं। जो इस प्रकार से हैं।

I. **Parotid Gland**. कर्ण मूल ग्रन्थियॉ- कानों के भीतरी भाग में नीचे की ओर 1-1 ग्रन्थि स्थित होती है। इन लवण, जल एवं टायलिन का स्रावण होता है।
II. **Sub mandibles Gland** अब अधोहनुज ग्रन्थियॉ मुख के निचले जबड़े की ओर 1-1 ग्रन्थि स्थिर होती है। इन ग्रन्थियों से लवण, जल एवं म्यूसीन का स्रावण होता है।
III. **Sublingual Gland** अवजिह्वी ग्रन्थियॉ मुख के तल में जिह्वा के थोड़ी नीचे की ओर स्थित होती है। आकार में ये ग्रन्थियॉ छोटी होती हैं। इन ग्रन्थियॉ से भी लवण, जल एवं म्यूसीन का स्रावण होता है।

6.5.5 अग्नाशय (**Pancreas**). यह भी एक बड़ी ग्रन्थि है , परन्तु आकार में यकृत से छोटी होती है। प्लीहा के पास रहती है। इसमें से क्लोम रस (pancreatic juice) निकल कर ऑतों में जाता है। क्लोम रस एक प्रकार का क्षारीय द्रव होता है क्लोम रस में तीन प्रकार के पाचक पदार्थ पाये जाते हैं-(1) प्रोटीन विश्लेषक, (2) कार्बोहाइट्रेड विश्लेषक तथा (3) वसा विश्लेषक । प्रोटीन विश्लेषक की सहायता से प्रोटीन का विश्लेषण होता है । श्वेतसार विश्लेषक की सहायता से श्वेतसार

से शर्करा का निर्माण होता है तथा वसा विश्लेषक की सहायता से वसा (चर्बी) से ग्लिसरीन अम्ल तैयार होता है।

पित्त से मिलकर क्लोम रस की क्रिया अत्यन्त प्रबल हो जाती है। चर्बी वाले पदार्थों को पचाने के लिए इसकी आवश्यकता होती है। ऑतों में पित्त के रहने से इसकी क्रिया कम होती है तथा न रहने पर अधिक होती है अग्न्याशय के निम्न तीन भाग होते हैं।

I. शीर्ष **(Head)** -यह अग्न्याशय का सबसे चौड़ा भाग होता है।
II. देह **(Body)** यह अग्न्याशय का सबसे महत्वपूर्ण भाग होता है। इसका अन्तिम हिस्सा पुच्छ से जुड़ा रहता है।
III. पुच्छ **(Tail)** यह अग्न्याशय का सबसे अन्तिम भाग है। जो बॉये किडनी के सामने से प्लीहा तक फैला रहता है।

6.5.6 यकृत (Liver) यह मनुष्य शरीर की सबसे बड़ी ग्रन्थि (Gland) है। यह उदर में दायीं ओर वक्षोदरमध्यस्थ - पेशी (Diaphragm)के नीचे स्थित है। यकृत की लम्बाई लगभग 9 इंच, चौड़ाई 10.12 इंच तथा भार लगभग 50 औंस होता है। इसका भार मानव शरीर के सम्पूर्ण भाग का 1.40 प्रतिशत होता है। इसका आपेक्षिक गुरूत्व 1.005 से 1.006 होता है। इसका रंग कत्थई होता है। यह ऊपर से छूने में मुलायम तथा भीतर से ठोस होता है। यह 24 घण्टे में लगभग 550 ग्राम पित्त (Bile) तैयार करता है इसका स्वरूप त्रिभुजाकार होता है। यकृत में स्थित पित्ताशय (Gall Bladder) पाचन क्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है पित्ताशय का आकार एक नाशपती के समान खोखली थैली जैसा होता है। यह थैली यकृत की सतह के भीतर रहती है तथा इसका अन्तिम बड़ा शिरा कुछ - कुछ दिखाई देता है। इसके भीतरी भाग से पित्ताशयिक नली (Cystic Duct) बनती है, जो मध्यभाग के पीछे की ओर से होती हुई यकृत नली में जाकर मिल जाती है। इस प्रकार पित्त - प्रणाली (Bile Duct) का निर्माण होता है।

6.6 पाचन क्रिया:

हम जो कुछ भी खाते हैं। वह सर्वप्रथम मुँह में पहुँचता है। वहॉ दातों द्वारा उसे छोटे - छोटे टुकड़ों में कर दिया जाता है। मुँह की ग्रन्थियों से निकलने वाला लार नामक एक स्राव उस कुचले हुए भोजन को चिकना बना देता है ताकि वह गले द्वारा आमाशय से आसानी से फिसल कर पहुँच सके। इस लार में कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ भी होते हैं। जो भोजन को पचाने में सहायता करते हैं इनमें से एक म्यूसिन है जो साग अथवा छिलकों पर अपनी क्रिया प्रकट करता है। दूसरा टाइलिन

है जिसकी क्रिया कार्बोहाइट्रेड्स पर होती है। जब आहार आमाशय में पहुँचने को होता है, उस समय आमाशय की ग्रन्थियों से एक गैस्ट्रिक स्राव (Gastric juice) निकलता है जो एक तेजाब की तरह होता है। यह आहार द्वारा आमाशय में पहुँचते हुए जीवाणु को नष्ट करता है तथा पाचन - क्रिया में सहायता पहुँचाता है। यह आहार को गला कर लेई के रूप में (Chyme) बदल देता है, जिसके कारण वह सुपाच्य हो जाता है। आमाशय का पेप्सीन नामक एन्जाइम अर्थात् पाचक रस प्रोटीन पर क्रिया करता है और उसे एक किस्म के रासायनिक योग पेप्टोन (Peptone) में बदल देता है। आमाशय में पहुँचा हुआ आहार एकदम लेई की भॉति घुट जाता है। वहॉ से वह पक्वाशय में पहुँचाता है। यकृत से उत्पन्न होने वाला पित्त रस पक्वाश्य में पहुँचकर इस आहार में जा मिलता है साथ ही अग्न्याशय का रस भी जा मिलता है। इन रसों के संयोग से भोजन घुलनशील वस्तु के रूप में परिणत हो जाता है।

आहार के पचने का अधिकांश कार्य आमाशय तथा पक्वाशय में ही होता है। तत्पश्यात् वह छोटी ऑत में होता हुआ बड़ी ऑत में पहुँचता है। ऑतों की मांसपेशियों क्रमशः फैलती तथा सिकुड़ती हुई भोजन को आगे की ओर बढाती रहती है। इस क्रिया को पेरीस्टालटिक गति (Peristaltic Moment) कहते हैं। बड़ी ऑतों में जल के भाग का शोषण हो जाने के बाद भोजन का सार भाग द्रव के रूप में रक्त में मिल जाता है तथा ठोस भाग मल के रूप में गुदा द्वार से बाहर निकल जाता है।

भोजन के सार भाग का शोषण दो प्रकार से होता है- (1) रक्त नलिकाओं द्वारा तथा (2) लसिका नलिकाओं द्वारा। प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा 40 प्रतिशत चर्बी का शोषण रक्त नलिकाओं द्वारा होता है तथा शेष चर्बी लसिका नलिकाओं द्वारा शोषित कर ली जाती है। प्रोटीन का शोषण मांसपेशियों द्वारा होता है। ये अपनी आवश्यकतानुसार प्रोटीन ग्रहण कर शेष को छोड़ देती है, तब वह शेष प्रोटीन रीनल धमनी द्वारा वृक्क में पहुँचता है और मूत्र के रूप में परिणत होकर मूत्र - नली द्वारा बाहर निकल जाता है।

कार्बोहाइट्रेड का अधिक भाग ग्लूकोज के रूप में रक्त द्वारा शोषित होकर सम्पूर्ण शरीर में फैलकर उसे शक्ति प्रदान करता है। पित्त की क्रिया द्वारा चर्बी (1) साबुन तथा (2) इमल्शन इन दोनों में बदल जाती है। साबुन वाला चर्म के निम्न भागों , गाल उदर की बाहरी दीवार तथा नितम्बों मे एकत्र होता है तथा इमल्शन वाला भाग लसिका नलियॉ द्वारा सम्पूर्ण शरीर में फैलकर शरीर के भीतर गर्मी पहुँचाने का कार्य करता है। नवजात शिशु का पाचन संस्थान भली - भॉति

विकसित नही हो पाता और उसमें पाचक रस भी नही बनता है, इसी कारण वह मां के दूध के अतिरिक्त कुछ भी नही पचा पाता, परन्तु वह ज्यों ज्यों वह बड़ा होने लगता है, त्यों त्यों उसकी पाचन शक्ति भी बढ़ती चली जाती है। 50 वर्ष की आयु तक पाचन शक्ति भी बढ़ती रहती है, तत्पश्यात् वह घटने लगती है। पाचन शक्ति कमजोर हो जाने पर मनुष्य को ऐसा आहार लेने की आवश्यकता पड़ती है जो आसानी से पच जाये। वृद्धावस्था में सादा तथा हल्का भोजन लेना ठीक रहता है। भारी भेजन लेने से खून का दबाव बढ़ जाया करता है।

6.7 सारांश:

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप पाचन तंत्र प्रक्रिया को भली- भॉति समझ चुके हैं। शरीर के आठ प्रमुख संस्थानों में पाचन तंत्र की अत्यधिक महत्व है। पाचन संस्थान मुख, अन्न प्रणाली, पाकस्थली, पक्वाशय, ऑतों, यकृत पित्ताशय और अग्न्याशय के माध्यम से पाचन क्रिया को सम्पादित करता है। हम जो भी खाते हैं वह सर्वप्रथम मुँह में आता है और दांतों द्वारा छोटे टुकड़ों में बदल जाता है। मुँह में स्थित लार भोजन को अन्न प्रणाली के माध्यम से आमाशय तक पहुँचाती है। आमाशय की ग्रन्थियों से स्रावित गैस्टिक जूस पाचन क्रिया में सहायक होते हैं फिर भोजन पक्वाशय में पहुँच पित्त रस में मिल जाता है। तत्पश्चात् ऑतों के माध्यम से यह शोषित होता है। भोजन का सार भाग शोषण के पश्चात् द्रव के रूप में रक्त से मिल जाता है तथा ठोस भाग गुदा द्वार से मल के रूप में बाहर निकल जाता है। इस प्रकार पाचन क्रिया विभिन्न अंगों के माध्यम से पूरी होती है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सहज रूप से पाचक अंगों की संरचना व पाचन क्रिया को समझ गये होंगे।

6.8 शब्दावली:

देह -	शरीर, काया
म्यूसीन -	लार में पाये जाने वाला एन्जाइम
लार -	लार मुख में पाये जाने वाला पाचन रस है।
छोटे -	छोटे कणों में विभक्त होकर लुग्दी जैसा बनने को कायम कहा जाता है।
पेप्सिन -	प्रोटीन पाचक एन्जाइम
टायलिन -	लार में पाये जाने वाला एन्जाइम
क्लोम –	अग्न्याशय

लीवर - यकृत

6.9 अभ्यास प्रश्न:

3. सत्य / असत्य बताइए।

(क) मनुष्य शरीर में सबसे बड़ी ग्रन्थि यकृत है।

(ख) चर्बी का इमल्शन वाला भाग लसिका नलियों द्वारा सम्पूर्ण शरीर में फैलकर शरीर के भीतर गर्मी पहुँचाने का कार्य करता है।

(ग) मल के दुर्गन्ध का कारण बड़ी ऑत में उपस्थित इण्डोल व स्कैटोल पदार्थ हैं।

(घ) आमाशय की ग्रन्थियों से पित्त रस और क्लोम रस स्रावित होता है।

(ड) टायलिन का स्रावण लार से होता है।

1 - वहुविकल्पीय प्रश्न –

(1) क. छोटी ऑत में कितने भाग होते हैं -

(अ) 2 (ब) 3 (स) 5 (द) 2

2. पक्वाशय को अन्य किस नाम से जाना जाता है।

(अ) आमाशय

(ब) ग्रहणी

(स) ग्रासनली

(द) इनमें से कोई नहीं

3. ग्रसनी के कितने भाग होते है-

(अ) 4 (ब) 2 (स) 6 (द) 3

4. भोजन का पाचन कहॉ खत्म होता है।

(अ) आमाशय

(ब) ग्रहणी

(स) इलियम

(द) जेजुनम

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

1 - वहुविकल्पीय प्रश्न -

(क) ब (ख) अ (ग) द (घ) ब

2. सत्य/असत्य बताइए।

(क) सत्य

ख असत्य

(ग) सत्य

(घ) सत्य

(ड़) सत्य

6.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची;

1. गुप्ता, प्रो0 अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन आगरा।

2. गौढ़ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

3. प्रकाश ऐ0 (1998) अ टेक्स्ट बुक ऑफ एनाटॉमी एण्ड फिसियोलॉजी, खेल साहित्य केन्द्र नई दिल्ली।

4. शर्मा डा0 तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।

5. वर्मा, मुकुन्द स्वरूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1, 2, 3 मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली

6. सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्ड फिजियोलोजी, भाषा भवन, मथुरा

7. अग्रवाल, जी0 सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्युप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद

6.12 निबंधात्मक प्रश्न:

1. पाचन क्या है? पाचन संस्थान के मुख्य अंगों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

2. पाचन क्रिया को विस्तारपूर्वक समझाइये।

3. पाचन संस्थान के सहायक अंगों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

इकाई 7 - रक्त परिसंचरण तंत्र

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 रक्त परिसंचरण तंत्र का परिचय
7.4 रक्त के अवयव
7.4.1 प्लाज्मा
7.4.2 रक्त कणिकायें
7.5 रक्त के कार्य
7.6 रक्त संचरण में सहायक प्रमुख अवयव
7.6.1 हृदय
7.6.2 धमनियॉं
7.6.3 शिराएँ
7.6.4 कोशिकाएं तथा लसिकायें
7.6.5 फेफड़े
7.6.6 महाधमनी तथा महा-शिरा
7.7 सारांश
7.8 अभ्यास प्रश्न
7.9 शब्दावली
7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
7.12 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना:-

मानव शरीर विभिन्न तंत्रों से मिलकर बना है। मनुष्य के शरीर में एक विस्तृत नसों, नाडियों का एक जाल बिछा होता है। जिस प्रकार हमारे घरों में पानी के वितरण के लिए पाइप लाइन बिछी

होती है, उसी प्रकार रक्त के पूरे शरीर में संचरण के लिए धमनी तथा शिराओं की एक पाइप लाइन होती है। इसी पाइप लाइन को परिसंचरण तंत्र कहते है। इस इकाई में रक्त परिसंचरण अथवा परिवहन तंत्र का वर्णन किया जा रहा है। इस इकाई में आप जानेंगे कि किस प्रकार रक्त परिसंचरण तंत्र हृदय, धमनियां, शिराओं आदि के द्वारा रक्त को पूरे शरीर में प्रवाहित करता है तथा साथ ही दूषित रक्त को किस प्रकार शुद्धिकरण के लिए भेजता है। रक्त शरीर का एक महत्वपूर्ण अवयव है। प्रस्तुत इकाई में रक्त परिसंचरण के विविध अवयवों का आपके अवलोकनार्थ वर्णन किया जा रहा है।

7.2 उद्देश्य:-

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- रक्त संचरण तंत्र के विषय में एक सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रक्त के विविध अवयवों को समझ करेंगे।
- रक्त विश्लेषण में मिश्रित पदार्थों को विस्तारपूर्वक समझ सकेंगे।
- रक्त विश्लेषण में मिश्रित पदार्थों के उपभागों के मुख्य कार्यों के बारे में ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- रक्त के प्रमुख कार्यों का भली-भॉति वर्णन कर सकेंगे।
- रक्त संचरण में सहायक प्रमुख अवयवों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हृदय की संरचना एवं कार्यों का अध्ययन करेंगे।
- धमनियों की संरचना एवं कार्यों की विवेचना कर सकेंगे।
- शिराओं की संरचना एवं कार्यों को जान सकेंगे।
- कोशिकाओं तथा लसिकाओं की संरचना एवं कार्यों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- महाधमनी तथा महाशिरा की कार्य प्रणाली का विस्तृत रूप से वर्णन कर सकेंगे।

7.3 रक्त परिसंचरण तंत्र का परिचय:-

शरीर के भीतर जो एक लाल रंग का द्रव-पदार्थ भरा हुआ है, उसी को रक्त (Blood) कहते हैं। रक्त का एक नाम रुधिर भी है रुधिर को जीवन का रस भी कहा जा सकता है। यह संपूर्ण शरीर में निरन्तर भ्रमण करता तथा अंग-प्रत्यंग को पुष्टि प्रदान करता रहता है। जब तक शरीर में इसका संचरण रहता है तभी तक प्राणी जीवित रहता है। इसका संचरण बन्द होते ही व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। अब प्रश्न उठता है कि रुधिर की उत्पत्ति कैसे होती है। पाठको रुधिर की उत्पत्ति भ्रूण की मीसोडर्म से होती है। रुधिर मूल रूप से एक तरल संयोजी ऊतक (Fluid Connective Tissue) होता है।

सामान्यतः मनुष्य शरीर में रक्त की मात्रा 5-6 लीटर होती है। एक अन्य मत के अनुसार मनुष्य के शारीरिक भार का 20वाँ भाग रक्त होता है। रक्त पूरे शरीर में दौड़ता रहता है। परिसंचरण तंत्र में मुख्य रूप से हृदय, फेफड़े, धमनी व शिरा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हमारा हृदय एक पम्पिंग मशीन की तरह कार्य करता है जो अनवरत अशुद्ध रक्त को फेफड़ों में शुद्ध करने तथा फिर शुद्ध रक्त को पूरे शरीर में भेजता रहता है। रक्त परिसंचरण की यह प्रक्रिया जीवन भर चलती रहती है।

अब आप रक्त के अवयव, कणिकाएं,कार्य के बारे में जानेंगे साथ ही साथ धमनी, शिरा की कार्य प्रणाली को समझेंगे।

7.4 रक्त के अवयव:-

रक्त (रूधिर) एक तरल संयोजी ऊतक (Fluid Connective Tissue) होता है। इसका pH-7.3 से 7.5 के बीच होता है। रक्त का आपेक्षिक गुरूत्व 1.065 होता है। मनुष्य शरीर के भीतर इसका तापमान 100 डिग्री फा.हा. रहता है, परन्तु रोग की हालत में इसका तापमान कम अथवा अधिक भी हो सकता है। इसका स्वाद कुछ 'नमकीन' सा होता है। इसका कुछ अंश तरल तथा कुछ गाढ़ा होता है। रक्त में निम्नलिखित पदार्थों का मिश्रण पाया जाता है।

- प्लाज्मा (Plasma)
- रक्त कणिकायें (Blood Corpuscles)

इनके विषय में विस्तारपूर्वक विवरण निम्नानुसार है-

7.4.1 प्लाज्मा (Plasma)- यह रक्त का तरल अंश है। इसे रक्त-वारि' भी कहते हैं। यह हल्के पीले रंग की क्षारीय वस्तु है। इसका आपेक्षिक घनत्व 1.026 से 1.029 तक होता है। 100 सी.सी. प्लाज्मा में निम्नलिखित वस्तुएँ अपने नाम के आगे लिखे प्रतिशत में पायी जाती है-

1. पानीः 90%
2. प्रोटीनः 7%
3. फाइब्रीनोजिनः 4%
4. एल्फा ग्लोब्युलिनः 0.46%
5. बीटा ग्लोब्युलिनः 0.86%
6. गामा ग्लोब्युलिनः 0.75%
7. एलब्युमिनः 4.00%
8. रसः 1.4%
9. लवणः 0.6%

'प्लाज्मा' रक्त कणिकाओं को बहाकर इधर-उधर ले जाने का कार्य करता है तथा उन्हें नष्ट होने से बचाता है। यह रक्त को हानिकर प्रतिक्रियाओं से बचाता है, विशेष कर इसके 'एल्फा ग्लोब्युलिन' सहायक वस्तुओं को उत्पन्न करके रक्त को बाह्य-जीवाणुओं से बचाते हैं। किसी संक्रामक रोग के उत्पन्न होने पर रक्त में इनकी संख्या स्वतः ही बढ़ जाती है। इसका 'फाइब्रोनोजिन' रक्तस्राव के समय रक्त को जमाने का कार्य करता है, जिसके कारण उसका बहना रूक जाता है। प्रदाह तथा रक्तस्राव के समय यह एक स्थान पर एकत्र हो जाता है। प्लाज्मा' के कार्बनिक पदार्थ जो इसके घटक (Constituents) भी होते है जो इस प्रकार है।

1. **प्लाज्मा प्रोटीन** (Plazma Proteins) प्लाज्मा प्रोटीन की मात्रा लगभग 300 से 350 ग्राम होती है। जिसमें निम्न प्रोटीन प्रमुख है।

- एल्बूमिन (Albumin)
- ग्लोब्यूलिन (Globulins)
- प्रोथ्राम्बिन (Prothrombin)
- पाइब्रिनोजन (Fibrinogen)

2. **उत्सर्जी पदार्थ-** मानव शरीर कोशिकाओं से मिलकर बना होता है। कोशाओं से निकाली गई अमोनिया तथा यकृत कोशाओं से मुक्त किये यूरिया, यूरिक अम्ल,क्रिटीन,क्रिटिनीन आदि होते हैं जिसे रक्त से किडनी ग्रहण करती है तथा इनका निष्काषन होता है।
3. **पचे हुए पोषक पदार्थ-**इसमें ग्लूकोज,वसा, वसीय अम्ल, ग्लिसरॉल, अमीनों अम्ल,विटामिन,कोलेस्टाइल आदि होते हैं जिसे शरीर की सारी कोशायें आवश्यकतानुसार रक्त से लेती रहती हैं।
4. **हारमोंन्स**- ये अन्तस्रावी ग्रन्थियों से सीधे रक्त में सीधे साव्रित होतें है। शरीर की कोशिकायें इन्हें रक्त से ग्रहण करती हैं।
5. **गैसें**- प्लाज्मा में जल लगभग 0.25 ml,आक्सीजन 0.5ml, नाइट्रोजन तथा 0.5 ml कार्बन आदि गैसें घुली रहती हैं।
6. **सुरक्षात्मक पदार्थ**- प्लाज्मा में कुछ सुरक्षात्मक पदार्थ (प्रतिरक्षी पदार्थ) होते हैं। जैसे लाइसोजाइम, प्रोपरडिन, जो जीवाणुओं तथा विषाणुओं को नष्ट करने में सहायक है।
7. **प्रतिजामन-** प्लाज्मा में हिपेरिन नामक संयुक्त पालीसैकराइड मुक्त करती है जिस कारण रक्त को जमने से रोका जा सकता है।

7.4.2 रक्त कणिकायें- (Blood Corpuscles)

ये तीन प्रकार की होती हैं-

1. लाल रक्त कण (Red Blood Corpuscles)
2. श्वेत रक्त कण (White Blood Corpuscles)
3. प्लेटलेट्स (Platlets)
4. स्पाइंडल कोशिकाये (Spindle cell)

इनके विषय में अधिक जानकारी निम्न प्रकार है-

(1) **लाल रक्त कण**- लाल रक्त कणों को (Erythrocytes) कहा जाता है। रूधिर में 99% RBCs होते हैं। ये आकार में गोल, मध्य में मोटे तथा चारों किनारों पर पतले होते हैं। इनका व्यास 1/3000 इंच होता है। इनका व्यास-आवरण रंगहीन होता है, परन्तु इनकी भीतर एक प्रकार का तरल द्रव भरा होता है, जिसे 'हीमोग्लोबिन' (Haemoglobin) कहते हैं। हीम (Haem) अर्थात् लोहा तथा 'ग्लोबिन' (Globin) अर्थात् एक प्रकार की प्रोटीन। इन दोनों से मिलकर

'हीमोग्लोबिन' शब्द बना है। ये रक्तकण, जिन्हें रक्त -कोषा (Blood Cell) कहना अधिक उपयुक्त रहेगा, लचीले होते हैं तथा आवश्यकतानुसार अपने स्वरूप को परिवर्तित करते रहते हैं।

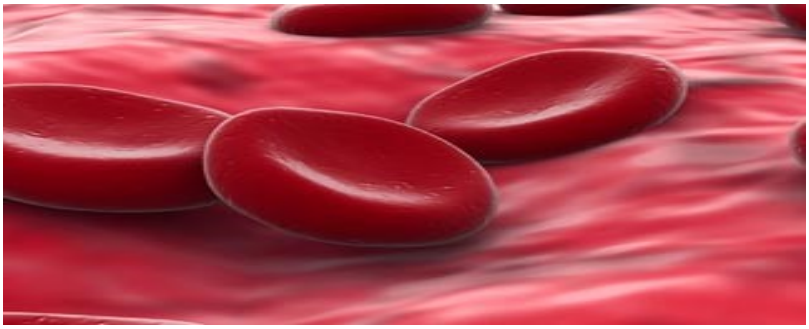

Scanning electron micrograph of human red blood cells

'हीमोग्लोबिन' की उपस्थिति के कारण ही इन रक्त कणों का रंग लाल प्रतीत होता है। हीमोग्लोबिन की सहायता से ये रक्त -फेफड़ों से ऑक्सीजन (Oxygen) अर्थात् प्राण वायु प्राप्त करके उसे शुद्ध रक्त के रूप में सम्पूर्ण शरीर में वितरित करते रहते हैं, जिसके कारण शरीर को कार्य करने की शक्ति प्राप्त होती है। ऑक्सीजन युक्त हीमोग्लोबिन को (Oxihaemoglobin) ऑक्सी हीमोग्लोबीन कहा जाता है। हीमोग्लोबिन के हीम अणुओं के लौह (Iron) में आक्सीजन के साथ एक ढीला और सुगमतापूर्वक खुला हो जाने वाला अर्थात प्रतिवर्ती वॉन्डस (Reversible) बना लेने की एक विशेष क्षमता होती है। अत फेफड़ों में आक्सीजन ग्रहण कर RBCs रूधिराणु इसका सारे शरीर में संवहन करते हैं और ऊतक द्रव्य के माध्यम से कोशाओं तक पहुॅचाते है इसलिए RBCs को आक्सीजन का वाहक कहा जाता है। हीमोग्लोबीन के प्रत्येक अणु में ग्लोबीन की चार कुण्डलित पालीपेप्टाइड श्रखलायें तथा हीम के चार अणु होते है।

4 Molecules of Globin+4 Molecules of Haem-- Haemoglobin (Hbu)

(2) श्वेत रक्त कण-इन्हें श्वेत रक्त अणुओं (Leucocytes) भी कहते है। ये रक्त कण प्रोटोप्लाज्म द्वारा वाहक निर्मित हैं। इनका कोई निश्चित आकार नहीं होता है। आवश्यकतानुसार इनके आकार में परिवर्तन भी होता रहता है। इनका कोई रंग नहीं होता अर्थात् ये सफेद रंग के होते हैं। लाल रक्त -कणों की तुलना में, शरीर में इनकी संख्या कम होती है। इनका अनुपात प्रायः 1:500 का होता है। एक स्वस्थ मनुष्य के रक्त की 1 बूँद में इनकी संख्या 5000 से 8000 तक पाई जाती है। इनका निर्माण अस्थि मज्जा (Bone

Marrow), लसिका ग्रंथियाँ(Limph Glands) तथा प्लीहा (Spleen) आदि अंगों में होता है। रक्त के प्रत्येक सहस्रांश मीटर में जहाँ रक्त कणों की संख्या 500000 होती है वहाँ श्वेत कणों की संख्या 6000 ही मिलती है। इनकी लम्बाई लगभग 1/2000 इंच होती है तथा सूक्ष्मदर्शी यंत्र की सहायता के बिना इन्हें भी नहीं देखा जा सकता। इनका आकार थोड़ी-थोड़ी देर में बदलता रहता है। साथ ही दिन में कई बार इनकी संख्या में घट-बढ़ भी होती रहती है। प्रातःकाल सोकर उठने से पूर्व इनकी संख्या6000 घन मि.मी. होती है।

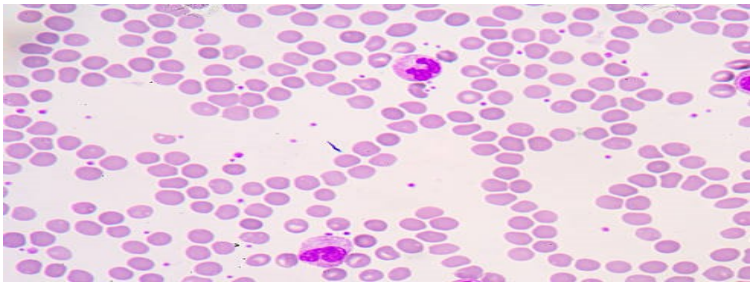

इन श्वेतकणों का कार्य शरीर की रक्षा करना है। बाहरी वातावरण से शरीर में प्रविष्ट होने वाले विकारों तथा विकारी-जीवाणुओं के आक्रमण के विरूद्ध ये रक्षात्मक ढंग से युद्ध करते हैं और उनके चारों ओर घेरा डालकर, उन्हें नष्ट कर डालते हैं। इसी कारण इन्हें शरीर-रक्षक (Body Guard) भी कहा जाता है। यदि दुर्भाग्यवश कभी इनकी पराजय हो जाती है तो शारीरिक-स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है और शरीर बीमारी का शिकार बन जाता है। परन्तु उस स्थिति में भी ये शरीर के भीतर प्रविष्ट होने वाली बीमारी के जीवाणुओं से युद्ध करते ही रहते हैं तथा अवसर पाकर उन्हें नष्ट कर देते हैं तथा पुनः स्वास्थ्य-लाभ कराते हैं। यदि रक्त में इन श्वेतकणों का प्रभाव पूर्णतः नष्ट हो जाता है तो शरीर की मृत्यु हो जाती है।

संक्रामक रोगों के आक्रमण के समय इनकी संख्या में अत्यधिक वृद्धि होती रहती है। न्यूमोनिया होने पर इनकी संख्या ड्यौढ़ी वृद्धि तक होती हुई पाई गयी है। परन्तु इन्फ्लुऐंजा में इनकी संख्या कम हो जाती है। रक्त में श्वेतकणों की संख्या में वृद्धि को श्वेतकण बहुलता (leucocytosis) तथा ह्रास को श्वेतकण अल्पता (leucopening) कहा जाता है।

इन श्वेतकणों के निम्नलिखित भेद माने जाते हैं-

1. कणिकामय श्वेतरूधिराणु या ग्रैन्यूलोसाइटस (Granulocytes)
2. कणिकाविहीन श्वेतरूधिराणु या अग्रैन्यूलोसाइटस (Agranulocytes)

1. **कणिकामय श्वेतरूधिराणु** (Granulocytes) - ये लगभग 10 से 15 तक व्यास के गोल से सक्रिय रूप से अर्थात विचरणशील होते हैं । इनके कोशाद्रव्य में अनेकों कणिकायें होती है। ये तीन प्रकार के होते है।

I. **ऐसिडोफिल्सक या इओसिनोफिल्सय (Acidofils or Eosinophil)**-ये WBC में 1 से 4% तक होते है तथा ये शरीर में प्रतिरक्षण, एलर्जी एवं अतिसंवेदनशीलता का कार्य करते है।

II. **बेसोफिल्स (Basophils)**-ये WBC की कुल संख्या का 0.5 से 2 तक होते हैं । इनकी कणिकायें मास्ट कोशिकाओं द्वारा स्रावित हिपैरिन, हिस्टेसिन एवं सिरोटोनिन का वहन करती है।

III. **हिटरोफिल्स या न्यूटरोफिल्स (Heterophils or Neutrophils)-** WBC में इनकी संख्या सबसे अधिक 60%से 70% तक होती है।

2. **कणिकाविहीन श्वेतरूधिराणु** कोशाद्रव्य में कणिकायें हल्की नीली रंग की संख्या में कम होती है। इन्हें (Amononuclear) रूधिराणु भी कहते हैं। ये दो प्रकार की होती है-

1. **लिम्फोसाइटस (lymphocytes**) ये छोटे 6 से 16 व्यास के होते हैं। ये WBC की संख्या का 20% से 40% होते हैं। इनका केन्द्रक बडा या पिचका होता है। इनमें भ्रमण की क्षमता कम होती है। इनका कार्य शरीर की प्रतिरक्षी प्रतिक्रियाओं के लिए आवश्यक प्रतिरक्षी प्रोटीन्स बनाना होता है। इसकी खोज नोबल पुरस्कार प्राप्त एमिल बॉन बेहरिग ने 1891 में की थी।
2. **मोनोसाइटस (Monocytes**)ये संख्या में कम WBC की कुल संख्या का 5% होते हैं। इनका व्यास 12 से 22 तक होता है। ये सक्रिय भ्रमण एवं भक्षण करते हैं।
3. **प्लेटलेट्स** - प्लेटलेट्स को (Trombcytes) थ्रोम्बोसाइट या बिम्बाणु भी कहा जाता है। इनकी उत्पत्ति अस्थि-रक्त मज्जा (Red bone Marrow)में निहित कोशिकाओं(Megakaryocytes) द्वारा होती है। इनका लगभग 2.5 (म्यू) होता है। इनकी संख्या लगभग 250,000 (150,000 से 350000) तक होती है। इनकी लगभग 1/10 संख्या प्रतिदिन बदलती रहती है और रक्त में नवीन आती रहती है इनके प्रमुख कार्य है।

(1) रक्त कोशिकाओं के Endothelium की क्षति की क्षतिपूर्ति।

(2) अवखण्डित होने पर हिस्टीमीन की उत्पत्ति करना।

(3) रक्त वाहिकाओं के अन्त स्तर में अथवा ऊतकों में क्षति हो जाने पर, यदि रक्तस्राव की सम्भावना हो या स्राव हो रहा हो तो प्लेटलेट्स रक्त स्कन्दन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

(4) स्पिन्डल कोशिकायें (Spindle Cell) ये स्तन पायी के अतिरिक्त अन्य सभी कशेरुकाओं में प्लेटलेटस के स्थान पर पायी जाती है। मानव शरीर में ये नही पायी जाती है पर इनका वही कार्य है जो कार्य प्लेटलेटस का होता है।

7.5 रक्त के कार्य:-

रक्त के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

- आहार- नलिका से भोजन तत्वों को शोषित कर, उन्हें शरीर के सब अंगों में पहुँचाना इस प्रकार उनकी भोजन संबंधी आवश्यकता की पूर्ति करना।
- फेफड़ों की वायु से ऑक्सीजन लेकर, उसे शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचाना और ऑक्सीकृत किये हुए अंग ही शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं।
- शरीर के प्रत्येक भाग से कार्बन डाई ऑक्साइड, यूरिया, यूरिक एसिड तथा गन्दा पानी आदि दूषित पदार्थों को अपने साथ लेकर उन अंगों तक पहुँचाना, जो इन दूषित पदार्थों को निकालने का कार्य करते हैं।
- शरीरस्थ निःस्रोत ग्रंथियों द्वारा होने वाले अन्तःस्रावों और ऑक्सीकृत किये हुए अंग ही शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं।
- शरीरस्थ निःस्रोत ग्रंथियों द्वारा होने वाले अन्तःस्रावों (भ्वतवउवदमे) को अपने साथ लेकर शरीर से विभिन्न भागों में पहुँचाना।
- संपूर्ण शरीर के तापमान को सम बनाये रखना।
- बाह्य जीवाणुओं के आक्रमण से शरीर के स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने हेतु श्वेत कणिकाओं को शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाते रहना।
- रक्त टूटी फूटी तथा मृत कोशिकाओं को यकृत और प्लीहा में पहुँचाता है, जहॉ वे नष्ट हो जाती है।
- रक्त अपने आयतन में परिवर्तन लाकर ब्लैडप्रेशर पर नियन्त्रण रखता है।

- रक्त जल संवहन के द्वारा शरीर के ऊतकों को सूखने से बचाता है और उन्हे नम एवं मुलायम रखता है।
- रक्त शरीर के अंगों की कोशिकाओं की मरम्मत करता है तथा कोशिकाओं के नष्ट हो जाने पर उसका नव-निर्माण भी करता है।
- रक्त शरीर के विभिन्न भागों से व्यर्थ पदार्थों को उत्सर्जन अंगों तक ले जाकर उनका निष्कासन करवाता है।

7.6 रक्त संचरण में सहायक प्रमुख अवयव

शरीर में रक्त संचरण के प्रमुख सहायक अंग निम्नलिखित हैं-

- हृदय (Heart)
- धमनिया (Arteties)
- शिराऐं (Veins)
- कोशिकाऐं तथा लसिकाऐं (Capillaries and Lamphatics)
- फेफड़े (Lungs)
- महाधमनी तथा महाशिरा

इन सबके विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन निम्नानुसार है-

7.6.1 हृदय- रक्त संचरण क्रिया का यह सबसे मुख्य अंग है। यह नाशपाती के आकार का मांसपेशियों की एक थैली जैसा होता है। हाथ की मुट्ठी बाँधने पर जितनी बड़ी होती है, इसका आकार उतना ही बड़ा होता है। इसका निर्माण धारीदार (Striped) एवं अनैच्छिक मांसपेशी ऊतकों (Involuntary Muscles) द्वारा होता है। वक्षोस्थि से कुछ पीछे की ओर तथा बायें हटकर दोनों फेफड़ों के बीच इसकी स्थिति है। यह पांचवी, छठी, सातवी, तथा आठवीं पृष्ठ देशीय-कशेरूका के पीछे रहता है। इसका शिरोभाग बायें क्षेपक कोष्ठ से बनता है। निम्न भाग की अपेक्षा इसका ऊपरी भाग कुछ अधिक चौड़ा होता है। इस पर एक झिल्लीमय आवरण चढ़ा रहता है। जिसे 'हृदयावरण' (Pericaerdium) कहते हैं। इस झिल्ली से एक प्रकार का रस निकलता है, जिसके कारण हृत्पिण्ड का उपरी भाग आर्द्र (तरल) बना रहता है।

हृत्पिण्ड का भीतरी भाग खोखला रहता है। यह भाग एक सूक्ष्म मांसपेशी की झिल्ली से ढ़का तथा चार भागों में विभक्त रहता है। इस भाग में क्रमशः ऊपर-नीचे तथा दायें-बायें 4 प्रकोष्ठ (Chamber) रहते हैं। ऊपर के दायें-बायें हृदकोषों को 'उर्ध्व हृदकोष्ठ' अथवा 'ग्राहक-कोष्ठ'(Auricle) कहा जाता है तथा नीचे के दायें-बायें दोनों हृदकोष्ठों को 'क्षेपक कोष्ठ' (Venricle) कहते हैं। इस प्रकार हृत्पिण्ड दोनों ओर दायें तथा बायें ग्राहक कोष्ठ तथा क्षेपक कोष्ठों को अलग करने वाली पेशी से बना हुआ है। ग्राहक कोष्ठ से क्षेपक कोष्ठ में रक्त आने के लिए हर ओर एक-एक छेद रहता है तथा इन छेदों में एक-एक कपाट (Valve) रहता है। ये कपाट एक ही ओर इस प्रकार से खुलते हैं कि ग्राहक कोष्ठ से रक्त क्षेपक कोष्ठ में ही आ सकता है, परन्तु उसमें लौटकर जा नहीं सकता, क्योंकि उस समय यह कपाट अपने आप बन्द हो जाता है। दायीं ओर के द्वार में तीन कपाट हैं । अतः इसे 'त्रिकपाट' कहते हैं। बायीं ओर के द्वार में केवल दो ही कपाट हैं, अतः इसे 'द्विकपाट' कहा जाता है। इसके ग्राहक कोष्ठों का काम 'रक्त को ग्रहण करना' तथा क्षेपक कोष्ठों का काम 'रक्त को निकालना' है। दायीं ओर हमेशा अशुद्ध रक्त तथा बायीं ओर शुद्ध रक्त भरा रहता है। इन दोनों कोष्ठों का आपस में कोई संबंध नहीं होता।

हृदय को शरीर का 'पम्पिंग स्टेशन' कहा जा सकता है। हृदय की मांसपेशियों द्वारा ही रक्त संचार की शुरूआत होती है। हृदय के संकोच के कारण ही उसके भीतर भरा हुआ रक्त महाधमनी तथा अन्य धमनियों में होकर शरीर के अंग-प्रत्यंग तथा उनकी कोषाओं (Cell) में पहुँचकर, उन्हें पुष्टि प्रदान करता है तथा उनके भीतर स्थित विकारों को अपने साथ लाकर, उत्सर्जन अंगों को सौंप देता है, ताकि वे शरीर से बाहर निकल जायें। शरीर में रक्त –संचरण, धमनी, शिराओं तथा कोशिकाओं द्वारा होता रहता है। ये सभी शुद्ध रक्त को हृदय से ले जाकर शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाती हैं तथा वहाँ से विकार मिश्रित अशुद्ध रक्त को लाकर हृदय को देती रहती हैं। शुद्ध रक्त का रंग चमकदार लाल होता है तथा अशुद्ध रक्त बैंगनी रंग का होता है। हृदय से निकलकर शुद्ध रक्त जिन नलिकाओं द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में जाता है उन्हें क्रमशः धमनी (Artery) तथा केशिकाऐं (Capillaries) कहते हैं तथा अशुद्ध रक्त लौटता हुआ जिन नलिकाओं में होकर हृदय में पहुँचता है, उन्हें 'शिरा' (Veins) कहते हैं।

शिराओं द्वारा लाए गए अशुद्ध रक्त को हृदय शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में भेज देता है। वहाँ पर अशुद्ध रक्त बैंगनी रंग का अपने विकारों की फेफड़ों से बाहर जाने वाली हवा (निःश्वास) के साथ मिलकर, मुँह अथवा नाक के मार्ग से बाह्य-वातावरण में भेज देता है तथा श्वास के साथ

भीतर आई हुई शुद्ध वायु से मिलकर पुनः हृदय में लौट आता है और वहाँ से फिर सम्पूर्ण शरीर में चक्कर लगाने के लिए भेज दिया जाता है। इस क्रम की निरंतर पुनरावृत्ति होती रहती है इसी को 'रक्त परिभ्रमण क्रिया'(Blood Circulation) कहा जाता है।

7.6.2 धमनियॉं (Arteries) इनमें शुद्ध रक्त बहता है। ये रक्त नलिकाऐं लम्बी मांसपेशियों द्वारा निर्मित होती हैं। ये हृदय से आरम्भ होकर कोशिकाओं में समाप्त होती हैं। इनका संचालन अनैच्छिक मांसपेशियों द्वारा होता है। ये आवश्यकतानुसार फैलती तथा सिकुड़ती रहती हैं। इनके संकुचन से रक्त-परिभ्रमण में सरलता आती है। 'पल्मोनरी धमनी' तथा 'रक्त धमनी' के अतिरिक्त शेष सभी धमनियाँ 'शुद्ध रक्त का वहन करती हैं। इनकी दीवारें मोटी तथा लचीली होती हैं। छोटी धमनियों को 'धमनिका' कहते हैं।

7.6.3 शिराएँ (Veins)- इनमें अशुद्ध रक्त बहता है। ये नलिकाऐं पतली होती हैं। इनकी दीवारें पतली तथा कमजोर होती हैं, जो झिल्ली की बनी होती हैं। इनकी दीवारों में स्थान-स्थान पर प्यालियों जैसे चन्द्र कपाट बने रहते हैं। इनकी सहायता से रक्त उछलकर नीचे से ऊपर की ओर जाता है। इन पर मांस का आवरण नहीं रहता। अतः ये कट भी जाती हैं। जब ये ऊतकों में पहुँचती हैं, तब बहुत महीन हो जाती हैं तथा इनकी दीवारें भी पतली पड़ जाती हैं। 'फुफ्फुसी शिरा' एवं 'वृक्क शिरा' के अतिरिक्त अन्य सभी धमनियों में अशुद्ध रक्त बहता है। ये सब अशुद्ध रक्त को हृदय में पहुँचाने का कार्य करती हैं।

7.6.4 कोशिकाएं तथा लसिकायें (Capillaries)- अत्यन्त महीन शिराओं को, जो एक कोशिका वाली दीवार में भी प्रविष्ट हो जाये, कोशिका कहा जाता है। इन्हें धमनियों की क्षुद्र शाखाऐं भी कहा जा सकता है। ये शरीर के प्रत्येक कोष में शुद्ध रक्त पहुँचाती हैं तथा वहाँ से अशुद्ध रक्त को एकत्र कर शिराओं के द्वारा हृदय में पहुँचा देती हैं।

जब रक्त कोशिकाओं में बहता है, तो उनकी पतली दीवारों से उसका कुछ लाल भाग होता है। इस तरल पदार्थ को ही 'लसिका' कहते हैं। इसमें शक्कर, प्रोटीन, लवण आदि पदार्थ पाये जाते हैं। शरीर की कोशाए 'लसिका' में भीगी रहती हैं तथा इन्हीं लसिकाओं द्वारा कोशिकाओं का पोषण भी होता है।

7.6.5 फेफड़े

- फेफड़े परिसंचरण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। फुफ्फुसों में रक्त शुद्ध होता है।

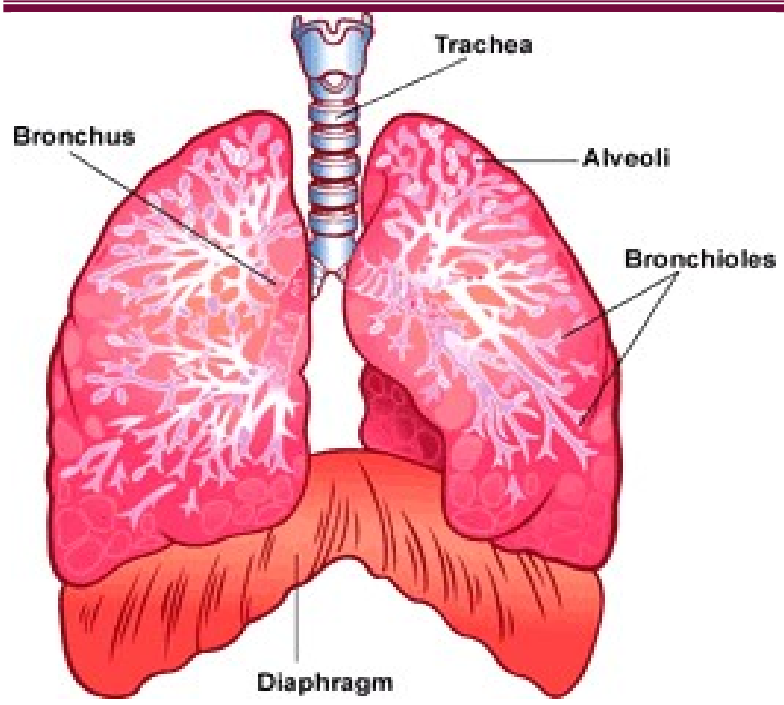

फुफ्फुसों को रक्त पहुँचाने का कार्य फुफ्फुसीय परिसंचरण के द्वारा सम्पन्न होता है। वाहिकाए अशुद्ध रक्त को हृदय से फुफ्फुसों तक ले जाती है वहॉ रक्त शुद्ध होकर उसे पुन: हृदय में ले जाती है यहॉ से आक्सीजन युक्त रक्त शेष शरीर में वितरित होता है। फुफ्फुसीय परिसंचरण में 4 से 8 सेकण्ड का समय लगता है। हृदय के दायें निलय से फुफ्फुसीय धमनी के द्वारा फुफ्फुसीय रक्त परिसंचरण का आरम्भ होता है।

7.6.6 महाधमनी तथा महा-शिरा

महाधमनी (Aorta) तथा महाशिरा (Venacava) की कार्य प्रणाली - यह सबसे बड़ी धमनी है। इसके द्वारा शुद्ध रक्त सम्पूर्ण शरीर में फैलता है। इसकी कार्य प्रणाली निम्नानुसार है-

यकृत के भीतर से जाकर हृत्पिण्ड के दायें 'ग्राहक कोष्ठ' में खुलने वाली 'अधोगा महाशिरा'(Inferior Venacava) में शरीर के संपूर्ण निम्न भाग के अंगों का रक्त एकत्र होकर ऊपर को जाता है। शरीर के सभी भागों से अशुद्ध रक्त 'उर्ध्व महाशिरा' (Superior Venacava) में आता है। यह महाशिरा उस रक्त को हृदय के दायें ग्राहक कोष्ठ को दे देती है। रक्त से भरते ही वह कोष्ठ सिकुड़ने लगता है तथा एक दबाव के साथ उसे दायें क्षेपक कोष्ठ में फेंक देता है। दायां त्रिकपाट (Tricuspid Valve) इसके बाद ही बन्द हो जाता है और वह रक्त को पीछे नहीं जाने देता अर्थात् दायें क्षेपक कोष्ठ से दायें ग्राहक कोष्ठ में नहीं पहुँच सकता। फिर, ज्यों ही दायां क्षेपक

कोष्ठ भरता है, त्यों ही वह रक्त को वृहद् पल्मोनरी धमनी द्वारा शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में भेज देता है। फेफड़ों में शुद्ध हो जाने पर, शुद्ध रक्त दायें तथा बायें फेफड़े द्वारा वृहद् पल्मोनरी धमनी द्वारा दायें ग्राहक कोष्ठ में भेज दिया जाता है। इसके पश्चात् यह रक्त दायें ग्राहक कोष्ठ से दबाव के साथ बायें क्षेपक कोष्ठ में आता है, जिसे यहाँ स्थित एक द्वि-कपाट (Biscuspid Valve) उसको पीछे नहीं लौटने देता। फिर, जब वह दायां क्षेपक कोष्ठ भरकर सिकुड़ने लगता है, तब शुद्ध रक्त महाधमनी में चला जाता है और वहाँ से सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है।'महाधमनी' से अनेक छोटी-छोटी धमनियाँ तथा महाशिरा से अनेक छोटी-छोटी शिराऐं निकली होती हैं, जो निरंतर क्रमशः रक्त को ले जाने तथा लाने का कार्य करती हैं।

रक्त का संचरण दो घेरों में होता है- (1) छोटा घेरा तथा (2) बड़ा घेरा। छोटा घेरा, हृदय, पल्मोनरी धमनी, फेफडों तथा पल्मोनरी के सिरे से मिलकर बनता है तथा बड़ा घेरा महाधमनी एवं शरीर भर की कोशिकाओं तथा ऊतकों से मिलकर तैयार हुआ है। ग्राहक कोष्ठों (Atrium) को 'अलिन्द' तथा क्षेपक कोष्ठों (Ventricle) को 'निलय' कहा जाता है। जब अशुद्ध रक्त उर्ध्व तथा अधःमहाशिरा द्वारा हृदय के दक्षिण अलिन्द में प्रविष्ट होता है तब वह धीरे-धीरे फैलना आरम्भ कर देता है तथा पूर्ण रूप से भर जाने पर सिकुड़ना शुरू करता है फलस्वरूप अलिन्द के भीतर के दबाव में वृद्धि होकर, महाशिरा का मुख बन्द हो जाता है तथा 'त्रिकपाट' खुलकर, रक्त दक्षिण निलय में प्रविष्ट हो जाता है। दक्षिण निलय भी भर जाने पर जब सिकुड़ना आरम्भ करता है तब द्विकपाट बन्द हो जाता है तथा पल्मोनरी धमनी कपाट (Pulmonary Volve) खुल जाता है। उस समय शुद्ध रक्त के दक्षिण निलय से निकल कर पल्मोनरी धमनी (Pulmonary Artery) द्वारा वाम अलिन्द में गिरता है। इस क्रिया को 'छोटे घेरे में रक्त संचरण' (Circulation Of Blood Through Circuit) नाम दिया गया है।

पल्मोनरी धमनी द्वारा वाम अलिन्द में रक्त के भर जाने पर वह सिकुड़ना प्रारंभ कर देता है और उसके भीतर दबाव बढ़ जाता है, फलस्वरूप द्विकपर्दी कपाट खुलकर रक्त वाम निलय में पहुँच जाता है। वाम निलय के भर जाने पर वह भी सिकुड़ना प्रारंभ कर देता है, तब द्विकपर्दी कपाट बन्द हो जाता है तथा महाधमनी कपाट खुल जाता है, फलतः वह शुद्ध रक्त महाधमनी में पहुँच कर सम्पूर्ण शरीर में भ्रमण करने के लिए विभिन्न धमनियों तथा कोशिकाओं में जा पहुँचता है। इस प्रकार रक्त संपूर्ण शरीर में घूम कर शिराओं से होता हुआ अन्त में उर्ध्व महाशिरा तथा

अधःमहाशिरा से होकर दक्षिण अलिन्द में पहुँच जाता है। रक्त भ्रमण की इस क्रिया को 'बड़े घेरे का रक्त -संचरण' (Circulation Of Blood Through Larger Circuit) कहते हैं।

7.7 सारांश:

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ चुके होंगे कि रक्त परिसंचरण में मिश्रित प्ला्ज्मा और रक्त कणिकायें शरीर को स्वरस्थ रखने में तथा शरीर की संक्रामक रोगों से रक्षा करने में अहम भूमिका निभाते हैं । लाल रक्त कण हीमोग्लोबिन की सहायता से फेफड़ों से ऑक्सीजन प्राप्त कर शुद्ध रक्त सम्पूर्ण शरीर में वितरित करते हैं। श्वेत रक्तकण संक्रामक रोगों के आक्रमण के समय विषैले जीवाणुओं से लड़ने में सहायता करते हैं। प्लेटलेट्स शरीर में किसी भी स्थान पर कटने या चोट लगने की स्थिति में उस जगह एकत्रित हो कर अतिरिक्त रक्त बहने से रोकने में सहायता करते हैं। हृदय रक्त संचरण क्रिया का प्रमुख अंग है। हृदय के संकुचन से उसके भीतर का रक्त महाधमनी तथा अन्य धमनियों से होता हुआ शरीर के विभिन्न अंगों में वितरित होता है तथा अंग विशेष की कोशिकाओं को पुष्टि प्रदान करता है। इसके साथ ही विकारों को कोशिकाओं से लाकर उत्सर्जन तंत्र को सौंप देता है। इस प्रकार शरीर को विकार रहित रखने में हृदय हमारी सम्पूर्ण सहायता करता है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप रक्त परिसंचरण के विषय में सहज रूप से समझ गये होंगे।

7.8 अभ्यास प्रश्न:-

1. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए**

(क) रक्त संचरण क्रिया का प्रमुख अंग.....है।

(ख) .....रक्त कणिकाओं को शरीर रक्षक भी कहा जाता है।

(घ) .....की उपस्थिति के कारण ही रक्त कणों का रंग लाल प्रतीत होता है।

(ड.) रक्तस्राव होने पर रक्त को जमाने का कार्य.....प्रोटीन करता है।

(च) सबसे बड़ी धमनी.....तथा सबसे बड़ी शिरा.....है।

2. सत्य /असत्य बताइये

(क) पल्मोनरी धमनी तथा रक्त धमनी के अतिरिक्त. शेष सभी धमनियां 'शुद्ध रक्त' का वहन करती है।

(ख) शिराओं की दीवारें मोटी एवं लचीली होती हैं।

(ग) रक्त में श्वेतकणों की संख्यां में वृद्धि को ल्यूकोपीनींग तथा ह्रास को ल्यूकोसाइटोसिस कहते हैं।

(घ) रक्त का आपेक्षिक गुरूत्व 1.055 होता है।

(ड.) प्लाज्मा में प्रोटीन 7% होता है।

(च.) हिपैरिन हीमोग्लोमबिन में पाया जाता है।

(छ.) प्लेटलेट्स को बिम्बाणु भी कहा जाता है।

(ज.) स्पिन्डोल सेल्स मनुष्य के शरीर में पायी जाती है।

7.9 शब्दावली:

- प्रोटोप्लाज्म-कोशिका का तरल भाग जिसमें कोशिनांग तैरते हैं। यही कोशिका जीवद्रव्य कहलाता है।
- अनैच्छिक ऊतक-अपनी इच्छा से जिन ऊतकों का नियन्त्रण नहीं होता, व केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र द्वारा इन ऊतकों को नियन्त्रित किया जाता है।
- धमनी - शुद्ध रक्त का संचरण करने वाली नाड़ी, नस
- शिरा - अशुद्ध रक्त का संचरण करने वाली नाड़ी, नस
- हीम - लौह युक्त पदार्थ
- ग्लोबीन- एक प्रोटीन
- रक्तस्राव - रक्त का निकलना
- बहुलता - अधिकता, ज्यादा
- दूषित - खराब, गन्दा, दोष युक्त
- ब्लड प्रेशर- रक्तचाप, रक्त का दबाब
- कपाट - दरवाजे, किवाड़
- पल्मोनरी धमनी - एक ऐसी धमनी जिसमें अशुद्ध रक्त बहता है।
- पल्मोनरी शिरा - एक ऐसी जिसमें शुद्ध रक्त बहता है।

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(क) हृदय

(ख) श्वेत

(घ) हीमोग्लोबिन

(ड.) फाइब्रोनोजिन

(च) एओटा, बेनाकावा

2. सत्य /असत्य बताइये

(क) सत्य

(ख) असत्य

(ग) असत्य

(घ) सत्य

(ड. सत्य

(च.) असत्य

(छ.) सत्य

(ज) असत्य

7.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

- गुप्ता, अनन्त प्रकाश, (2008) मानव शरीर रचना व क्रिया विज्ञान सुमित प्रकाशन, आगरा।
- गौढ शिवकुमार (1976) अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड रोहतक।
- प्रकाश, ऐ0 (1998) टेक्ट्नका बुक ऑफ एनाटॉमी एण्डर फिजियोलॉंजी, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली)।
- शर्मा, तारा चन्द्र (1979) आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान, नाथ पुस्तक भण्डार, रेलवे रोड, रोहतक।
- पाण्डेय, के0के0 (2003) रचना शारीर चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

- वर्मा, मुकुन्द स्व्रूप (2005) मानव शरीर रचना भाग 1, 2, 3, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली्
- दीक्षित, राजेश (2002) शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, भाषा भवन,मथुरा
- सक्सेना, ओ0 पी0 (2009) एनाटामी एण्डा फिजियोलोजी, भाषा भवन,मथुरा
- अग्रवाल, जी0सी0 (2010) मानव शरीर विज्ञान, एक्यूप्रेशर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार संस्थान, इलाहाबाद

7.12 निबंधात्मक प्रश्न:

1. परिवहन तंत्र का परिचय देते हुए रक्त विश्लेषण कीजिए।
2. रक्त संचरण के प्रमुख अवयवों की व्याख्या करते हुए रक्त के कार्य बताइये।
3. हृदय की रचना व कार्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

इकाई-8 तंत्रिका तंत्र

इकाई संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 तंत्रिका तन्त्र

8.3.1 तंत्रिका कोशिका

8.3.1.1 स्नायु-कोश के प्रकार

8.3.1.2 संधि स्थल

8.4 केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र

8.4.1 सुषुम्ना

8.4.2 मस्तिष्क

8.4.3 मस्तिष्क के सिद्धान्त

8.5 स्वचालित तंत्रिका तंत्र

8.5.1 अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र

8.5.2 सहानुकम्पी तंत्रिका तंत्र

8.6 सारांश

8.7 शब्दावली

8.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

8.9 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.10 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना:-

मनुष्य इस जीव-जगत का श्रेष्ठतम प्राणी है। विकास की सीढ़ी पर यह सबसे ऊपर है। इसमें अपने वातावरण के साथ अभियोजन करने की अधिक क्षमता पायी जाती है। इन क्षमताओं का नियंत्रण और संचालन तंत्रिका तंत्र के द्वारा होता है। तंत्रिका-तंत्र तंत्रिका-कोशिकाओं का संगठित तंत्र है। मनुष्य का तंत्रिका-तंत्र सबसे जटिल होता है क्योंकि अन्य जीवों की अपेक्षा इसमें तंत्रिका-कोशिकाओं की संख्या सबसे अधिक होती है। तंत्रिका-तंत्र की सबसे छोटी इकाई तंत्रिका

कोशिका या स्नायु कोशिका कहलाती है। सुषुम्ना एवं मस्तिष्क केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र के अंग के रूप में कार्य करते हैं तथा स्वचालित तंत्रिका-तंत्र के द्वारा प्राणी की वैसी क्रियाओं को संचालन और नियंत्रण होता है जो स्वतः होती है।

इस इकाई में आप स्नायु-कोशों की रचना और कार्य, केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र का महत्व, सुषुम्ना एवं मस्तिष्क की रचना और कार्य, मस्तिष्क का स्थानीकृत बनाम सामूहिक क्रिया सिद्धान्त स्वचालित तंत्रिका-तंत्र की रचना और कार्य के बारे में विस्तृत रूप से जान सकेंगे।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जाएगे कि आप-

- मानव प्राणी के अभियोजन में तंत्रिका-तंत्र के महत्व से अवगत हो सकें।
- तंत्रिका-कोशिका की रचना और कार्य का रेखांकन कर सकें।
- सुषुम्ना एवं मस्तिष्क के महत्व तथा इनकी रचना और कार्य पर प्रकाश डाल सकें।
- केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र एवं स्वचालित तंत्रिका-तंत्र की तुलना कर सकें।

8.3 तंत्रिका -तंत्र

प्रत्येक जीव अपने पर्यावरण के साथ अभियोजन करता है। अभियोजन का अर्थ व्यवहारों में परिमार्जन या परिवर्तन करना है। व्यक्ति में अपने वातावरण के साथ अभियोजन करने की अधिक क्षमता पायी जाती है। इन क्षमताओं का नियंत्रण और संचालन तंत्रिका-तंत्र के द्वारा होता है। किसी भी जीव के द्वारा पर्यावरण में अभियोजन प्राप्त करने हेतु तीन प्रकार की क्रियायें संम्पादित होती हैं । इन तीनों प्रकार की क्रियाओं के संपादन के लिए तीन प्रकार के साधन उपलब्ध हैं।

1. पर्यावरण के साथ अभियोजन करने हेतु किसी भी जीव को पर्यावरण में होने वाले सभी परिवर्तनों का ज्ञान होता है अन्यथा उसे अभियोजन करने की आवश्यकता का अनुभव ही नहीं होगा। उत्तेजना के प्रभाव को ग्रहण करने के लिए जो साधन है उसे ग्राहक कोश कहा जाता है।
2. शरीर के किसी एक भाग पर उत्तेजना का जो प्रभाव पड़ता है उस प्रभाव का प्रसार संपूर्ण शरीर में होता है।

उत्तेजना के प्रभाव को मस्तिष्क तक पहुँचाने वाले साधन को तंत्रिका कोशिका या प्रवाहक कोश कहते हैं।

3. अभियोजन के लिए जीव की आवश्यकतानुसार प्रतिक्रिया करनी पड़ती है। उत्तेजनानुसार प्रतिक्रिया करने के लिए जो साधन उपलब्ध हैं उसे प्रभावक कोश कहते हैं।

तंत्रिका तंत्र की सबसे छोटी इकाई को तंत्रिका कोश या स्नायु कोश कहा जाता है। इसका दूसरा नाम समायोजक या प्रवाहक है। इसका कार्य ग्राहक और प्रभावक के बीच संबंध स्थापित करना है। इन दोनो के बीच संबंध स्थापित करने में अनेक तंत्रिकाओं को क्रियाशील होना पड़ता है। ये सभी तंत्रिका-कोशिकायें संगठित रूप में कार्य करती हैं। अतः तंत्रिका कोशिकाओं के संगठित तंत्र को तंत्रिका-तंत्र कहते हैं।

तंत्रिका-तंत्र को समझने से पूर्व तंत्रिका-कोशिका की रचना एवं उसके कार्यों का अध्ययन आवश्यक है। आइये, पहले तंत्रिका-कोशिका और कार्यों पर नज़र डाले।

8.3.1 तंत्रिका-कोशिका या स्नायु-कोश-

तंत्रिका-तंत्र चूंकि अनेक तंत्रिका-कोशिकाओं एवं तंत्रिका तंतुओं की एक संगठित व्यस्था है इसलिए न्यूरॉन (तंत्रिका-कोशिका) को तंत्रिका-तंत्र की संरचनात्मक इकाई कहा जाता है। यह ग्राहक कोश में उत्पन्न तंत्रिका-आवेग को शरीर के अन्य भागों में पुहँचाती है। यह स्नायु-प्रवाह का वाहक होता है। यह तंत्रिका आवेग की क्रियात्मक इकाई है। तंत्रिका कोश के तीन मुख्य भाग हैं -

(क) शाखिकाएँ या शिखांतु

(ख) कोशिका शरीर

(ग) अक्ष–तंतु

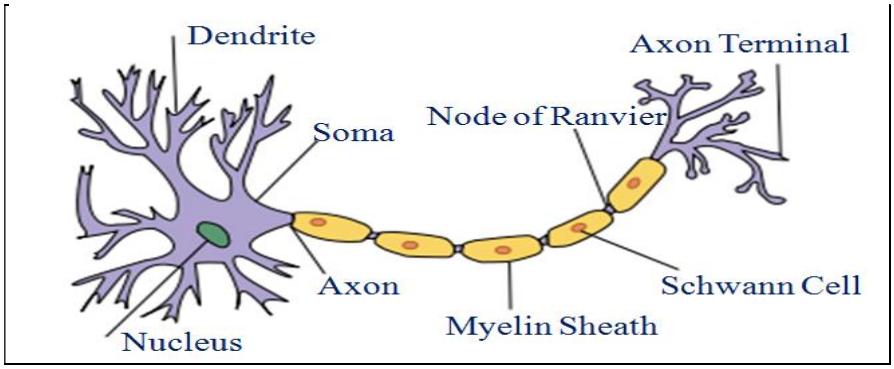

NEURON

शाखिकाएँ-

शाखिकाएँ की रचना एक वृक्ष की डाल के समान होती है जिनकी जड़ मोटी और ऊपर की ओर क्रमशः पतली होती जाती है। ये कोशिका शरीर के चारों तरफ फैली होती है। इन कोशिकाओं में भूरे रंग का पदार्थ पाया जाता है जिसे 'निरल-पदार्थ' कहते हैं। यह पदार्थ अपने चारों ओर फैले हुए आवेग को अपनी ओर खींचता है। शाखिकाएँ अपने शाखाओं से ज्ञानेन्द्रियों पर उत्तेजना के प्रभाव से उत्पन्न ओवग को ग्रहण करती है। इनका मुख्य कार्य ग्राहक कोशिकाओं में बने तंत्रिका-आवेग चारों ओर से खींचकर कोशिका शरीर में लगा है। इसलिए इसे ग्रहण एजेन्ट कहते हैं। कोशिका शरीर की ओर बढ़ने पर शिखा तंतु का आकार इतना छोटा हो जाता है कि वह ठीक-ठीक दिखाई भी नहीं देता।

(क) कोशिका शरीर-

प्रत्येक तंत्रिका कोशिका में एक कोशिका शरीर होता है। कोशिका शरीर को 'जीव कोश' भी कहते हैं, क्योंकि इसमें न्युक्लिस नामक 'कोश केन्द्र' रहता है, जिससे कोश जीवित रहता है तथा उसकी सामान्य क्रियायें होती है। कोशिका-शरीर का कोई निश्चित आकार नहीं होता, लेकिन सामान्यतः यह गोल आकृति का होता है। कोशिका शरीर के चारों ओर एक पतली परत होती है, जिसे 'मेंम्ब्रेन' कहते हैं। इस परत के नीचे कोशिका द्रव भरा होता है जो एक तरल पदार्थ है, जिसके बीच में 'कोश केन्द्र' अथवा न्यूक्लीयस होता है। इस कोश केन्द्र के अन्दर भी एक सूक्ष्म केन्द्र होता है जिसे न्यूक्लीआई कहते हैं। कोशिका -शरीर का मुख्य काम इसके एक छोर पर पाये जाने वाले शिखातंतु द्वारा लाये गये स्नायु-प्रवाहों को केन्द्र में ग्रहण करना और पुनः दूसरे छोर पर पाये जाने वाले मुख्य तंतु या अक्ष-तंतु की ओर जाने देना है।

(ख) अक्ष-तंतु या मुख्य तंतु-

प्रत्येक तंत्रिका-कोशिका में एक लम्बी शाखा होती है जिसे अक्ष-तंतु कहते हैं। इसमें उपशाखायें नहीं होती है। इसकी अधिकतम लम्बाई 1 फीट तक होती है। अक्ष-तंतु एक आवरण में बन्द रहता है जिससे कि कोई वाह्य शक्ति उसे प्रभावित कर सकें। इस आवरण को माईलिन शीब्ध कहते हैं। इसके अन्दर न्यूरोफाइब्रिल नामक उजला पदार्थ होता है। अक्ष-तंतु के अंतिम छोर पर कई पतले-पतले तंतु निकले होते हैं, जिन्हें प्रांत कूंची कहते हैं। अक्ष-तंतु जगह-जगह दबा हुआ गिरहदार होता है। किसी -किसी अक्ष-तंतु में दसरी तंत्रिका का

अक्ष-तंतु आकर मिल जाता है जिसे सहवर्ती तंत्रिका-कोशिका कहते हैं। इसका मुख्य कार्य शाखिकाओं में आये हुये तंत्रिका आवेग को अपनी ओर खींचकर प्रांत-कूंची की ओर भेजना है।

शिखा तंतु एवं मुख्य या अक्ष तंतु में अन्तर-

i. प्रत्येक स्नायुकोश में शिखा तंतु अनेक होते हैं, जबकि मुख्य तंतु केवल एक होता है।

ii. शिखा तंतु में अनेक उपशाखायें है लेकिन अक्ष-तंतु में कोई उपशाखा नहीं होती। केवल इसके अन्तिम छोर पर अनेक बारीक तंतु होते है, जिन्हें प्रांत कूंची कहते हैं।

iii. शिखातंतु की मोटाई कोशिका के निकट आधिक और ऊपर शीर्ष की ओर क्रमशः कम हो जीती है, जबकि मुख्य या अक्ष तंतु की मोटाई सब जगह समान होती है, केवल अक्ष-तंतु जिस जगह कोशिका शरीर से निकलती है, वहाँ कुछ मोटा होता है जिसे अक्ष-तंतु की पहाड़ी कहते हैं।

iv. अक्ष-तंतु चारों ओर एक आवरण होता है जिसे माइलीन आवरण कहते हैं। यह आवरण जगह-जगह पर कुछ दबा हुआ रहता है, जिससे तंतु का आकार गिरहदार हो जाता है। आवरण अक्ष-तंतु को बाहरी शक्तियों से सुरक्षा प्रदान करता है। गिरहों के द्वारा स्नायु प्रवाह के संचरण में मदत मिलती है। शिखा तंतु पर कोई बाहरी आवरण नहीं रहता जिससे बाहरी शक्तियों इसे प्रभावित करती रहती है।

v. शिखा तंतु एवं कोशिका शरीर के भूरे रंग का एक पदार्थ 'निस्ल' पाया जाता है। जिसमें इन दोनों का रंग भूरा होता है। अक्ष-तंतु में उजले रंग का एक पदार्थ पाया जाता है, जिसे 'न्यूरोफाइब्रिल' कहते हैं। निस्ल बाहरी प्रभाव को अपने अन्दर खींचता है जबकि न्यूरोफाइब्रिल उस प्रभाव को कोशिका से दूर ले जाता है।

इससे स्पष्ट है किसी उत्तेजना विशेष से ग्राहक-कोश के उत्तेजित होने के फलस्वरूप स्नायुप्रवाह उत्पन्न होता है।

इस स्नायुप्रवाह को शिखातंतु ग्रहण कर कोशिका-शरीर तक ले जाता है। कोशिका-शरीर स्नायुप्रवाह को अक्ष-तंतु द्वारा दसरे स्नायुकोश की ओर अथवा मांसपेशियों, पिंडों या स्नायुमंडल के किसी केन्द्र विशेष की ओर भेज देता है।

8.3.1.1स्नायुकोश के प्रकार-

मनुष्य के शरीर में अनुमानतः 12 अरब स्नायु कोशिकाएँ पाई जाती है। ये सभी स्नायु-कोश एक ही तरह के नहीं होते। इनकी रचना, आकार-प्रकार एवं क्रियाओं में भिन्नता पाई जाती है। इस दृष्टि से स्नायु-कोश के तीन प्रकार बताये गये हैं- (क) संवेदी स्नायु कोश (ख) गति स्नायु कोश (ग) तथा साहचर्य स्नायु कोश।

(क) संवेदी स्नायु-कोश- संवेदी स्नायुकोश स्नायु-प्रवाहों को ज्ञानेन्द्रियों से सुषुम्ना और मस्तिष्क में ले जाते है। इसे अन्तर्वाहक स्नायु-कोश भी कहते हैं। ये स्नायु-कोश ग्राहक केन्द्रियों के उत्तेजित होने के फलस्वरूप उत्पन्न संवेदी स्नायु-प्रवाहों को सुषुम्ना और मस्तिष्क तक ढोने का काम करते हैं। उदाहरणस्वरूप, यदि इसमें कोई आवाज सुनते हैं तो वह आवाज हमारे कान के ग्राहक-कोश को उत्तेजित करती है जिसके फलस्वरूप श्रवण स्नायु-प्रवाह उत्पन्न होते हैं। वहाँ मौजूद श्रवण स्नायु-कोश इन स्नायु-प्रवाहों को सुषुम्ना से होते हुए, मस्तिष्क के एक खास केन्द्र में ले जाता है और हमें श्रवण संवेदना होती है। इसी प्रकार आँख, जीभ, त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रियों में मौजूद संवेदी स्नायु-कोश द्वारा उन ज्ञानेन्द्रियों में उत्पन्न स्नायु-प्रवाहों को मस्तिष्क के खास-खास निर्धारित केन्द्रों में सुषुम्ना के रास्ते ले जाने के कारण उप ज्ञानेन्द्रिय-विशेष से सम्बन्ध संवेदनाएँ उत्पन्न होती है।

(ख) गति स्नायु-कोश- गति स्नायु कोश स्नायु को मस्तिष्क तथा सुषुम्ना से मांसपेशियों और पिन्डों में ले जाते हैं, इन्हीं स्नायु-कोशों की वजह से इस शरीर के विभिन्न अंगों की मांसपेशियों और पिन्डों द्वारा तरह-तरह की क्रियायें करते हैं, जैसे -बोलना, चलना, हाथ-पांव हिलाना, सिर को खास दिशा में घुमाना आदि।

(ग) साहचर्य स्नायु कोश- साहचर्य स्नायु-कोश सुषुम्ना और मस्तिष्क के अन्दर पाये जाते हैं और इन स्नायु-कोशों का काम संवेदी स्नायु-कोश के स्नायु-प्रवाह तथा गति स्नायु-कोशों के बीच साहचर्य स्थापित करना होता है।

संवेदी और गति स्नायु-कोश जहाँ सुषुम्ना और मस्तिष्क के बाहर सीमांत प्रदेशों में पाये जाते हैं, वहीं साहचर्य स्नायु-कोश केवल सुषुम्ना और मस्तिष्क में ही रहते हैं।

8.3.1.2 संधि-स्थल -

मानव शरीर में लाखों की संख्या में तंत्रिकायें बिखरी हुई जो ज्ञानेन्द्रियों में उत्पन्न संवेदी आवेग को मस्तिष्क में एवं मस्तिष्क से गति आवेग को कर्मेन्द्रियों में पहुँचाती है। तंत्रिका आवेग को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाने के क्रम में अनेक तंत्रिकाऐं क्रियाशील हो जाती है। जहाँ पर

दो तंत्रिकायें मिलती है उस स्थान को संधिस्थल पर एक तंत्रिका की प्रांत कूँची एवं दूसरी तंत्रिका की शिाखातंतु मिलती है, लेकिन इन दोनों के बीच .0002 एम. एम. स्थान खाली रहता है। इसी स्थान को संधिस्थल कहते हैं। ऐसा भी देखा जाता है कि एक की संधिस्थल पर अनेक तंत्रिकायें आकर मिलती है।

संधिस्थल का मुख्य कार्य आवेग का संचरण करना है। यह शक्तिशाली आवेग को आगे भेजता है तथा कमजोर आवेग को रोककर उसे शक्तिशाली बनाता है तथा फिर आगे भेजता है। परन्तु यह सभी कमजोर आवेगों को आगे नहीं भेज पाता । कुछ कमजोर आवेग एक-दो संधि-स्थल पर जाकर ही समाप्त हो जाते हैं।

दरअसल संधि-स्थल तंत्रिका का आवेगों के संचरण में सहायता भी करता है और बाधा भी पहुंचाता है। शक्तिशाली आवेगों को तो यह जाने देता है, परन्तु कमजोर आवेग को संधि-स्थल पार करने में कभी-कभी अवरोध का सामना करना पड़ता है और संधि-स्थल पर जाकर रुक जाता है। जब इस संधि-स्थल पर अनेक कमजोर आवेग जमा हो जाते हैं तो इनकी शक्ति में वृद्धि हो जाती है और वे मजबूत बनकर आगे बढ़ जाते हैं।

संधि-स्थल पार करने में तंत्रिका का आवेग दूसरे आवेगों की सहायता दो प्रकार से करते हैं- स्थान संयोग के द्वारा तथा समय के द्वारा जब एक ही संधि-स्थल पर दो भिन्न जगहों से आने वाले तंत्रिका आवेग को संयोग होता है तो इसे स्थान संयोग कहते हैं, तथा जब एक ही पथ से विभिन्न समय में चले हुए तंत्रिका आवेगों का मिलन संधि-स्थल पर हो जाता है तो उसे समय संयोग कहते हैं।

8.4 केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र

केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र मानव शरीर का सर्वाधिक सुरक्षित भाग है जो सुषुम्ना और मस्तिष्क से मिलकर बना है। शरीर के इसी भाग में परिधीय तंत्रिका तंत्र द्वारा बाहरी उत्तेजनाओं के संवेदी स्नायु-प्रवाह पहुँचाते हैं और गति स्नायु-प्रवाह यहाँ से निकलकर प्रभावकों में पहुँच जाते हैं, तभी व्यक्ति कोई प्रतिक्रिया करता है। केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र का मुख्य कार्य परिधीय तंत्रिका तंत्र से प्राप्त संदेशों का एकीकरण करना है। एकीकरण का कार्य केन्द्रों द्वारा तथा स्नायु मार्गो द्वारा होता है। एकीकरण की क्रिया द्वारा केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र परिधीय तंत्रिका तंत्र से प्राप्त संदेशों का पुनर्संगठन, रूपांतरण, समालोचन, संचयन आदि करता है तथा आदेशात्मक प्रवाहों के स्वरूप में क्रियात्मक संकेतों को परिधीय तंत्रिका तंत्र के गतिवाही भागों में भेजने का कार्य भी करता है।

केन्द्रीय तंत्रिकातंत्र की संम्पूर्ण रचना एवं कार्यवाही को भली-भाँति समझने के लिए इसके दो प्रमुख भागों की जानकारी आवश्यक है। ये है सुषुम्ना और मस्तिष्क मनुष्य में कोशिकाओं की संख्या इन्हीं दोनों भागों में होती है।

8.4.1 सुषुम्ना या मेरुरज्जु-

यह अनेक तंत्रिका कोशिकाओं और तंत्रिका-तंतुओं से निर्मित है। गर्दन से लेकर कमर तक पीठ से होती हुई एक लम्बी हड्डी गई है, जिसे रीढ़ की हड्डी कहते हैं। इसी रीढ़ की हड्डी के भीतर केन्द्रीय स्नायुमंडल का एक लम्बा भाग है जिसे सुषुम्ना कहते हैं। केन्द्रीय स्नायुमंडल के इस भाग में स्नायुकोशों का एक पुंज या समूह रहता हैं जो देखने में लम्बी रस्सी जैसे दिखता है। इसकी औसत लंबाई लगभग 18 या 45-50 सेमी0 तथा मोटाई लगभाग 1 सेमी0 है।

रीढ़ की हड्डी में 31जोड़ होते हैं। जो प्रत्येक जोड़ पर शरीर के दाऐं और बाऐं दोनों ओर से एक-एक तंतु सुषुम्ना में प्रवेश करते हैं। इन्हें सुषुम्न स्नायु कहते हैं। इस प्रकार, इन तंतुओं के 31जोडें में एक ज्ञानवाही और एक गतिवाही तंतु होते हैं, जो शरीर के विभिन्न भागों को सुषुम्ना से संबद्ध करता है। सुषुम्ना का बाहरी भाग 'न्यरोफाइब्रिल' पाये जाने के कारण उजले रंग का तथा अंदर का भाग 'निरल पदार्थ' वाली तंत्रिकाओं की उपस्थिति के कारण भूरे रंग का होता है। सुषुम्ना में संयोजक तंतु पाये जाते हैं जो विभिन्न न्यूरॉन में पारस्परिक संबंध स्थापित करते हैं।

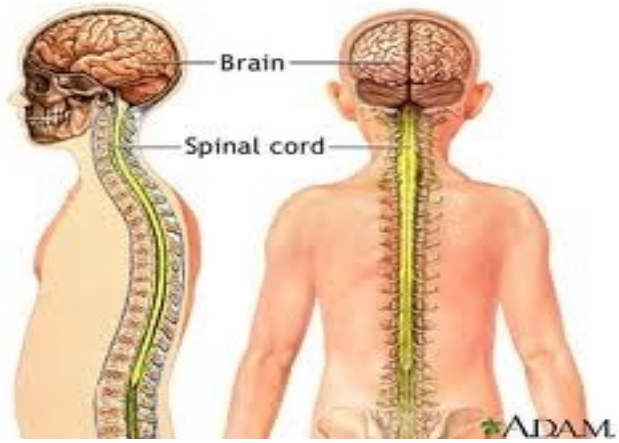

इसके दो कार्य है-

1) मस्तिष्क का सीधा संबंध सिर एवं सिर के प्रदेश के विभिन्न अंगों के साथ होता है। शरीर के अन्य भाग सुषुम्ना द्वारा मस्तिष्क से संबद्ध होते हैं। यह संबंध स्नायुतंतुओं द्वारा स्नायु प्रवाहों के संचरण के माध्यम से होता है। ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञानवाही तंतु द्वारा स्नायुप्रवाह पहले सुषुम्ना

में पहुँचता है, जिसे सुषुम्ना मस्तिष्क में भेज देता है। मस्तिष्क में आने वाले गतिवाही स्नायुप्रवाह सुषुम्ना से होते हुए गतिवाही तंतुओं द्वारा संबद्ध मांसपेसियों या ग्रन्थियों में पहुँचता है। इस प्रकार, सुषुम्ना मस्तिष्क के आदेशों को स्नायुप्रवाह के रूप में अंगविशेष की मांसपेशियों को भेजकर उन्हें क्रियाशील करता है। सुषुम्ना के इस कार्य को वितरण कार्य भी कहते हैं, क्योंकि सुषुम्ना मस्तिष्क के ओदशात्मक प्रवाहों को गतिवाही तंतुओं की सहायता से विभिन्न क्रियात्मक अंगों में वितरित करने का कार्य करता है।

2) प्रविवर्त क्रियाएँ अनैच्छिक क्रियाएँ होती है ये जन्मजात और सहज होती है, जो किसी उत्तेजना के संपर्क में आते ही अपने-आप होती हुई प्रतीत होती है, जैसे- किसी गर्म चीज पर हाथ पड़ते ही हाथ पीछे खींच लेना, आँसू का निकलना, आँखों में धूलकण पड़ते ही नेत्रों का बंद होना आदि। ये क्रियाएँ तत्काल होती हैं इनमें कोई देर नहीं होती। प्रतिवर्त क्रियाओं का संचालन एवं नियंत्रण सुषुम्ना द्वारा होता है। प्रतिवर्त क्रियाएँ स्नायु रचना पर आधारित है। इन क्रियाओं के लिए एक निश्चित मार्ग होता है। यह मार्ग प्रायः धनुष के रूप में पाया जाता है। जिसमें निम्नलिखित भागों का सहयोग होता है-

i) ग्राहक या ग्राहकेन्द्रियों
ii) ज्ञानवाही या संवेदी स्नायु
iii) सुषुम्ना
iv) साहचर्य स्नायु
v) गतिवाही स्नायु
vi) प्रभावक या कर्मेन्द्रियाँ
vii) मांसपेशियाँ अथवा पिंड

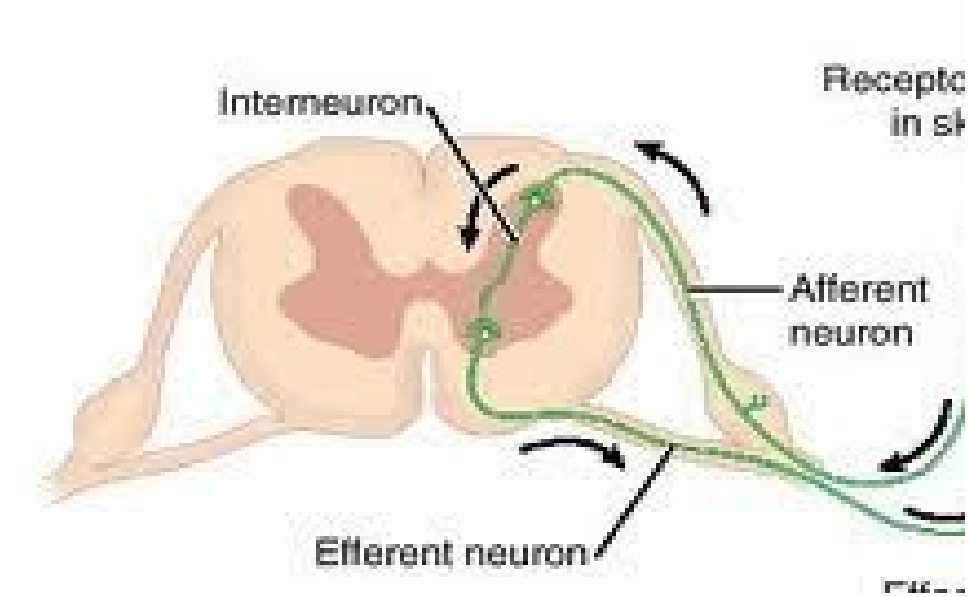

सबसे पहले उत्तेजना को ग्राहकेन्द्रियां ग्रहण करती है। इसके फलस्वरूप ग्राहकेन्द्रियों लगे न्युरॉन में स्नायुप्रवाह उत्पन्न होते हैं। ये स्नायुप्रवाह ज्ञानवाही स्नायुतंतु द्वारा सुषुम्ना तक में पहुँचते है, जहाँ स्नायु इसे ग्रहण कर गतिवाही स्नायु से संबंध स्थापित कराता है। गतिवाही स्नायु द्वारा गतिवाही स्नायुप्रवाह कर्मेन्द्रियों में पहुँचकर उन्हें कार्यशील बनाता है। फलतः कर्मेन्द्रियों गतिशील होकर सहज क्रिया करती है। इसे ऊपर के चित्र में स्पष्ट किया गया है।

ज्ञानेन्द्रियों से उत्पन्न स्नायुप्रवाहों के सुषुम्ना तक पहुँचने और सुषुम्ना से गतिवाही स्नायुप्रवाहों के कर्मेन्द्रियों तक पहुँचने का जो मार्ग होता है वह धनुष के आकार का बनाता है, इसलिए इस संपूर्ण मार्ग को 'प्रतिवर्त धनु' कहते हैं।

सरल क्रियाओं का संचालन सुषुम्ना द्वारा होता है जिसे सहज -क्रिया अथवा प्रतिवर्त क्रिया कहते हैं, लेकिन जटिल क्रियाओं के संचालन में मस्तिष्क का महत्वपूर्ण स्थान होता है, जिसमें सुषुम्ना संपर्क बनाने का कार्य करता है।

8.4.2 मस्तिष्क -

यह केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र का एक प्रमुख भाग है। मस्तिष्क एक अत्यंत जटिल एवं नाजुक संरचना है। मस्तिष्क की रचना अरबों स्नायुओं से हुई है तथा ये परस्पर जाल की तरह फैले हुए होते हैं। इन्हीं स्नायुओं द्वारा मस्तिष्क शरीर के निकट के एवं दूरी के भागों में संदेश भेजकर विभिन्न अंगों की क्रियाओं को संचालित एवं नियंत्रित करता है। मस्तिष्क की जटिल रचना के आधार पर ही मनुष्य को अन्य सरल प्राणियों की तुलना में सबसे उच्च श्रेणी का विकसित प्राणी

माना जाता है। इसी जटिल रचना द्वारा मनुष्य चिंतन, कल्पना, जटिल समस्याओं का समाधान आदि क्रियाओं को करने में समर्थ होता है।

मानव मस्तिष्क का औसत वजन 2 से 3 पौंड होता है, जिसमें अनुमानतः दस अरब स्नायुकोश होते हैं। अर्थात् संपूर्ण शरीर के 90 प्रतिशत से भी अधिक स्नायुकोश केवल मस्तिष्क में पाये जाते हैं। मानव-मस्तिष्क के सभी स्नायुकोश जन्म के समय से ही विद्यमान रहते हैं। बाद में मस्तिष्क के आकार और वजन में कुछ वृद्धि तो होती है, लेकिन स्नायुकोश की संख्या में कोई वृद्धि नहीं होती।

इन सभी स्नायुकोशों में मनुष्य के आंतरिक एवं बाह्य वातावरण के सभी पहलूओं के प्रति सजग रहने तथा अनुकूल प्रतिक्रिया करने की क्षमता पायी जाती है। मस्तिष्क द्वारा ज्ञानेन्द्रियों से आने वाली सूचनाओं को संगठित कर उनका प्रत्यक्षीकरण किया जाता है तथा चिंतन, सीखना, स्मरण, कल्पना, सूचनाओं का संचय, संचित सूचनाओं का पुनः स्मरण आदि जैसी क्रियायें होती हैं इसके कुछ स्नायुकोश ऐसे भी होते हैं, जिनसे ग्रन्थियों की तरह स्त्राण भी होते हैं तथा हर तरह की गति-क्रियाएँ होती है। इस प्रकार, यह संपूर्ण शरीर का 'मुख्य शासक' होता है।

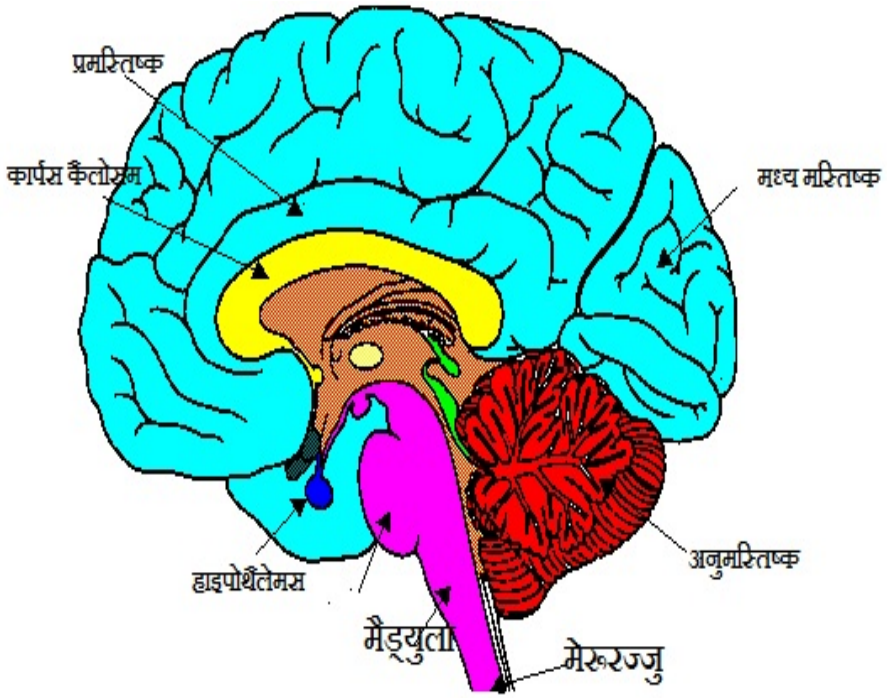

अध्ययन की सुविधा के लिए मानव मस्तिष्क को तीन बड़े भागों में बाँटा गया है-

1. पृष्ठ मस्तिष्क

2. मध्यमस्तिष्क
3. अग्रमस्तिष्क

1. पृष्ठ मस्तिष्क:-

पृष्ठ मस्तिष्क मानव मस्तिष्क के सबसे पीछे एवं नीचे अवस्थित होता है। इसके निम्नलिखित भाग है-

i) **सुषुम्नाशीर्ष-** सुषुम्ना के ठीक ऊपर के भाग को सुषुम्नाशीर्ष कहते हैं। यह सुषुम्ना का शीर्षभाग होता है। यह सुषुम्ना से कुछ मोटा और लगभग 2 इंच लम्बा होता है। सुषुम्नाशीर्ष मुख्य रूप से स्नायुकोशों का बना होता है, जिसके द्वारा यह सुषुम्ना और मस्तिष्क में संबंध स्थापित कराता है।

सुषुम्नाशीर्ष के दो मुख्य कार्य होते हैं-

- यह सुषुम्ना और मस्तिष्क में संबंध स्थापित कराता है। अर्थात् यह सुषुम्ना और मस्तिष्क के ऊँचे केन्द्रों को मिलाता है। इसके अतिरिक्त इसमें बहुत से मार्ग होते हैं जो सुषुम्ना एवं मस्तिष्क के केन्द्रों के बीच संदेशों का आदान-प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों में, शरीर के सभी भागों से तंत्रिका-आवेग सुषुम्ना से होते हुए सुषुम्नाशीर्ष में पहुँचते हैं और यह इन आवेगों को रास्ता देकर मस्तिष्क के उचित स्थानों पर भेज देता है।
- मेंडुला का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य कुछ स्वचालित क्रियाओं का नियंत्रण करना है जिनसे प्राण रक्षा होती है। जैसे-श्वास क्रिया, रक्त-संचालन आदि का संचालन एवं नियंत्रण करने हैं इन क्रियाओं से संबंद्ध स्वचालित कोश मेंडुला के अन्दर उपस्थित रहते हैं।

i. **सेतु-** सेतु अर्थात् 'पुल' यानी दो किनारों को जोड़ने वाला। यह सुषुम्नाशीर्ष के ठीक ऊपर का भाग है। इसमें बहुत से तंतु रहते हैं। सेतु पुल की तरह लघुमस्तिष्क के दोनों खंडों को मिलाता या जोड़ता है। साथ ही, यह अग्रमस्तिष्क के एक भाग वृहदमस्तिष्क के दोनों अर्धखंडों को भी मिलाता है तथा लघुमस्तिष्क और वृहदमस्तिष्क का मस्तिष्क के अन्य भागों से भी संबंध स्थापित कराता है। इस प्रकार सेतु मस्तिष्क के विभिन्न भागों में जाने और उनसे आने वाले क्रमशः ज्ञानवाही एवं गतिवाही स्नायुप्रवाहों के लिए पुल के समान मार्ग की तरह कार्य करता है।

ii. **लघुमस्तिष्क-** लघुमस्तिष्क का स्थान वृहदमस्तिष्क के पीछे और नीचे है। इसकी आकृति अखरोट जैसी प्रतीत होती है तथा इसमें अनेक स्नायुकोश पाये जाते हैं। ये

स्नायुकोश गर्दन और उसके नीचे के सभी अंगों की क्रियाओं में समन्वय स्थापित करने का कार्य करते हैं। वस्तुतः लघुमस्तिष्क की कोई भी क्रिया चेतन नहीं होती। सभी प्रकार की चेतन क्रियाएँ वृहदमस्तिष्क द्वारा होती है। वृहदमस्तिष्क की क्रियाओं के प्रवाह लघुमस्तिष्क क्षेत्र में पहुँचकर इसके स्नायुकोशों को उत्तेजित करते हैं। ये उत्तेजित स्नायुकोश सुषुम्ना के गतिवाही स्नायुकोशों को इस प्रकार अभियोजित करते हैं कि हाथ, पैर, आदि भागों में उपयुक्त गति हो सके।

लघुमस्तिष्क दो अर्धखंडों में विभाजित है। एक ओर इसका संबंध अनेक स्नायुतंतुओं द्वारा सुषुम्ना से और दूसरी ओर सेतु द्वारा वृहदमस्तिष्क से रहता है। साथ ही, इसका संबंध कान में स्थित वेस्टीबुलर या अर्धवृत्ताकार नामक ग्राहककेन्द्रिय से है।

लघु-मस्तिष्क विभिन्न शारीरिक क्रियाओं के बीच में एकीकरण स्थापित करता है। शारीरिक संतुलन का नियंत्रण एवं शरीर आकृति में नियंत्रण करना लघुमस्तिष्क का कार्य है। इसके अन्दर कर्ण ज्ञानेन्द्रियों से स्नायु आते हैं जिनका संबंध शारीरिक संतुलन से है जैसे कान के अर्धवृत्ताकार नहीं आदि। अगर विभिन्न शारीरिक अंगों के बीच एकीकरण की क्रिया न हो तो कोई भी कार्य सही रूप में नहीं हो सकेगा। जैसे-भोजन करते समय दाँत और जीभ की गति में समन्वय न हो तो हमारा भोजन करना कठिन हो जायेगा। किसी तरह के नशे से लघुमस्तिष्क प्रभावित होता है जिससे शारीरिक संतुलन बिगड़ जाता है और यही कारण है कि शराबी चलने में लड़खड़ाता है क्योंकि वह अपने शारीरिक संतुलन पर नियंत्रण नहीं रख पाता ।

2. मध्यमस्तिष्क:

मध्य मस्तिष्क, अग्रमस्तिष्क तथा पश्च मस्तिष्क के मध्य एक छोटे से पुल के समान स्थित होता है। इसकी स्थिति 'सेरेब्रम' के ठीक नीचे होती है। इसलिए यह अग्र मस्तिष्क तथा पश्च मस्तिष्क के बीच संबंध स्थापित करने का कार्य करता है। मनुष्य में इसका आकार लगभाग 3/4 इंच होता है। वृहदमस्तिष्क के नीचे मस्तिष्क के सभी केन्द्रों को मिलाकर एक नाम मस्तिष्क वृन्त' से संबोधित किया जाता है।

मध्यमस्तिष्क के दो भाग हैं -

i) **ऊपरी सतह-** मध्यमस्तिष्क के इस सतह पर दो जोड़े ज्ञानवाही या संवेदी केन्द्र पाये जाते हैं, जिन्हें सुपीरियर कोलीकुली और इनफीरियर कोलीकुली कहते हैं। इन दोनों केन्द्रों द्वारा क्रमशः दृष्टि संवेदना एवं श्रवण संवेदना की क्रियायें होती है। वैसे इन दोनों

प्रकार की संवेदनाओं के क्षेत्र क्रमशः वृहतमस्तिष्क के ऑक्सिपिटल लोब एवं टेम्पोरल लोब में पाये जाते हैं। लेकिन इनके अभाव में (छोटे जीवों में) देखने और सुनने की क्रियायें इन्हीं केन्द्रों द्वारा संचालित और नियंत्रित होती है।

ii) **निचली सतह-** मध्य मस्तिष्क की यह नीचे की सतह है। यह एक रास्ता है जहाँ से ज्ञानवाही स्नायु मस्तिष्क के ऊपरी केन्द्रों में जाते हैं और इन केन्द्रों से आने वाले गतिवाही स्नायु इसी रास्ते से होते हुए मस्तिष्क के निचले केन्द्रों में पहुँचते हैं। इस प्रकार, मध्यमस्तिष्क के इस भाग द्वारा मस्तिष्क के ऊपरी केन्द्रों एवं निचले केन्द्रों में संबंध स्थापित होता है।

मध्यमस्तिष्क का सबसे महत्वपूर्ण भाग जाल-रचना है। यह भाग सुषुम्ना के ऊपर मस्तिष्क वृंत में रहता है जो अनेक न्यूक्लीआई एवं तंतुओं की ढेर जैसी रचना होती है। इसके दो प्रमुख कार्य हैं-

- मस्तिष्क के ऊपरी केन्द्रों से निचले केन्द्रों की ओर आने वाले कुछ प्रवाहों को यह रोकता है, जबकि कुछ को आगे जाने के सहायता प्रदान करता है।
- इस भाग से ऊपर की ओर जाने वाले तंतुओं द्वारा मस्तिष्क के ऊपरी केन्द्रों के उत्तेजक के रूप में यह कार्य करता है। अर्थात् मस्तिष्क के विभिन्न केन्द्रों को यह कार्यशील करता है।

3. अग्रमस्तिष्क:- मस्तिष्क का सबसे ऊपरी भाग अग्रमस्तिष्क है। इसके दो प्रमुख भाग निम्नलिखित हैं-

i) **थैलेमस-** इसका स्थान मस्तिष्क के ठीक ऊपर, लेकिन वृहदमस्तिष्क के नीचे है। थैलेमस मस्तिष्क में एक प्रसारण केन्द्र के रूप में कार्य करता है, क्योंकि सुषुम्ना की ओर से आने वाले तथा मस्तिष्क के निचले भाग से आने वाले संवेदी आवेगों को वृहत् मस्तिष्क के विभिन्न केन्द्रों में भेजने का कार्यभार थैलेमस पर ही है। इसके अन्दर बड़ी संख्या में तंत्रिकायें विद्यमान है जो तीन प्रकार के होती हैं-

1. वैसी तंत्रिकाएँ जो मस्तिष्क के निचले केन्द्रों के साथ संबंध स्थापित करती हैं।
2. कुछ ऐसी तंत्रिकाएँ जो मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों से संबंध स्थापित करती हैं।
3. वैसी तंत्रिकाएँ जो थैलेमस के अन्तर्गत ही परस्पर एक दूसरे भाग से संबंध स्थापित करती हैं।

यह भी माना जाता है कि साधारण प्रकार के सीखने की क्रिया एवं कार्टेक्स के क्षतिग्रस्त होने पर उसकी कुछ क्रियाएँ भी थैलेमस द्वारा होती है।

ii) **हाइपोथैलेमस-** यह थैलेमस के नीचे स्थित होता है यह प्रमुख रूप से संवेगात्मक व्यवहारों के नियंत्रण का केन्द्र है। इसके दो प्रमुख भाग होते हैं-

क. पीछे तथा बगल का भाग (परवर्ती)

ख. अग्रवर्ती, आगे और बीच का भाग

हाइपोथैलेमस का परवर्ती भाग स्वचालित तंत्रिका तंत्र के अनुकम्पी या सहानुभूतिक क्रियाओं को संगठित और नियंत्रित करता है तथा अग्रवर्ती भाग सहानुकम्पी या उपसहानभूतिक मण्डल के कार्यों में सहयोग देता है। इस प्रकार हाइपोथैलेमस स्वचालित तंत्रिका तंत्र द्वारा संचालित क्रियाओं जैसे-हृदय एवं क्रियाओं का नियंत्रण, संवेगात्मक व्यवहारों का संचालन, पिट्यूटरी ग्रंथि के स्राव को नियमित रखना, कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा जल के पाचन की व्यवस्था आदि का नियंत्रण करता है।

iii) **अवयवीय तंत्र-** अवयवीय तंत्र एक जटिल रचना है जिसके अंतर्गत हाइपोथैलेमस सेप्टल, क्षेत्र, अमिग डाला, हिपोकैंपस और सिंगुलेट की खाई नाम केन्द्र है। मस्तिष्क के इस भाग का संवेगात्मक एवं प्रेरणात्मक क्रियाओं के संचालन एवं नियंत्रण में विशेष महत्व है। इस तंत्र का संबंध हृदय, आमाशय आदि की क्रियाओं को नियमित करने से भी है। इसलिए इसे अतंरावयवी मस्तिष्क भी कहते हैं।

vi. **वृहत् मस्तिष्क-** यह मस्तिष्क का सबसे विकसित और सबसे ऊपरी भाग है। यह एक लम्बवत् दरार से दो अर्धखंण्डों में बाँटा है-दायाँ और बाँया अर्धखण्ड। इन दोनों अर्धखण्डों को महासंयोजक नामक स्नायु मिलाते हैं। ये स्नायु अनेक ज्ञानवाही एवं गतिवाही तंतुओं के समूह होते हैं, जो शरीर की विपरीत दिशा के विभिन्न अंगों से संबद्ध होते हैं। अर्थात् इन स्नायुतंतुओं द्वारा शरीर का दायाँ भाग वृहत्मस्तिष्क के बाएँ अर्धखण्ड से और बायाँ भाग इसके दाएँ अर्धखण्ड से संबंधित रहता है। इसलिए वृहत् मस्तिष्क के दाएँ अर्धखंड द्वारा शरीर के बाएँ भाग के अंगों की क्रियाएँ संचालित एवं नियंत्रित होती है तथा बाएँ अर्धखण्ड से शरीर के दाएँ भाग की क्रियाएँ संचालित एवं नियंत्रित होती हैं। महासंयोजक के स्नायु मस्तिष्क के दोनों अर्धखण्डों के बीच समन्वय द्वारा मस्तिष्क को एक इकाई का रूप देते हैं। यदि महासंयोजक के स्नायु किसी

कारण वश नष्ट हो जाये या कट जाये तो मस्तिष्क के दानो अर्धखण्डों के बीच समन्वय टूट जायेगा और मस्तिष्क दो भागों में बँट जाऐगा।

वृहत् मस्तिष्क का सबसे ऊपरी भाग सेरेब्रल कोर्टेक्स कहलाता है जिसकी रचना असंख्य स्नायुकोश से हुई है। यह खोपड़ी के भीतर ढँका रहता है तथा ऊपर के भूरे रंग का होता है। इसके ऊपरी सतह पर अनेक स्नायुकोशों के कोशिक-शरीर एकत्र रहते हैं, जिनमें स्लि पदार्थ पाया जाता है। इस पदार्थ का रंग धूसर या भूरे रंग का होता है। इसलिए कॉर्टेक्स का ऊपरी भाग भूरे रंग का दिखाई पड़ता है। साधारण शब्दों में इसे केवल भूरा पदार्थ भी कहते हैं। कॉर्टेक्स के नीचे की सतह उजले रंग की मालूम पड़ती है। इसका कारण यह है कि इसके नीचे के भाग में माइलिन आवरण युक्त स्नायु-तंतु पाए जाते हैं। इसे उप-कॉर्टेक्स की संज्ञा दी जाती है। माइलिन आवरण उजले रंग का होता है, इसलिए इसे उजला पदार्थ भी कहते हैं।

इस तरह, सेरेब्रल कॉर्टेक्स निम्नलिखित चार खंडों में बँट जाता है-

a. अग्रखंण्ड
b. मध्यखण्ड
c. शंख खण्ड
d. पृष्ठखण्ड

सेरेब्रल कॉर्टेक्स में दो प्रकार के क्षेत्र होते हैं-

क. प्रक्षेपण क्षेख
ख. साहचर्य क्षेत्र

क) प्रक्षेपण क्षेत्र- यह कॉर्टेक्स के उन क्षेत्रों को कहते हैं जहाँ शरीर के विभिन्न भागों से आने वाले स्नायुतंतु समाप्त होते हैं तथा जहाँ से स्नायुकोश निकलकर शरीर के विभिन्न भागों में जाते हैं, अर्थात् प्रक्षेपण क्षेत्रों में दूसरी जगहों से आने वाले एवं जानेवाले स्नायुकोश रहते हैं। इस क्षेत्र को दो भागों में बाँटा जाता है-

i) ज्ञानवाही प्रक्षेपण क्षेत्र
ii) गतिवाही प्रक्षेपण क्षेत्र

ज्ञानवाही प्रक्षेपण क्षेत्र में शरीर के विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों से आने वाल ज्ञानवाही तंतु समाप्त होते हैं, जिनके द्वारा ज्ञानवाही स्नायुप्रवाह कॉर्टेक्स में पहुँचते है। त्वचा से आने वाले ज्ञानवाही स्नायु मध्यखंण्ड में पहुँचते हैं, जिनके फलस्वरूप स्पर्श संवेदना होती है। इसी तरह श्रवण स्नायु

शंखखण्ड में और दृष्टि स्नायु पृष्ठखण्ड में पहुँचते हैं, जहाँ क्रमशः श्रवण एवं दृष्टि संवेदनाएँ होती है। अतः इन सभी क्षेत्रों को ज्ञानवाही या संवेदी क्षेत्र कहते हैं।

i) गतिवाही प्रक्षेपण क्षेत्र केन्द्रीय दरार से सटे आगे ऊपर से नीचे की ओर पतले से क्षेत्र में फैला हुआ है। आकार में ज्ञानवाही प्रक्षेपण क्षेत्र की तुलना में यह एक छोटा क्षेत्र है तथा केवल एक ही जगह पाया जाता है। यह क्षेत्र अग्रखण्ड का पिछला भाग है। इसे प्राक् केन्द्रीय क्षेत्र भी कहते हैं।

ख) साहचर्य क्षेत्र- ऊपर जिन प्रक्षेपण क्षेत्रों की चर्चा की गई है, उनके अतिरिक्त कॉर्टेक्स का शेष भाग साहचर्य क्षेत्र है। साहचर्य क्षेत्र भी दो तरह के हैं।-

i) कुछ साहचर्य क्षेत्र ऐसे हैं, जो ज्ञानवाही प्रक्षेपण क्षेत्रों एवं गतिवाही प्रक्षेपण क्षेत्र के निकट हैं तथा इनका संबंध इन्हीं क्षेत्रों के क्रियाओं से रहता है।

ii) एक और साहचर्य क्षेत्र पाया जाता है, जो संपूर्ण अग्रखंण्ड में फैला हुआ है। इसे अग्र साहचर्य क्षेत्र कहते हैं। इस क्षेत्र द्वारा ज्ञानवाही एवं गतिवाही अवयवों से आने वाले और जाने वाले स्नायुतंतुओं में संबंध या साहचर्य समन्वयन, मूल्यांकन अथवा एकीकरण की क्रियाएँ होती है।

<u>कॉर्टेक्स की क्रियाएँ-</u>

कॉर्टेक्स की तीन प्रधान क्रियाएँ हैं-

क. ज्ञानवाही क्रियाएँ

ख. गतिवाही क्रियाएँ

ग. साहचर्य क्रियाएँ

इन तीनों प्रकार की क्रियाओं के लिए कॉर्टेक्स में अलग-अलग केन्द्र हैं, जिनके द्वारा ये क्रियाएँ होती है।

क) ज्ञानवाही या संवेदी क्रियाएँ -

प्राणी की संपूर्ण ज्ञानवाही क्रियाओं को चार वर्गों में रखा जा सकता है-

i) स्वाद एवं घ्राण- संबंधी ज्ञानात्मक अनुभव

ii) स्पर्श या त्वक एवं शारीरिक परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न ज्ञानात्मक अनुभव

iii) दृष्टि-संबंधी अनुभव

iv) श्रवण- संबंधी अनुभव

इन सभी प्रकार के अनुभवों के आधार स्थल भी मस्तिष्क में अलग-अलग है। स्वाद एवं घ्राण सम्बन्धी अनुभव कॉर्टेक्स के अंग विशेष घ्राण-केन्द्र द्वारा होता है। स्पर्श एवं शारीरिक गति से उत्पन्न अनुभव का केन्द्र शेलैंन्द्रों के दरार के सटे उसके ठीक पीछे मध्य खण्ड में स्थित है। कॉर्टेक्स का पृष्ठ खण्ड दृष्टि सम्बन्धी अनुभवों का क्षेत्र है। आँख के रेटिना से चलने वाला स्नायु-प्रवाह दृष्टि द्वारा मस्तिष्क के पृष्ठ खण्ड में पहुँचते हैं, तभी दृष्टि संवेदना होती है। श्रवण संवेदना का क्षेत्र शंख खण्ड है।

ख) गतिवाही क्रियाएँ -

कॉर्टेक्स का गतिवाही क्षेत्र ज्ञानवाही क्षेत्र की अपेक्षा छोटा है और केवल एक ही जगह है। यह क्षेत्र केन्दीय या रोलैंडों की दरार के अग्रभाग से लगा एक पतला-सा लम्बा भाग है। कॉर्टेक्स के इस भाग में पिरामिड की शक्ल के त्रिकोणाकार स्नायुकोश पाए जाते हैं। इसलिए इसे पिरामिडल क्षेत्र भी कहते हैं। इस क्षेत्र के अधिकतर गतिवाही तंतु के मख्य तंतु लंबे-लंबे होते हैं और वे सीधे सुषुम्ना तक चले जाते हैं। इसका यह प्रमाण है कि पिरामिड की शक्ल के स्नायुकोशों को नष्ट किए जाने पर सुषुम्ना में कुछ भरे हुए मुख्य तंतु के भग पाए जाते है। इस क्षेत्र में पिरामिडल स्नायुकोशों के अतिरिक्त कुछ 'बाह्य पिरमिडल स्नायुकोश' भी पाए जाते हैं। कुछ लोगों का मत है कि बाह्य पिरामिडल स्नायुकोश द्वारा शारीरिक मुद्राओं तथा शरीर की भुजाओं और बड़ी-बड़ी मांसपेशियों की गतियाँ संचालित एवं नियंत्रित होती हैं पिरामिडल टैक्ट द्वारा कुशल गतियों का संचालन एवं नियंत्रण होता है। कॉर्टेक्स के गतिवाही क्षेत्र से और बाएँ भाग के गतिवाही स्नायु दाएँ अर्धखण्ड के गतिवाही क्षेत्र सम्बन्धित रहते हैं। अतः दायें अर्धखण्ड के गतिवाही क्षेत्र जब क्षतिग्रस्त होता है, तब शरीर के दाहिने भाग के अंग क्रियाविहीन होते हैं और जब बायाँ अर्ध,खण्ड का गतिवाही क्षेत्र क्षतिग्रस्त होता है, तब शरीर के दाहिने भाग के अंग कार्यहीन हो जाते हैं। लेकिन, संपूर्ण गतिवाही क्षेत्र के नष्ट हो जाने पर व्यक्ति पूर्णतः गतिविहीन या क्रियाविहीन हो जाता है। उसकी समस्त चेतन क्रियाएँ नष्ट हो जाती है। उसमें केवल सहज या प्रतिवर्त क्रियाएँ होती है। जिनका संचालन और नियंत्रण सुषुम्ना से होता है।

ग) साहचर्य क्रियाएँ -

कर्टिक्स का सबसे विकसित एवं महत्वपूर्ण कार्य ज्ञानवाही एवं गतिवाही स्नायुप्रवाहों को एक-दूसरे से मिलाना और उन्हें मिलाकर निश्चित स्थानों में भेजना है। स्नायुप्रवाहों को एक-दूसरे से मिलाने-संबंधी इस कार्य को ही साहचर्य क्रिया कहते हैं। इसी क्रिया के फस्वरूप मनुष्य में सीखने,

चिंतन करने, प्रत्यक्षीकरण करने, प्रत्याह्वान करने आदि की क्रियाएँ संभव होती हैं और इसलिए मनुष्य को अन्य प्राणियों की तुलना में सर्वाधिक विकसित एवं श्रेष्ठ प्राणी माना जाता है।

कॉर्टेक्स में ज्ञानवाही एवं गतिवाही क्षेत्रों की तुलना में साहचर्य क्षेत्र अधिक है। साहचर्य क्षेत्र के स्नायुकोश एक-दूसरे को परस्पर जोड़ते या मिलाते अथवा संबंधित और संगठित करते हैं। इसलिए साहचर्य क्षेत्र द्वारा संपादित क्रियाओं को संगठन-क्रिया या संयोजन-क्रिया कहते हैं।

कॉर्टेक्स में बहुत-से ऐसे साहचर्य क्षेत्र भी हैं, जो विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त संवेदनाओं को अर्थ प्रदान करते हैं। यदि इन क्षेत्रों में स्नायु नष्ट हो जाएँ तो मनुष्य में संवेदना तो होगी, किन्तु उनके अर्थों को समझने में वही असमर्थ रहेगा। उदाहरण के लिए, पृष्ठखण्ड में दृष्टि साहचर्य क्षेत्र है। इस क्षेत्र के स्नायु यदि किसी कारणवश नष्ट हो जाएँ जो मनुष्य देखे हुए उत्तेजनाओं का अर्थ लगाने में असमर्थ रहेगा। यदि उसके समक्ष कोई किताब पढ़ने को रखी जाए तो वह छपे हुए अक्षरों को तो देखेगा, लेकिन उसके अर्थ को नहीं समझेगा। किन्तु यदि कोई दूसरा व्यक्ति उसे किताब पढ़कर सुनाए तो श्रवण संवेदना के आधार पर वह समझ जाएगा। इसी तरह यदि उसके निकट कोई विषैला जीव या खतरनाक जीव आ जाये तो उसे देखकर वह न डरेगा, न भागेगा, परन्तु यदि कोई जीव का नाम लेकर चिल्लाएँ, जैसे साँप-साँप चिल्लाए तो वह भयभीत हो कर भागेगा। ऐसे दोष अक्षमता कहते हैं। इनमें ज्ञानेंन्द्रिय अर्थात आँख में कोई खराबी नहीं होती और न व्यक्ति में किसी प्रकार का क्रियात्मक दोष ही होता है। इस तरह के रोग का एकमात्र कारण दृष्टि साहचर्य क्षेत्र के स्नायुकोशों का नष्ट होना है।

दृष्टि साहचर्य क्षेत्र की ही तरह कॉर्टेक्स में श्रवण साहचर्य क्षेत्र भी है, जिनका संबंध श्रवण स्नायुप्रवाहों को अर्थ प्रदान करने से है। इस क्षेत्र के स्नायुकोशों के क्षतिग्रस्त होने पर सुन लेते हैं और प्रस्तुत किए गए शब्द-समूहों को पहचान भी सकते हैं, लेकिन कहे गए शब्दों का अर्थ नहीं समझ पाते। परन्तु यदि उन्हें बातों को लिखकर पढ़ने को दिया जाए तो उन्हें अच्छी तरह समझ जाते हैं।

कॉर्टेक्स में एक प्राकगति क्षेत्र भी है। यह क्षेत्र सार्थक ढंग से लिखने की योग्यता प्रदान करता है। इसी प्रकार, कॉर्टेक्स में वाणी साहचर्य क्षेत्र में भी है, जिससे व्यक्ति में अक्षरों को जोड़कर शब्द और शब्दों को परस्पर मिलाकर वाक्यों के रूप में सार्थक ढंग से बोलने की योग्यता का विकास होता है। इन दोनों क्षेत्रों से स्नायुकोशों के विनाश के फलस्वरूप लिखने एवं बोलने-संबंधी क्रियाओं में दोष आ जाते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में यह स्पष्ट होता है। कि विभिन्न जटिल मानसिक क्रियाएँ कॉर्टेक्स में पाए जाने वाले विभिन्न साहचर्य क्षेत्रों द्वारा संपादित होती हैं , जैसे-पढ़कर समझने की क्रिया का संपादन दृष्टि साहचर्य क्षेत्र करना है, सार्थक रूप से लिखने की क्रिया प्राक्कगति क्षेत्र और सार्थक रूप से बोलने की क्रिया वाणी साहचर्य क्षेत्र कहलाता है। इसी प्रकार, प्रत्याहान, चिंतन आदि क्रियाओं का संपादन अग्र साहचर्य क्षेत्र कहलाता है। इन केन्द्रों में से किसी एक क्षेत्र के क्षतिग्रस्त हो जाने पर उस क्षेत्र पर आश्रित क्रियाएँ संपादित नहीं हो पाती हैं। किन्तु अन्य क्रियाओं के संपादन में कोई त्रुटि नहीं देखी जाती है। जैसे प्राक् गतिवाही साहचर्य क्षेत्र के क्षतिग्रस्त होने पर व्यक्ति कलम या पेंसिल को इधर-उधर चला सकता है, परन्तु वह कोई सार्थक शब्द या वाक्य नहीं लिख सकता है। इसी प्रकार, वाणी साहचर्य क्षेत्र के नष्ट होने की स्थिति में व्यक्ति आवाज तो निकाल सकता है, लेकिन वह कोई सार्थक शब्द उत्पन्न नहीं कर सकता। अतः स्पष्ट है कि साहचर्य क्षेत्रों के नष्ट होने पर सीखना, चिंतन करने, समस्या समाधान करने आदि जटिल क्रियात्मक क्षमताएँ नष्ट हो जाती है।

8.4.3 मस्तिष्क के सिद्धान्त -

पूर्व में मस्तिष्क द्वारा संचालि विभिन्न प्रकार की क्रियाओं के संबंध में अलग-अलग क्षेत्रों का वर्णन किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मस्तिष्क के विशेष भागों द्वारा विशेष प्रकार की क्रियाओं का संचालन और नियंत्रण होता है। लेकिन, मस्तिष्क की इस क्रियात्मक विशेषता से सभी विद्वान सहमत नहीं हैं। कुछ लोगों का मत है कि मस्तिष्क के सभी भाग सब तरह की क्रियाओं को करने में समान रूप से सक्षम हैं। इस तरह मस्तिष्क की क्रिया के संबंध में दो तरह के विचार या सिद्धान्त हैं-

क. स्थानीकृत सिद्धान्त

ख. सामूहिक क्रिया का सिद्धान्त

क) स्थानीकृत सिद्धान्त या विशेष भाग द्वारा विशेष प्रकार की क्रियाओं के संपादन का सिद्धान्त-

मस्तिष्क की क्रियाओं के संबंध में पुराना विचार यह था कि मस्तिष्क के विशेष भाग द्वारा विशेष प्रकार की क्रियाएँ होती है। अर्थात् प्रत्येक क्रिया के लिए मस्तिष्क में निश्चित क्षेत्र या स्नायुकोशों के समूह होते हैं। अतः किसी विशेष क्षेत्र के नष्ट होने की स्थिति में उस पर आश्रित क्रिया का ह्रास हो जाता है और उस क्रिया का पुनः संपादन कभी भी संभव नहीं होता । इस

सिद्धान्त के मुख्य प्रवर्तक गॉल महोदय थे और बाद में चलकर वोग्ट, क्लीस्ट आदि विद्वानों ने इसे समर्थन भी दिया इस सिद्धान्त के पक्ष में इन विद्वानों को यह प्रमाण मिला कि किसी दुर्घटना के कारण कॉर्टेक्स केन्द्र जब क्षतिग्रस्त हो जाता है, तब उस केन्द्र द्वारा संचालित क्रियाएँ भी नष्ट हो जाती हैं। जैसे-पृष्ठ खण्ड के ज्ञानवाही क्षेत्र के क्षतिग्रस्त हो जाने पर दृष्टि लुप्त हो जाती है, अर्थात् व्यक्ति अंधा हो जाता है। इसी प्रकार श्रवण-कोश के स्नायुकोशों के नष्ट हो जाने पर बहरापन हो जाता है।

ख) सामूहिक क्रिया का सिद्धान्त-

मस्तिष्क की क्रिया के संबंध में एक दूसरे वर्ग के विचारकों का मत उपर्युक्त विचार के विरुद्ध है। इनका मत है कि किसी भी क्रिया के संपादन में मस्तिष्क संपूर्ण रूप से कार्य करता है। इस विचार के मानने वालों में फ्रैन्ज लैशले, गोल्ज मोनेको आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन लोगों ने विभिन्न प्रयोगों के आधार पर बताया है कि जब मस्तिष्क के कोई विशेष भाग क्षतिग्रस्त होता है, तब उससे संबद्ध क्रियाएँ रुक जाती हैं। किन्तु यह स्थिति अस्थायी होती है। कुछ समय बाद अभ्यास के फलस्वरूप प्राणी की विशिष्ट क्रिया पुनः लौट आती है। ऐसा इसलिए होता है कि अभ्यास के सहारे मस्तिष्क का दूसरा भाग विशिष्ट क्रिया का संचालन करने लगता है। इसका तात्पर्य यह है कि मस्तिष्क के विभिन्न भाग प्रत्येक क्रिया को करने की समान क्षमता रखते हैं, इसीलिए किसी विशिष्ट भाग के नष्ट होने पर दूसरा भाग उस क्रिया को सँभाल देता है। इसलिए इस सिद्धान्त को 'समान क्षमता का सिद्धान्त' के नाम से भी पुकारा जाता है।

इस सिद्धान्त के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि अनेक अवसरों पर यह देखा गया है कि किसी क्रिया का ह्रास उसी अनुपात में होता है, जिस अनुपात में मस्तिष्क के भागों को नष्ट किया जाता है साथ ही यह भी देखा गया है कि मस्तिष्क के किसी भाग विशेष को नष्ट किए जाने पर कुछ समय के लिए संबंधित क्रिया का संपादन असंभव हो जाता है, परन्तु अभ्यास द्वारा यह क्रिया पुनः होने लगती है। जैसे-मान लें कि मस्तिष्क के गतिवाही क्षेत्र को नष्ट किए जाने के फलस्वरूप हाथ-पाँव आदि में गति नहीं हो पाती। लेकिन, इन अंगों की क्रिया का ह्रास स्थायी नहीं होता, बल्कि अभ्यास के फलस्वरूप इस क्रिया का पुनः विकास पाया गया है। लकवा या पक्षाघात से ग्रस्त रोगियों से इस संबंध में अनेक प्रमाण मिले हैं। इस संबंध में तीन प्रकार के विचार हैं-

1) मस्तिष्क के किसी एक भाग के नष्ट होने पर मस्तिष्क का दूसरा भाग उस क्रिया के संचालन का भार ले लेता है, जिससे उसका संपादन होने लगता है।
2) क्रिया की दृष्टि से मस्तिष्क को दो भागों में विभक्त किया जाता है। मस्तिष्क के भाग के अन्दर अनेक आकृतियाँ पाई जाती हैं । एक- आधा आकृति के नष्ट होने पर उस पर आश्रित क्रिया कुछ समय के लिए रुक जाती है, परन्तु कुछ समय बाद आस-पास की जीवित आकृतियाँ विशिष्ट आकृतियों का कार्यभार अपने ऊपर ले लेती हैं, क्योंकि सभी आकृतियों में समान रूप से कार्य करने की क्षमता पाई जाती है। विशिष्ट क्रिया के पुनः विकास के इस नियम को समान क्षमता या समक्षमता का नियम कहते हैं।
3) मस्तिष्क के संम्पूर्ण रूप से कार्य करने की व्याख्या हॉनजिक महोदय की प्रतीकों के ह्रास की परिकल्पना के आधार पर भी की जाती है। इस परिकल्पना के अनुसार शिक्षण -क्रिया में हमें कई प्रतीकों का सहारा लेना पड़ता है। जैसे- दृष्टि-संबंधी प्रतीक, स्पर्श संबंधी प्रतीक, घ्राण-संबंधी प्रतीक, श्रवण-संबंधी प्रतीक, गति-संबंधी प्रतीक इत्यादि। किसी क्रिया को सीखते समय हम इन सभी प्रतीकों का उपयोग एक साथ करते हैं। इन विभिन्न प्रतीकों का निरूपण मस्तिष्क के विभिन्न भागों में होता है। अतः मस्तिष्क के किसी एक भाग के नष्ट होने पर उस भाग में जो प्रतीक निरूपित रहते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। फलस्वरूप वह प्रतीक क्रिया के संपादन में सहयोग देने में असमर्थ रहता है, जिससे कार्य संपादन में गड़बडी हो जाती है। परन्तु मस्तिष्क के अन्य भाग चूँकि विशिष्ट नहीं हुए हैं, इसलिए उन भागों के प्रतीक उस क्रिया का संपादन भी हो पाता है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि मस्तिष्क के किसी एक भाग के विशिष्ट होने के फलस्वरूप उस पर आश्रित क्रिया में कुछ समय के लिए ह्रास तो होता है, लेकिन अन्य प्रतीकों के आधार पर उस क्रिया के संपादन की क्षमता पुनः आ जाती है।

मस्तिष्क का विशेष भाग विशेष प्रकार की क्रिया का संपादन करता है या संपूर्ण मस्तिष्क कार्यशील रहता है, इसे जानने के लिए अनेक प्रयोग किए गए हैं। ये प्रयोग अधिकतर जानवरों पर किए गए हैं। यहाँ हम कुछ प्रयोगों का उल्लेख करेंगे।

लैशले ने चूहों पर सीखने की क्रिया का स्नायु-संबंधी का पता लगाने हेतु एक प्रयोग किया। इन्होंने चूहों को तीन प्रकार से भूलभुलैया सिखाया। इन भूलभुलैयों में क्रमशः1,3 और 8 अंधेपथ थे। अंधेपथ के क्रमशः अधिक होने के साथ-साथ शिक्षण समस्या की कठिनाई बढ़ती

गई। चूहों द्वारा भूलभुलैया के बाहर आने की क्रिया सीख लेने के पश्चात् कॉर्टेक्स के विभिन्न भागों को अलग किया गया, जिसके फलस्वरूप निम्नलिखित प्रमाण मिले-

1) कॉर्टेक्स के हटाए गए और सीखी गई क्रिया की क्षति के बीच एक अनुपातिक संबंध पाया गया।
2) कॉर्टेक्स से हटाए गए भाग के स्थान और सीखी गई क्रिया के बीच कोई संबंध नहीं पाया गया। परन्तु, कॉर्टेक्स के हटाए गए भाग के परिमाण और सीखी गई क्रिया बीच में संबंध पाया गया। यह संबंध समस्या की कठिनाई के साथ-साथ और भी घनिष्ठ होता गया। अर्थात् एक अंधेपथ वाले भूलभुलैया में कॉर्टेक्स के हटाए गए भाग और सीखी गई क्रिया में ह्रास के बीच सहसंबंध गुणक 0.20 तीन भूलभुलैया में यह सहसंबंध गुणांक 0.58 और आठ अंधेपथ में 0.75 पाया गया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि कठिन समस्याओं के सीखने की क्षमता में ह्रास उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में मस्तिष्क के हिस्सों को हटाया जाता है। इससे यह प्रमाण मिलता है कि कॉर्टेक्स की क्षति की मात्रा जितनी अधिक होती जाती है, सीखी गई क्रिया की मात्रा भी उसी अनुपात में घटती जाती है। अर्थात् संपूर्ण मस्तिष्क मिलकर किसी कार्य को करता है तथा प्राणी के पास मस्तिष्क का जितना बड़ा भाग उलब्ध रहता है, उसी पर कार्य को करता है। तथा प्राणी के पास मस्तिष्क का जितना बड़ा भाग उपलब्ध रहता है, उसी पर कार्य की कुशलता निर्भर करती है। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि कॉर्टेक्स की क्षति साधारण कार्यों की अपेक्षा कठिन कार्यों की कुशलता में अधिक ह्रास होता है।

जहाँ निम्न प्राणियों में सामूहिक क्रिया की प्रधानता देखी जाती है, वहीं मनुष्यों एवं अन्य विकसित प्राणियों के कॉर्टेक्स में स्थानीकृत क्रिया अधिक पाई जाती है।

8.5 स्वचालित स्नायु तंत्र:

स्वचालित या स्वतः संचालित स्नायुतंत्र का संबंध प्राणी की वैसी क्रियाओं के संचालन एवं नियंत्रण से रहता है जो स्वतः होती हैं । अर्थात् उन क्रियाओं पर प्राणी का न तो कोई नियंत्रण रहता है न उनके बारे में उसे कोई जानकारी रहती है।

इन स्नायुतंत्र की कोशिकाएँ गुच्छों के तार के रूप में सुषुम्ना के समानान्तर दोनों ओर ऊपर से नीचे फैली हुई हैं। इन सभी स्नायु-कोशों से निकलकर स्नायु-तंतु शरीर के प्रायः सभी आंतरिक अवयवों, जैसे- हृदय, फेफड़ा, आमाशय, यकृत, गुर्दे आदि में जाते हैं। स्वचालित स्नायु तंत्र इन सभी आंतरिक अवयवों के कार्यों का संचालन एवं नियंत्रण करता है। केन्द्रीय स्नायु-तंतु

बहुत हद तक स्वतः संचालित स्नायु तंत्र की क्रियाओं पर अपना प्रभाव डाल सकता है लेकिन साधारण अवस्था में दोनों की क्रियाएँ अलग-अलग और स्वतन्त्र रूप से ही चला करती हैं।

सभी प्रकार की ऐच्छिक क्रियाएँ केन्द्रीय स्नायु तंत्र पर निर्भर करती हैं तथा अनैच्छिक क्रियाएँ अधिकाँशतः स्वचालित स्नायु तंत्र पर निर्भर करती है।

स्वचालित स्नायुतंत्र को इसकी बनावट एवं कार्य के आधार पर प्राय: दो वर्गों में विभाजित किया जाता है-

क. अनुकम्पी या सहानुभूति मण्डल या तंत्र

ख. सहानुकम्पी या उपसहानुभूतिक मण्डल

8.5.1 अनुकम्पी तंत्र-

अनुकम्पी तन्त्रिका तंत्र कोशिका पिण्डों का बना होता है। मनुष्य के इस तन्त्र में 22 जोड़े अनुकम्पी-कोशिका पिण्ड सुषुम्ना के समानान्तर ऊपर से नीचे तक व्यवस्थित होते हैं। इनको अनुकम्पी अथवा गैन्गलिओनिक कॉड भी कहा जाता है। चूँकि तन्तु (तन्त्र के) सुषुम्ना या मेरूरज्जु के वक्षीय तथा कटि भागों से आते हैं, इसलिए अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र को वक्ष-कटि तन्त्रिका तन्त्र भी कहा जाता है। इस भाग के स्नायु सीधे अंतरावयवों में न जाकर सुषुम्ना से निकलकर पहले स्वतःचालित गुच्छिका में जाते हैं और फिर वहाँ से अंतरावयवों में। इस प्रकार इसके दो भाग हुए-

वह भाग जो सुषुम्ना से निकलकर गुच्छिका में जाते हैं, जिसे प्राक्-गुच्छिका स्नायु कहते हैं तथा दूसरा वह भाग जो गुच्छिका से निकलकर अंतरावयवों में जाते हैं जिसे उत्तर-गच्छिका स्नायु कहते हैं। अनुकम्पी तंत्र के अन्तर्गत जिन प्रमुख अवयवों का उल्लेख आता है वे हैं- यकृत, हृदय, आमाशय, प्लीहा एवं एड्रीनल ग्लैण्ड।

अनुकम्पी तंत्र संवेगात्मक क्रियाओं में विशिष्ट रूप से भाग लेता है। इस तंत्र की क्रियाएँ उस समय प्रधान होती है, जब प्राणी तीव्र मानसिक तनाव में रहता है या किसी प्रकार से उसका जीवन खतरे में रहता है। जैसे-किसी दुर्घटना के समय, परीक्षा-भवन में जाते समय परीक्षा का भय, शल्य-क्रिया से उत्पन्न भय की अवस्था में या क्रोध की अवस्था में। इन स्थितियों में अनुकम्पी तंत्र के सक्रिय होने के फलस्वरूप रक्तचाप में वृद्धि, रक्त में लाल कणों की मात्रा में वृद्धि, हृदय की गति में वृद्धि इत्यादि क्रियाएँ होती हैं।

संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं में यह तन्त्र भोजन के रासायनिक एवं अन्तःस्रावी संतुलनों को भी बनाये रखता है। जब उपवृक्क ग्रन्थि से एड्रीनल नाम का पदार्थ निकलता है तो वह संवेगात्मक क्रियाओं को अत्यन्त प्रभावित करता है। इस प्रकार से संवेगात्मक व्यवहार में होने वाले आपत्तिकालीन कार्यों पर यह तन्त्र अपना नियन्त्रण रखता है। इस तंत्र के प्रभाव को समझने के लिए भय तथा क्रोध के उदाहरण पर्याप्त हैं, जैसे-भय से हाथ-पैर ठण्डे पड़ जाना, हृदय की गति तीव्र होना, पाचन-क्रिया में गड़बड़ी होना आदि। इसी तरह क्रोध के समय अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है तो यह तंत्र एड्रीनल ग्रन्थि से एड्रीनल नामक तरल पदार्थ लेकर हमारे रक्त में तेजी से मिलाने लगता है, जिसके फलस्वरूप हम दूनी शक्ति से प्रतिक्रियाएँ करने लगते हैं।

8.5.2 सहानुकम्पी तंत्रिका तंत्र-

सुषुम्ना के निचले खंड जिसे सैक्रल कहते हैं और मस्तिष्क वृन्त के कुछ स्नायु या तंत्रिकायें निकालकर सीधे अंतरावयवों में जाते हैं। स्नायुओं से बने इसी स्नायुतंत्र को सहानुकम्पी तंत्रिका तंत्र कहते हैं। चूँकि सहानुकम्पी तंत्रिका तंत्र के स्नायु 'क्रैनियल' एवं 'सैक्रल' क्षेत्रों से निकलते हैं, अतः इसे क्रैनियो-सैक्रल सिस्टम भी कहते हैं। तथा इस भाग के स्नायुओं की शाखाएँ केन्द्रीय स्नायु - मण्डल से निकलकर अनुकम्पी तंत्र के ऊपर और नीचे से गुजरती है, अतः इसे सहानुकम्पी तंत्र कहते हैं। स्वतः चालित स्नायुमंडल के इस भाग के अंतर्गत निम्नलिखित अवयवों का समावेश होता है-आँख का तारा, लार ग्रन्थि, स्वेद ग्रन्थि आँत, मूत्राशय आदि। कुछ अवयवों का संबंध स्वचालित तंत्रिका तंत्र के दोनों भागों से रहता है- जैसे- हृदय, स्वेद ग्रंथि आदि।

यह तंत्रिका-तंत्र पूर्ण रूप से पुरोगुच्छिक तन्तुओं, पश्च गुच्छिक तन्तु तथा कोशिका पिण्डी से निर्मित होता है। संरचना की दृष्टि से यह भाग अनुकम्पी तंत्र से भिन्न होता है। क्योंकि अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र की भांति इसमें कोशिका पिण्डी की कोई श्रृंखला नहीं होती है। सहानुकम्पी तंत्र का मुख्यकार्य शरीर के विभिन्न भागों की सक्रियता को कम करके शरीरिक ऊर्जा की बचत करना है। इसका कपालीय भाग आँख की पुतली, लार-ग्रन्थि, तथा हृदय आदि की क्रियाओं को गति प्रदान करता है तथा त्रिक भाग कामेंन्द्रियों तथा मूत्राशय से सम्बन्धित क्रियाएँ करता है।

अतएव यह तंत्र व्यक्ति की पाचन-क्रिया तथा रासायनिक परिवर्तनों पर नियंत्रण रखता है। इसके अधिक सक्रिय होने पर व्यक्ति में सुस्ती, आलस्य एवं शिथिलता आ जाती है।

8.6 सारांश:-

- तंत्रिका-तंत्र मुनष्य के शरीर में पाये जाने वाले तंत्रिका कोशों का संगठित क्षेत्र है जो वातावरण के साथ अभियोजन स्थापित करने में उसकी सहायता करता है।
- तंत्रिका-तंत्र की सबसे छोटी इकाई न्यूरॉन कहलाती है। यह तंत्रिका-तंत्र की संरचनात्मक इकाई है। इसके तीन मुख्य भाग हैं-शिखा तंतु, कोशिका शरीर एवं अक्ष तंतु।
- केन्द्रीय तंत्रिका -तंत्र का निर्माण सुषुम्ना और मस्तिष्क के मिलकर होता है। शरीर के इसी भाग में परिधीय तंत्रिका-तंत्र द्वारा बाहरी उत्तेजनाओं के संवेदी स्नायु-प्रवाह पहुंचते हैं और गति स्नायु-प्रवाह यही से निकलकर प्रभावकों में पहुंचते हैं, तभी व्यक्ति कोई प्रतिक्रिया करता है।
- सुषुम्ना गर्दन से लेकर कमर तक रीढ़ की हड्डी के भीतर केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र के स्नायु-कोशों का लम्बी रस्सी जैसा एक पुंज है।
- मस्तिष्क की रचना अरबों स्नायुओं से हुई है तथा ये परस्पर जाल की तरह फैले हुए होते हैं। इन्ही स्नायुओं द्वारा मस्तिष्क शरीर के निकट से एवं दूर के भागों में संदेश भेजकर विभिन्न अंगों की क्रियाओं को संचालित और नियंत्रित करता है। मानव मस्तिष्क को तीन बड़े भागों में बॉटा गया है- पृष्ठ मस्तिष्क, मध्य मस्तिष्क, अग्र मस्तिष्क|
- मस्तिष्क का सबसे विकसित और सबसे ऊपरी भाग वृहत मस्तिष्क है। इसके दो अर्द्ध खण्ड है- बायाँ तथा दायाँ। दानों अर्द्धखण्डों को महासंयोजक नामक स्नायु-समूह मिलाते हैं।
- वृहत मस्तिष्क का सबसे ऊपरी भाग सेरेब्रल कॉर्टेक्स कहलाता है। यह चार खण्डों में बंटा होता है- अग्रखण्ड, मध्य खण्ड, शंख खण्ड तथा पृष्ठ खण्ड।
- कॉर्टेक्स की तीन प्रधान क्रियाएँ हैं- ज्ञानवाही, गतिवाही एवं साहचर्य।
- मस्तिष्कीय क्रिया के सम्बन्ध में स्थानीकृत सिद्धान्त यह है कि मस्तिष्क के विशेष भाग द्वारा विशेष प्रकार की क्रियाएँ उत्पन्न होती हैं जबकि सामूहिक क्रिया सिद्धान्त की मान्यता है कि किसी भी क्रिया के सम्पादन में मस्तिष्क सम्पूर्ण रूप से कार्य करता है।
- स्वचालित तंत्रिका-तंत्र का सम्बन्ध व्यक्ति की वैसी क्रियाओं के संचालन एवं नियंत्रण से है जो स्वतः होती है, जिन पर व्यक्ति का न कोई नियंत्रण होता है और न उनके बारे में कोई जानकारी रहती है। इस तंत्रिका-तंत्र के दो भाग हैं-अनुकम्पी एवं सहानुकम्पी तंत्रिका-तंत्र।

8.7 शब्दावली:-

- **तंत्रिका-तंत्र**: मानव के शरीर में पाये जाने वाले तंत्रिका कोशिकाओं के संगठित तंत्र को तंत्रिका-तंत्र कहते हैं।
- **स्नायु कोश:** तंत्रिका-तंत्र की सबसे छोटी इकाई को स्नायु-कोश कहते हैं। यह तंत्रिका-तंत्र संरचनात्मक इकाई है।
- **संधि-स्थल:** संधि-स्थल वह स्थान है कि जहाँ पर दो स्नायु-कोश या तंत्रिकाएँ आकर मिलती हैं। यह एक तंत्रिका की अक्ष तंतु तथा दूसरी की शिखा तंतु को मिलने वाली जगह है।
- **महासंयोजक:** वृहत् मस्तिष्क के दोनों अर्द्ध-खण्डों को मिलाने वाले ज्ञानवाही एवं गतिवाही तंतुओं के समूह को महासंयोजक कहते हैं।

8.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न:-

1) तंत्रिका-तंत्र की संरचनात्मक इकाई को ..... कहते हैं।
2) वह स्थान जहां दो स्नायु-कोश आकर मिलते हैं..... कहलाता है|
3) मस्तिष्क का सबसे ऊपरी और सबसे विकसित भाग..... कहलाता है।

उत्तर: 1. न्यूरोन, 2.संधि-स्थल, 3. वृहत्

8.9 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

- आधुनिक दैहिक मनोविज्ञान- बनारसीदास त्रिपाठी
- शारीरिक मनोविज्ञान- ओझा एवं भार्गव
- उच्चर सामान्य मनोविज्ञान- डॉ0 अरूण कुमार सिंह- मोतीलाल- बनारसीदास
- साइकोलॉजी (एन इन्ट्रोडक्शन) कगन एवं हैवमैन- हार्कोट ब्रेस, लंदन
- सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा- भारती भवन
- आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान- शुक्ला बुक डिपो, पटना।

8.10 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. तंत्रिका तंत्र से आप क्या समझते हैं? प्राणी के अभियोजन में इसकी क्या भूमिका है?
2. केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र की संरचना और कार्य पर प्रकाश डालें।
3. स्वचालित तंत्रिका-तंत्र की रचना एवं कार्यों का वर्णन करें।
4. टिप्पणी लिखें-
   i) संधि-स्थल ii) सुषुम्ना iii) महासंयोजक iv) सहज क्रिया

इकाई-9 अंतस्रावी ग्रन्थियां

इकाई संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 अंत:स्रावी ग्रन्थियां

9.4 पीयूष ग्रन्थि:संरचना एवं कार्य

9.4.1 अग्रखण्ड: संरचना एवं कार्य

9.4.2 पश्च खण्ड:संरचना एवं कार्य

9.5 एड्रीनल/अधिवृक्क ग्रन्थिः संरचना एवं कार्य

6.5.1 एड्रीनल कॉर्टेक्स की संरचना एवं कार्य

6.5.2 एड्रीनल मेड्यूला की संरचना एवं कार्य

9.6 थाइरॉइड ग्रन्थि

9.6.1 थाइरॉइड ग्रन्थि की संरचना

9.6.2 थाइरॉइड ग्रन्थि के कार्य

9.7 पैरा थाइरॉइड

9.8 यौन ग्रन्थियाँ

9.8.1 वृषण की संरचना एवं कार्य

9.8.2 अधिवृषण या एपिडिडायमस की संरचना एवं कार्य

9.8.3 डिम्ब ग्रन्थियाँ की संरचना एवं कार्य

9.9 सारांश

9. 10 शब्दावली

9. 11 अभ्यास प्रश्न

9.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.13 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाईयों में आपने शरीर के महत्वपूर्ण संस्थानों के विषय में पढ़ा और महत्वपूर्ण व उपयोगी जानकारी अर्जित की। हमारे शरीर में कुछ विशेष ऊतक होते हैं जो हमारे शरीर और मन पर विशेष प्रभाव डालते हैं जिन्हें अंतस्रावी ग्रन्थियां कहते हैं। ये ग्रन्थियां रासायनिक पदार्थ स्रावित करती हैं जिन्हें हार्मोंस कहा जाता है। ये हार्मोन जीवों और उनके विकास की गतिविधियों में समन्वय स्थापित करने में मदद करते हैं। अंतस्रावी ग्रंथियां दो प्रकार की होती हैं- 1. बहिर्स्रावी ग्रन्थियां 2.अंतस्रावी ग्रन्थियां। बहिर्स्रावी ग्रन्थियां वो ग्रन्थियां होती हैं जो वाहिनी में पदार्थ स्रावित करती हैं। उदाहरण के लिये लार ग्रन्थि जो कि लार वाहिनी में लार स्रावित करती है। अंत:स्रावी ग्रन्थियां वे होती हैं जो सीधे रक्त में अपना पदार्थ स्रावित करती हैं। प्रस्तुत इकाई में आप इन अंतस्रावी ग्रंथियों की संरचना एवम कार्यों के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे ।

9.2 उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- पीयूष ग्रन्थि की संरचना बता पायेंगे।
- अग्र पिट्यूटरी से निकलने वाले हॉर्मोनों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- पश्च पिट्यूटरी से निकलने वाले हॉर्मोनों के नाम व उनके कार्यों के विषय में जान पाऐंगे।
- एड्रीनल ग्रन्थि की संरचना के विषय में जानेंगें।
- एड्रीनल कॉर्ट्रेक्स से निकलने वाले हॉर्मोनों के नाम एवं कार्यों के विषय में जानेंगे।
- थाइरॉइड ग्रन्थि की संरचना के विषय में जानेंगे।
- थाइरॉइड ग्रन्थि के कार्यो को जानेंगे।
- पैराथाइरॉइड ग्रन्थि की संरचना के विषय में जानेंगे।
- पैराथाइरॉइड ग्रन्थि के कार्यो के विषय में जानेंगे।
- वृषण ग्रन्थि की संरचना एवं कार्यो को जानेंगे।
- डिम्ब ग्रन्थियों की संरचना एवं कार्यो के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

9. 3 अंत:स्रावी ग्रन्थियां:

अंत:स्रावी ग्रन्थियों में कोई नलिका नही होती। अंतरूस्रावी ग्रन्थि द्वारा स्रावित होने वाला पदार्थ हार्मोन कहलाता है। ये हार्मोन रक्त के जरिये यात्रा करता है और शरीर के सम्बंधित अंग पर काम करता है । ऐसी कई ग्रंथियां हैं जो बहिर्स्रावी और अंतस्रावी दोनों प्रकार के कार्य करते हैं। उदाहरण के लिये अग्नाशय अंतस्रावी ग्रंथि के तौर पर काम करता है और इंसुलिन स्रावित करता है। साथ ही यह बहिर्स्रावी ग्रंथि की तरह भी काम करता है और अग्नाशय वाहिनी में अग्नाशय अर्क स्रावित करता है।

अंत:स्रावी प्रणाली हमारे शरीर की गतिविधियों के बीच समंवय स्थापित करने में मदद करती है। शरीर की प्रमुख अंतस्रावी ग्रन्थियां इस प्रकार हैं.

9.4 पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland)संरचना एवं कार्य:

मानव शरीर रचना में पीयूष ग्रन्थि या Hypothesis एक मटर के आकार की अतःस्रावी ग्रन्थि है। मनुष्यों में इसका वजन 0.5 ग्राम (0.02 ओंस) होता है। यह सेला टर्निका (Sella turcica)या हाइपोफाइसियल फोसा (Hypophyseal Fossa) में हाइपोथैलेमस के नीचे स्थित होती है।

- पीयूष ग्रन्थि एक अति महत्वपूर्ण अतःस्रावी ग्रन्थि है जिसे मास्टर ग्रन्थि (Master Gland) भी कहा जाता है क्योंकि इससे उत्पन्न हॉर्मोन्स (Hormones) अन्य अतःस्रावी ग्रन्थियों की सक्रियता को उद्दीप्त करते हैं।
- पीयूष ग्रन्थि शरीर के विकास में तथा शरीर में पानी के संतुलन को बनाये रखने में सहायता करती है।
- पीयूष ग्रन्थि दो खण्डों में विभाजित होती है। पहले खण्ड को अग्रखण्ड (anterior lobe or adenohypophysis) कहा जाता है और दूसरे खण्ड को पश्च खण्ड (posterior lobe or neurohypophysis) कहा जाता है। इन दोनों खण्डों की संरचना एवं कार्यों में अंतर है।
- अग्रखण्ड उपकला कोषिका (Epithelial cell) का समूह है जो रक्त चैनलों से विभाजित होता है। इसके विपरीत पश्च खण्ड मस्तिष्क से सम्बन्धित होता है और तन्त्रिका तंत्र से निर्मित होता है एवं प्रत्यक्ष रूप से हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) से जुड़ा रहता है।

- अग्रखण्ड व पश्च खण्ड से अलग-अलग हॉर्मोंस का स्राव होता है जो विभिन्न कार्यों के लिए उपयोगी होते हैं।

9.4.1 अग्रखण्ड (Anterior Pituitary or Adenohypophysis): संरचना एवं कार्य:

पीयूष ग्रन्थि का अग्र खण्ड निम्न सात हॉर्मोंस का निर्माण करता है-

1. **वृद्धि हॉर्मोंन (Growth Hormone GH) या सोमेटोट्रॉपिक हॉर्मोंन (**Somatotropic Hormone)

   - यह हॉर्मोंन शरीर के किसी विशिष्ट लक्ष्य अंग को प्रभावित करता है जो भाग वृद्धि से सम्बद्ध होते हैं।
   - यह वृद्धि दर को बढ़ाता है और परिपक्वता की स्थिति निर्माण के बाद वृद्धि को बनाए रखता है।

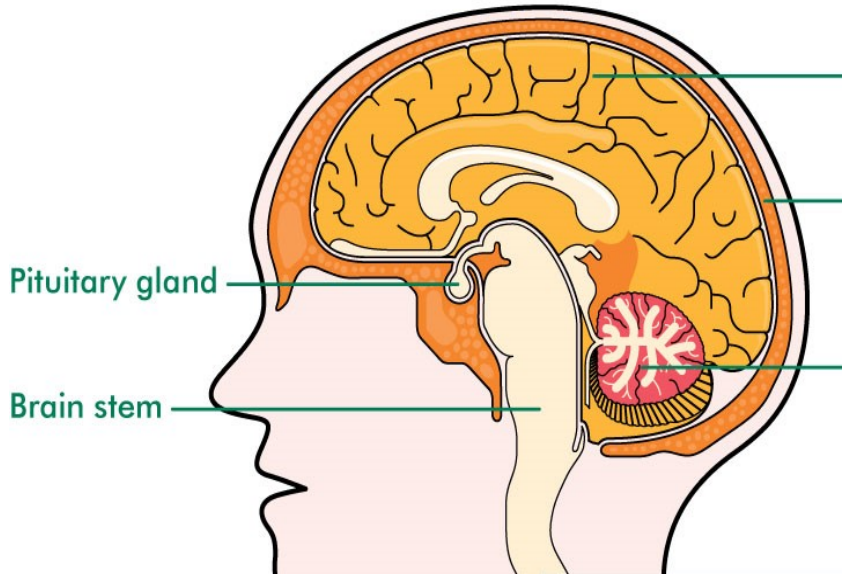

PITUITARY GLAND

- इससे शरीर की वृद्धि और विशेषकर लम्बी अस्थियों की वृद्धि का नियमन होता है।
- यह एक प्रोटीन पर आधारित पेप्टॉइड हॉर्मोंन है। यह मनुष्यों और अन्य जानवरों में वृद्धि, कोशिका प्रजनन और पुनर्निर्माण को प्रोत्साहित करता है।

बच्चों और किशोरों में ऊँचाई बढ़ाने के अलावा वृद्धि हॉर्मोन के शरीर पर कई अन्य प्रभाव भी होते हैं-

- कैल्शियम के धारण में वृद्धि करता है और हड्डी के खनिजीकरण को बढ़ाता व उसको मजबूत करता है।
- वसा अपघटन को बढ़ावा देता है।
- प्रोटीन संश्लेषण बढ़ाता है।
- मस्तिष्क को छोड़कर सभी आंतरिक अवयवों के विकास को प्रोत्साहित करता है।
- यकृत में ग्लूकोज के जमाव को कम करता है।
- यकृत में ग्लाइकोजन उत्पादन को बढ़ावा देता है।
- अग्नाशय की द्वीपीकाओं के रख रखाव और कार्यकलाप में मदद करता है।
- रोगप्रतिरोधक प्रणाली को प्रोत्साहित करता है।

वृद्धि हॉर्मोन की कमी के प्रभाव

- बच्चों में वृद्धि लोप और छोटा कद (Short structure) वृद्धि हॉर्मोन की कमी के मुख्य लक्षण है।

(Pituitary Gland)

	अग्रखण्ड (Anterior lobe or adenohypophysis)		पश्च खण्ड (Posteriorlobeorneurohypophysis)
1.	वृद्धि हॉमॉन (GrowthHormone or Somatotropic hormone)	1.	ऑक्सीटोसिन (Oxytocin)
2.	थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन (Thyroid stimulating hormone, TSH)	2.	वैसोप्रैसिन(Vasopressin or Antidiuretic Hormone ADH)
3.	एड्रीनोकॉर्टिकोट्रॉपिक हॉर्मोन (Adrenocorticotropic Hormone ACTH		
4.	ल्यूटिनाइजिंग (luteinizing		

	hormone LH)		
5.	प्रोलैक्टिन (Prolactin)		
6.	फॉलिकल उद्दीपक हॉर्मोन (Follicle Stimulating Hormone FSH)		
7.	मैलेनोसाइट उद्दीपक हॉर्मोन (Melanocyte Stimulating Hormone MSH)		

वृद्धि हॉर्मोन की अधिकता के प्रभाव:-

- वृद्धि हॉर्मोन के बाहुल्य के कारण जबड़े, हाथ व पैरों की हड्डियॉं मोटी हो जाती हैं। इसे एक्रोमिगेली (Acromegaly) कहते हैं।
- साथ में होने वाली समस्याओं में पसीना आना, नाड़ियों पर दबाव, पेशियों की शिथिलता, यौन क्रिया में कमी आदि है।

2. थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन (Thyroid Stimulating Hormone TSH)

- पीयूष ग्रन्थि द्वारा स्रावित यह एक महत्वपूर्ण हॉर्मोन है। थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन थाइरॉइड ग्रन्थि तक यात्रा करता है और थाइरॉइड ग्रन्थि को दो थाइरॉइड हॉर्मोन उत्पन्न करने के लिए उद्दीप्त करता है। यह दो थाइरॉइड हार्मोन एल-थाइरॉक्सिन (L-Thyroxine T4) और ट्राईआयोडोथायरोनिन (Triiodothyronine T3) हैं।
- पीयूष ग्रन्थि यह अनुभव कर सकती है कि कितना हॉर्मोन रक्त में हैं और उसके अनुसार कितना उत्पन्न करना है। अगर किसी कारण से इनका स्राव कम या अधिक हो जाए, तो यह विभिन्न रोंगों के जन्म का कारण बनती है।

थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन की कमी के प्रभाव (Effect of Hypothyroidism)

- उत्तकों में कमी, गलगांड (Goitre), वजन बढ़ना, मॉसपेशियों में अकड़न आदि थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन की कमी के लक्षण हैं।

थाइरॉइड उद्दीपक हॉर्मोन की अधिकता के प्रभाव (Effect of Hyperthyroidism)

थाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता से अथवा थाइरॉइड ग्रन्थि से अत्यधिक मात्रा में हॉर्मोन का स्रावण होने से हाइपर थाइरॉडिस्म (Hyperthyroidism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

इस स्थिति में नेत्रोत्सेधी गलगण्ड (Exophthalmic goitre) हो जाता है। इस रोग के लक्षणों में ऑखें बाहर को उभर जाती हैं तथा रोगी को गर्मी का अनुभव अधिक होता है। अधिक भूख के बावजूद वजन कम होने लगता है। अंगुलियों में कंपन और हृदय गति तीव्र हो जाती है। वास्तव में थाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता 'आयोडीन' की कमी के कारण होती है।

- इसकी अधिकता से कुशिंग रोग (Cushing syndrome) हो जाता है।

3. **ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन** (Luteinizing Hormone LH)

- यह बड़े प्रोटीन है जो सामान्य परिसंचरण द्वारा गोनाडोट्रोप कोशिकाओं (Gonadotropic cells) में उत्पन्न होते हैं। एल.एच. (LH) वृषण की लेडिग कोशिकाओं (Leydig cells) को पुरूषों में टेस्टोस्टेरोन (testosterone) बनाने के लिए उत्तेजित करता है तथा स्त्रियों मे नब्ज में वृद्धि के साथ-साथ योनि की थेका कोशिकाओं (Theca cells) को टेस्टोस्टेरॉन (testosterone) और उससे कुछ कम मात्रा में प्रोजेस्टेरॉन (Progesterone) उत्पन्न करने के लिए उत्तेजित करता है।
- ओवुलेशन (Ovulation) में सहायता करता है।

4**. प्रोलैक्टिन** (Prolactin)

- इसका लक्ष्य अंग mammary glands होते हैं तथा यह स्तनों को दूध उत्पादन के लिए उत्तेजित करता है। प्रोलैक्टिन प्रजनन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- प्रोलैक्टिन वयापचय के लिए भी महत्वपूर्ण है।
- प्रोलैक्टिन गर्भावस्था के दौरान संश्लेषण (surfactant synthesis) प्रदान करता है तथा भ्रूण की प्रतिरक्षा सहनशीलता में भी योगदान देता है।

5. फॉलिकल उद्दीपक हॉर्मोन (Follicle stimulating Hormone FSH)

- यह पुरूषों और महिलाओं दोनों में ही बनता है।
- महिलाओं में इस हॉर्मोन से अंडों का उत्पादन व पुरूषों में शुक्राणुओं का उत्पादन उत्तेजित होता है।

6. मेलेनोसाइट उद्दीपक हॉर्मोन (Melanocyte Stimulating Hormone MSH)

- यह हॉर्मोन त्वचा एवं बालों में मेलेनोसाइट (melanocyte)द्वारा मेलेनिन (melanin) के उत्पादन को उत्तेजित करता है।
- यह भूख एवं कामोत्तेजना पर भी प्रभाव डालता है।
- MSH में वृद्धि से रंग बदलाव होता है।
- गर्भावस्था के दौरान यह हॉर्मोन बढ़ जाता है तथा गर्भवती महिलाओं में पिगमेन्टेशन (pigmentation) का कारण बनता है।

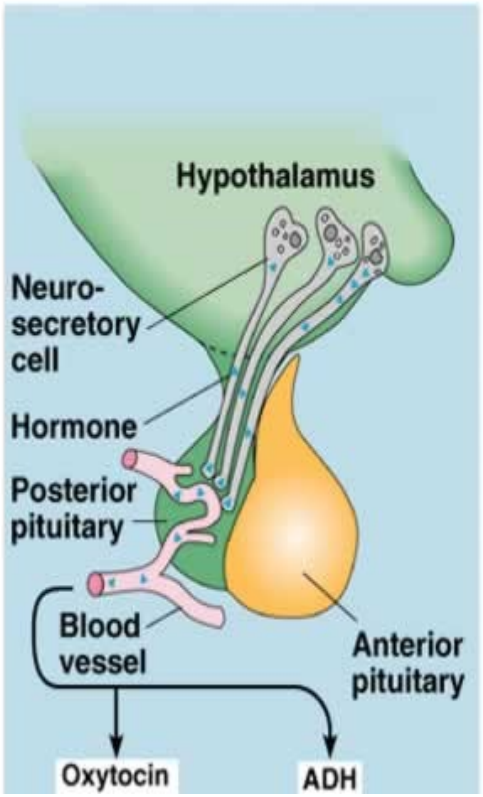

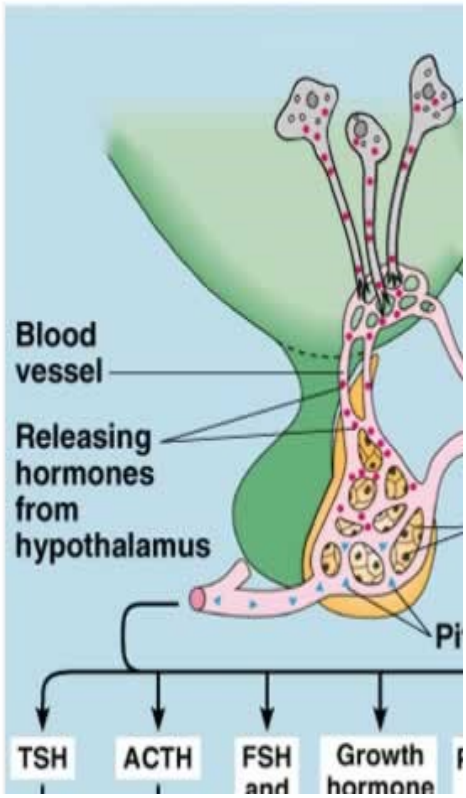

9.4.2 पश्च खण्ड (Posterior Pituitary) की संरचना एवं कार्य -

पश्च खण्ड निम्न दो हॉर्मोन्स का निर्माण करता है -

1. **ऑक्सीटोसिन** (Oxytocin)

- यह हॉर्मोन महिला प्रजनन में भूमिका के लिए जाना जाता है। यह प्रसव के दौरान योनि और गर्भाशय के फैलाव के समय बड़ी मात्रा में उत्पन्न होता है और स्रावित होता है।
- गर्भाशय संकुचन में सहायता करता है।

2. **वैसोप्रेसिन** (Vasopressin or Antidiuretic Hormone)

- वैसोप्रेसिन एक पेप्टाइड हॉर्मोन है जो गुर्दों के tubules में अणुओं के तमंचेवतचजपवद को नियंत्रित करता है और ऊतक पारगम्यता को बनाए रखता है।
- यह परिधीय संवहनी प्रतिरोध को बढ़ाता है, जिससे धमनियों में रक्तचाप बढ़ जाता है (Vasoconstriction)
- यह समावस्था (Homeostasis) में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और पानी, ग्लूकोज व रक्त लवण के विनियमन में भी सहायता करता है।

9.5 एड्रीनल/अधिवृक्क ग्रन्थि: संरचना एवं कार्य -

हमारे शरीर में दो अधिवृक्क ग्रन्थियाँ होती हैं तथा दोनों गुर्दों की चोटी पर स्थित होती है। यह कनेक्टिव टिश्यू कैप्सूल (connective tissue capsule) से घिरी होती हैं और आंशिक रूप से वसा के एक द्वीप में दबी रहती हैं। अधिवृक्क ग्रन्थि को सुपरारीनल ग्रन्थि(Suprarenal Glands) भी कहा जाता है।

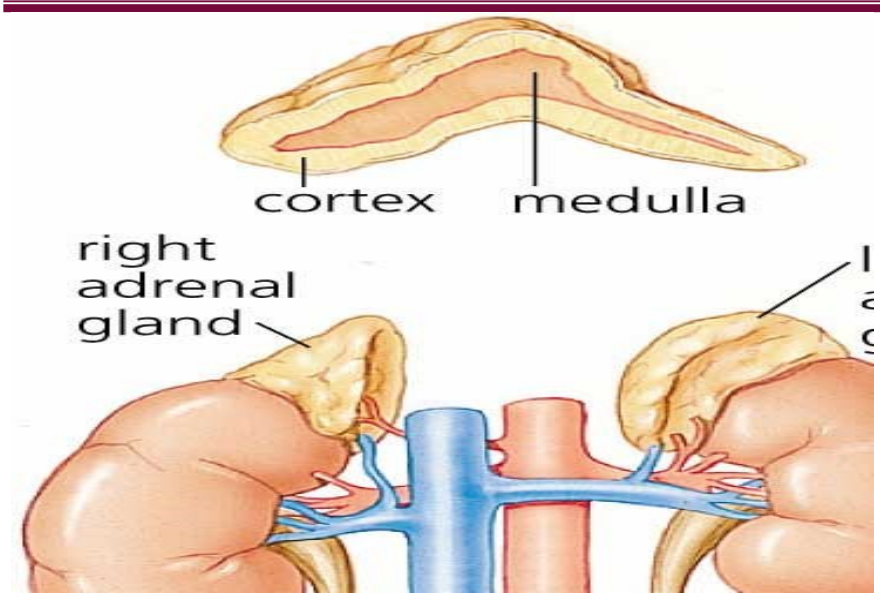

अधिवृक्क ग्रन्थि (Adrenal Gland)

एड्रीनल कॉर्टेक्स (Adrenal Cortex)	एड्रीनल मैड्यूला (Adrenal Medulla)
1. मिनरलोकॉर्टीकोइड (Mineralocorticoid)	1. एपीनेफ्रीन (Epinephrine)
2. ग्लूकोकॉर्टीकोइड (Glucocorticoid)	2. नॉरएपीनेफ्रीन (Norepinephrine)
3. गोनाडोकॉर्टीकोइड	

यह दोनों दो भागों में विभाजित होती हैं -

- पहली एड्रीनल कॉर्टेक्स (Adrenal Cortex) जो कि बाहरी क्षेत्र होता है और दूसरे को एड्रीनल मैड्यूला (Adrenal Medulla) कहा जाता है, जो कि आंतरिक क्षेत्र है।
- एड्रीनल कॉर्टेक्स और एड्रीनल मैड्यूला दोनों अलग-अलग कार्य करती हैं।

9.5.1 एड्रीनल कॉर्टेक्स की संरचना एवं कार्य

यह वजन में 5-7 ग्राम की ग्रन्थि है जो एड्रीनल ग्रन्थि का लगभग 90 प्रतिशत भाग बनाती है। यह कई स्टेरॉइड हॉर्मोन उत्पन्न करती है, जिन्हें कार्टिकोस्टेरॉइड (Corticosteroid) कहा जाता है।

कार्टेक्स के तीन क्षेत्र होते हैं –

पहला क्षेत्र- बाह्य क्षेत्र (outer zone) से मिनीरेलोकॉर्टिकॉइड (Mineralocorticoid) स्रावित होते हैं।

द्वितीय क्षेत्र-मध्य क्षेत्र (middle zone) से ग्लूकोकॉर्टिकॉइड (glucocorticoid) स्रावित होते हैं।

तृतीय क्षेत्र-आन्तरिक क्षेत्र (inner zone) से सेक्स हॉर्मोन या gonadocorticoid स्रावित होते हैं।

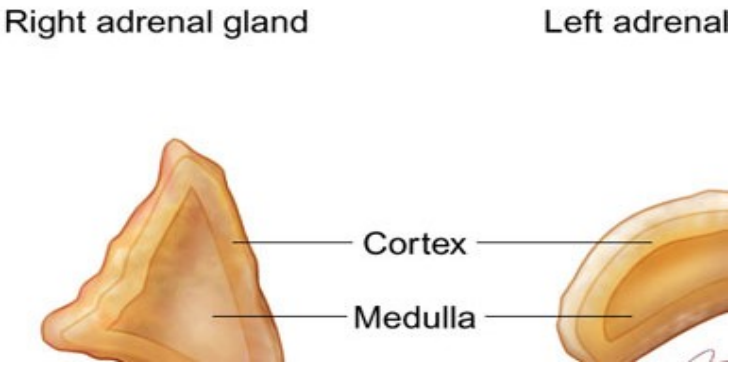

मिनरेलोकॉर्टिकॉयड (Mineralocorticoid)

इसके अन्तर्गत एल्डोस्टेरॉन (aldosterone) तथा डिहाइड्रोएपिएन्ड्रोस्टेरॉन (dehydroepiandrosteron) समाहित होते हैं, जिसमें एल्डोस्टेरॉन (aldosterone) प्रमुख हॉर्मोन है। मिनरेलोकॉर्टिकॉयड एड्रीनल कॉर्टेक्स के बाह्य क्षेत्र की कोशिका द्वारा उत्पन्न होने वाले स्टेरॉइड हॉर्मोनों का एक समूह (group) है, जो खनिजों (minerals) की सान्द्रता (density) को नियन्त्रित करता है।

एल्डोस्टेरॉन (aldosterone) शरीर में सोडियम (Na) और पोटेशियम (K) के सन्तुलन को बनाये रखने में सहायता करता है। यह वृक्कीय नलिकाओं (kidney tubule) द्वारा रक्त में सोडियम के पुनः अवशोषण में वृद्धि करता है जिससे मूत्र में सोडियम का उत्सर्जन कम होने लगता है। और पोटैशियम का उत्सर्जन बढ़ जाता है। यह श्वेद ग्रन्थियों (sweat glands) पर भी क्रिया करता है, जिससे शरीर द्रव्यों (body fluid) में इलेक्ट्रोलाइट्स (electrolytes) का संतुलन सामान्य बना रहे।

एल्डोस्टेरॉन की अधिकता से (अधिक स्राव होने पर) उच्च रक्तचाप (high blood pressure) हो जाता है। और रक्त में पोटैशियम की कमी (हाइपोथेलीमिया) हो जाती है, जिससे शरीर में झुनझुनी, सुई सी चुभन, कमजोरी, चक्कर आना आदि अपसंवेदनायें उत्पन्न हो जाती हैं।

ग्लूकोकॉर्टिकॉयड (Glucocorticoid)

यह एड्रीनल कॉर्टेक्स के मध्य क्षेत्र से स्रावित होने वाला हॉर्मोन है। यह रक्त शर्करा ;इसववक हसनबवेमद्ध की सान्द्रता को नियन्त्रित करने में सहायता करता है। यह दो तरह के होते हैं -

1. कॉर्टिसोल या हाइड्रोकॉर्टिसोन (cortisol or hydrocortisone)
2. कॉर्टिकोस्टेरॉन (corticosterone)

ग्लूकोज़ सान्द्रता का नियमन करने के अलावा यह ग्लूकोकॉर्टिकॉयड सभी तरह के भोज्य पदार्थों जैसे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन एवं वसा आदि के उपापचय (metabolism) को प्रभावित करते हैं। यह एण्टीइन्फ्लेमेट्री एजेण्ट (anti-inflammatory agent) की तरह भी कार्य करते हैं। ये वृद्धि को भी काफी हद तक प्रभावित करते हैं। ये शारीरिक अथवा मानसिक तनाव (stress) के प्रभावों को कम करने में सहायक होते हैं। यह यकृत द्वारा संग्रहीत प्रोटीन को ग्लूकोजन में परिवर्तित करता है, जिसे ग्लूकोनियोजेनेसिस की प्रक्रिया कहा जाता है और यह कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज के उपयोग को भी कम करता है, जिसके परिणामस्वरूप शरीर में रक्त शर्करा (blood sugar) का स्तर बढ़ जाता है। परन्तु यह अग्नाशय (pancreas) द्वारा स्रावित insulin से प्रायः सन्तुलित हो जाता है।

ग्लूकोकॉर्टिकॉयड के अधिक मात्रा में स्रावित होने के कारण 'कुसिंग्स रोग' (Cushing's syndrome) होता है। जो प्रायः कॉर्टेक्स में ट्यूमर का कारण बनता है। 'कुसिंग रोग' में हाथ-पैर सामान्य रहते हैं, परन्तु चेहरा, वक्षस्थल एवं उदर क्षेत्र की चर्बी बढ़ जाती है। उदर पर धारियाँ बन जाती हैं। मधुमेह होने की सम्भावना अधिक बढ़ जाती है। त्वचा का रंग बदल जाता है। रक्तचाप बढ़ जाता है। कमर दर्द रहने लगता है। पुरुषों में नपुंसकता तथा स्त्रियों में मासिक धर्म बन्द हो जाता है।

गोनेडोकॉर्टिकॉयड्स (Gonadocorticoid)

यह सेक्स हॉर्मोन (sex hormone) भी कहलाता है। यह एड्रीनल कॉर्टेक्स के आन्तरिक क्षेत्र से स्रावित होने वाला हॉर्मोन है। इनका नियमन एडिनोकॉर्टिकोट्रॉपिक हॉर्मोन द्वारा होता है। सेक्स अंगों पर इसका प्रभाव बहुत कम मात्रा में होता है। इसके अन्तर्गत एण्ड्रोजन

(Androgen),ईस्ट्रोजन(Oestrogen) तथा प्रोजेस्टेरोन (Progesterone)], इन तीन लिंग हॉर्मोन्स का समावेश होता है, जिनका सम्बन्ध जनन तथा लैंगिक विकास से होता है। इनका प्रभाव वृषण (testis) एवं डिम्बाशय (ovum) द्वारा स्रावित हॉर्मोन के समान ही होता है। ये पुरुष एवं स्त्रियों के प्रजनन अंगों के कार्य को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा उनकी शारीरिक एवं स्वभावगत विशेषताओं को भी प्रभावित करते हैं।

इस हॉर्मोन के अतिस्रावण से बच्चों में समय पूर्व लैंगिक परिपक्वता (sexual maturity) है और स्त्रियों में द्वितीयक पुरुष लिंग विशिष्टतायें, जैसे आवाज में भारीपन, स्तनों के आकार में कमी, दाढ़ी-मूंछ का आना आदि लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।

इसकी अल्पसक्रियता से 'एडीसन' रोग (Addison's disease) उत्पन्न हो जाता है। इस रोग में कमजोरी एवं अति थकावट महसूस होती है, त्वचा का रंग ताँबे जैसा हो जाता है। रक्ताल्पता (Anemia)] रक्त में पोटेशियम (K) स्तर बढ़ जाता है तथा सोडियम का स्तर घट जाता है। रक्तचाप कम हो जाता है, रक्त शर्करा (blood sugar) का स्तर कम हो जाता है। इस रोग का नियन्त्रण कॉर्टिसोन एवं एल्डोस्टीरॉन की नियमित मात्रायें देकर किया जा सकता है।

9.5.2 एड्रीनल मेड्यूला (Adrenal Medulla) की संरचना एवं कार्य –

यह एड्रीनल ग्रन्थि का आन्तरिक भाग होता है और पूरी तरह से कॉर्टेक्स से ढँका रहता है। इससे कैटेकॉलेमाइन्स (Catecholamine) अर्थात एड्रीनलीन (Adrenaline) या इपीनेफ्रीन (epinephrine) तथा नॉरएड्रीनलिन (Noradrenaline) या नॉरएपीनेफ्रीन (Norepinephrine) नामक दो हॉर्मोन का स्रावण होता है।

नॉरएपीनेफ्रीन एपीनेफ्रीन की अपेक्षा कम प्रभावी होता है और यह बहुत कम मात्रा में उत्पन्न होता है। इस हॉर्मोन का प्रभाव सिम्पेथेटिक तंत्रिका तंत्र के समान ही होता है, जैसे श्लेषमा का स्रावण कम होना, पाचक द्रव्यों का स्रावण कम होना, हृदय गति तीव्र होना, श्वास नली का फैल जाना, लार का गाढ़ा व चिपचिपा हो जाना, रक्त वाहिकाओं का संकुचन हो जाना, पसीना बढ़ जाना आदि। यह हॉर्मोन किसी उद्दीपन से तुरन्त प्रतिक्रिया करते हैं और कुछ स्थितयों में जिसमें 'लड़ो या भागो प्रतिक्रिया' के लिये शरीर को तैयार करती है।

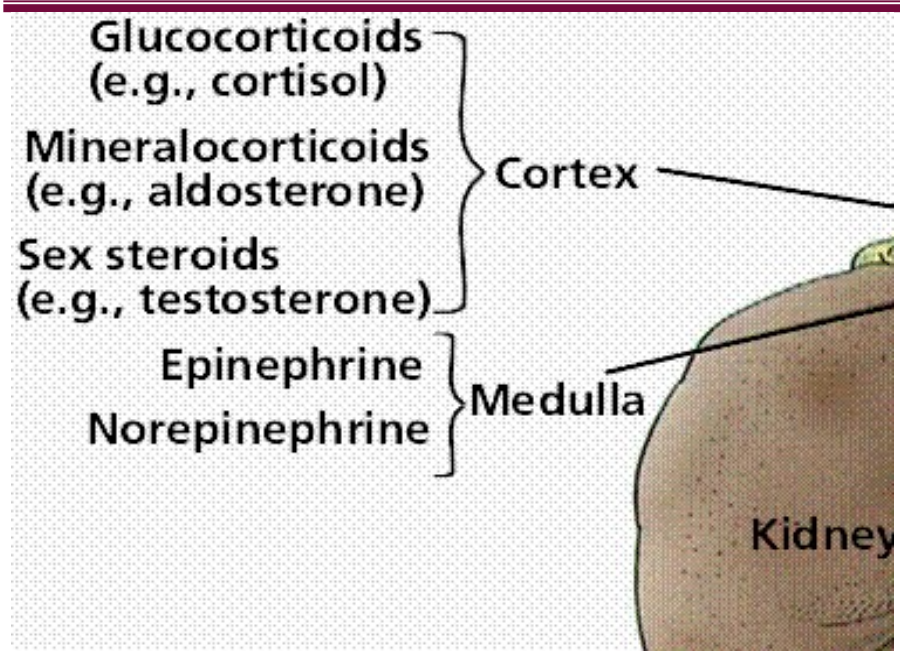

एड्रीनेलिन (adrenaline) या इपीनेफ्रीन (epinephrine)के कार्य

- हृदय की रक्त वाहिनियों (epinephrine) को विस्फारित करना।
- हृदय की धड़कन की दर एवं शक्ति को बढ़ाना।
- हृदय से कॉर्डिएक आउटपुट (Cardiac output) बढ़ाना।
- कंकालीय पेशियों (skeletal muscles) की रक्तापूर्ति करने वाली धमनियों (arterials) को विस्फारित करना एवं उनमें होने वाली थकान की दर को कम करना।
- श्वास नलिकाओं को विस्फारित करना व श्वास दर (respiratory rate) को बढ़ाना।
- पाचन संस्थान की चिकनी पेशियों (smooth muscles) के संकुचन को रोक कर शिथिलता उत्पन्न करना।
- चयापचयी दर (metabolic rate) को बढ़ाना।
- यकृत (liner) एवं पेशियों (muscles) में स्थित ग्लाईकोजन (glycogen) को ग्लूकोज़ (glucose) में बदलकर रक्त में शर्करा का स्तर बढ़ाना व पेशियों में लैक्टिक एसिड (lactic acid) के स्तर को बढ़ाना।

नॉरएड्रीनेलिन (Noradrenaline) या नॉरएपीनेफ्रीन (norepinephrine) के कार्य

- परिसरीय वादिका संकुचन कर के रक्तचाप (blood pressure) बढ़ाना।
- लिपिड चयापचय को बढ़ाना।
- वसा ऊतक (adipose tissue) से उन्मुक्त वासीय अम्लों (free fatty acids) को स्वतंत्र करना है।

9.6 थाइरॉइड ग्रन्थि (Thyroid Gland)

थाइरॉइड ग्रन्थि ग्रीवा में श्वास प्रणाल (Trachea) के सामने निचले सर्वाइकल और प्रथम थोरेसिक वर्टिब्रा के स्तर पर स्थित रहती है। यह दो खण्डों में विभक्त रहती है जो लेरिक्स (स्वर यंत्र) और ट्रेकिया (श्वास प्रणाल) के मध्य जोड़ के दोनों तरफ स्थित रहती है। एक सामान्य वयस्क में थाइरॉइड ग्रन्थि का वजन लगभग 25-40 ग्राम तक होता है। थाइरॉइड ग्रन्थि के दोनों लॉब (खण्ड) उतक के एक ब्रिज से जुड़े होते हैं, जिसे इस्थामस (Isthmus) कहते हैं।

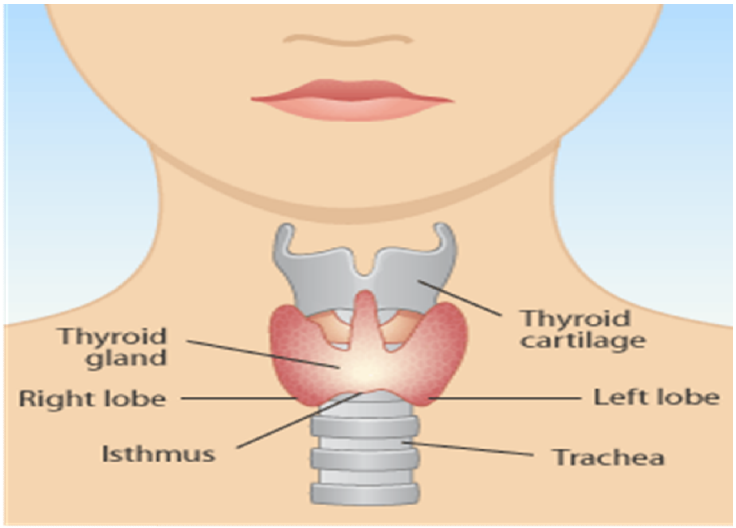

9.6.1 थाइरॉइड ग्रन्थि की संरचना - थाइरॉइड ग्रन्थि की कार्यात्मक इकाई बहुत सारे आपस में जुड़े हुए फॉलिकल (follicles) होते हैं। इन फॉलिकल में एक गाढ़ा चिपचिपा प्रोटीन पदार्थ भरा होता है जिसे कोलाइड कहते हैं। इस कोलाइड में थाइरॉइड हॉर्मोन संचित रहते हैं। थाइरॉइड ग्रन्थि दो तरह की कोशिकाओं फोलीक्यूलर और पैराफोलीक्यूलर कोशिकाओं से निर्मित होती है। फोलीक्यूलर कोशिकायें (follicular cells) चारों ओर फैली हुई रहती हैं। यह

थाइरॉइड हॉर्मोन थाइरॉक्सिन और थाइरॉइडोट्राइआइडो थायरोडीन का निर्माण एवं स्रावण करती हैं, जो शरीर की अधिकांश कोशिकाओं में उपापचय (Matabolism) को बढ़ाते हैं। पैराफालिक्यूलर कोशिकायें फोलिक्यूलर कोशिकाओं की अपेक्षा कम और आकार में बड़ी होती हैं। इन्हें 'C' cell भी कहते हैं। यह कोशिकायें फोलिकल्स के मध्य समूह में पाई जाती हैं तथा केलिस्टोनिन नामक हॉर्मोन का निर्माण एवं स्रावण करती हैं।

थाइरॉइड ग्रन्थि के कार्य -थाइरॉइड निम्नलिखित तीन हॉर्मोन्स का स्रावण करता है -

1- T3
2- T4
3- TCT

T3 हॉर्मोन अथवा ट्राईआयडो थाइरॉक्सीन (Triiodeothyroxine)

1. विकास एवं वृद्धि को प्रभावित करता है।
2. सामान्य उपापच्य दर को नियन्त्रित करता है।
3. कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, उपापच्य को सम्पन्न करता है।
4. शारीरिक भार को नियन्त्रित करता है।
5. मूत्र निर्माण में सहायक है।
6. कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज के अन्तःग्रहण को बढ़ाता है।
7. हृदय गति एवं श्वसन दर को नियन्त्रित करता है।

T4 हॉर्मोन अथवा थाइरॉक्सीन या टैट्राआयडोथाइरॉक्सीन (Tetraiodothyroxine)

इसके कार्य T3 हॉर्मोन के समान ही हैं, परन्तु यह थाइरॉइड स्राव का लगभग 90 प्रतिशत होता है जबकि T3 अधिक सांद्र और अधिक सक्रिय होता है।

TCT **अथवा थायरोकैल्सिटोनिन** (Thyrocalcitonin)- यह रक्त में कैल्शियम की सान्द्रता को कम करता है एवं Bone mineral metabolism का नियन्त्रण करता है।

थाइरॉइड स्रावण की कमी एवं अधिकता का शरीर पर प्रभाव-

अधिकता से पड़ने वाला प्रभाव - थाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता से हाइपर थाइरॉडिस्म (Hyperthyroidism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में नेत्रोत्सेधी गलगण्ड ; (Exophthalmic goitre) हवपजतमद्ध हो जाता है। इस रोग के लक्षणों में आँखें बाहर को उभर जाती हैं तथा रोगी को गर्मी का अनुभव अधिक होता है। अधिक भूख के बावजूद वजन कम होने

लगता है। अंगुलियों में कंपन और हृदय गति तीव्र हो जाती है। वास्तव में थाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता 'आयोडीन' की कमी के कारण होती है।

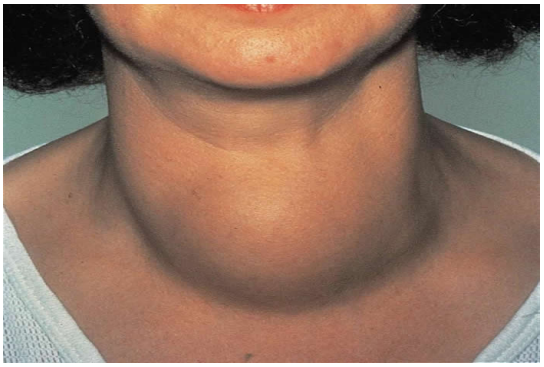

कमी से शरीर पर पड़ने वाला प्रभाव - थाइरॉइड ग्रन्थि के अल्प सक्रियता से अथवा ग्रन्थि से कम मात्रा में हॉर्मोन के स्रावण से 'हाइपो थाइरॉडिस्म' (Hypothyrodism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति के कारण गर्भ में शिशु के विकास अथवा शैशवावस्था के दौरान थाइरॉइड अल्प क्रिया से 'क्रेटिनिज्म' (जड़ मानवता) नामक रोग हो जाता है। इस रोग में बुद्धि का ह्रास हो जाता है। बच्चों का विकास रुक जाता है। कंकालीय वृद्धि रुक जाती है, पेट बाहर को अधिक बढ़ जाता है। माँसपेशीय कमजोरी हो जाती है। आहार नाल की गतिशीलता (motility) कम हो जाने के कारण कब्ज हो जाता है। दाँत देर से निकलते हैं, अस्थियों एवं पेशियों का विकास अतिक्रमित हो जाता है। वयस्कों में थाइरॉइड ग्रन्थि के सक्रियता से 'मिक्सीडीमा' (Myxedema) नामक रोग होने से त्वचा पीली, सूखी, रूक्ष हो जाती है। चेहरा फूला-फूला सा लगता है। वजन बढ़ जाता है। शरीर का तापमान सामान्य से कम हो जाता है जिससे ठण्ड सहन नहीं हो पाती। बाल शुष्क, खुरदरे और पतले हो जाते हैं, सुस्ती, थकान होती है। महिलाओं में या तो मासिक स्राव नहीं होता अथवा बहुत अधिक होता है। याद्दाश्त में कमजोरी एवं मानसिक क्षमता का ह्रास होने लगता है।

9.7 **पैराथाइरॉइड ग्रन्थि** (Parathyroid Gland)-

पैराथाइरॉड ग्रन्थि की संरचना- पैराथाइरॉइड ग्रन्थि मसूर के दाने के आकार की चार छोटी-छोटी ग्रन्थियों का समूह है, जिनमें से प्रायः दो-दो थाइरॉइड ग्रन्थि के प्रत्येक खण्ड की पोस्टीरियर (पिछली सतह) में स्थित रहती है। ये लगभग 3-4 मि0मी0 व्यास की होती है और पीले भूरे रंग

की होती है। जिन कोशिकाओं से ये बनी होती है, वे spherical होती हैं और columns में व्यवस्थित होती हैं। इनका वजन 0.05 से 0.3 ग्राम तक होता है।

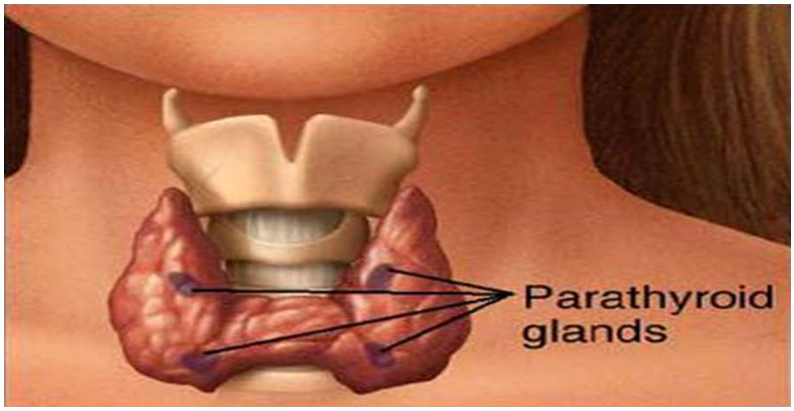

15.4.2 **पैराथाइरॉइड ग्रन्थि के कार्य** -यह ग्रन्थि शरीर में कैल्शियम के स्तर का संचलान करती है। इसका तात्पर्य यह है कि रक्त में कैल्शियम की अधिकता और कमी का नियन्त्रण इसी के द्वारा सम्पादित होता है। यह कार्य निम्न प्रकार से सम्पादित होता है -

रक्त में कैल्शियम के नियन्त्रण हेतु यह शरीर के तीन अंगों पर प्रभाव ड़ालता है -

1. अस्थि
2. वृक्क/किडनी
3. आन्त

- **जब रक्त में कैल्शियम की कमी होती है तो पैराथाइरॉइड कैल्शियम को बढ़ाने का कार्य** करता है।
- **जब कैल्शियम अधिक होता है तो यह** उसे कम करने का कार्य करता है।

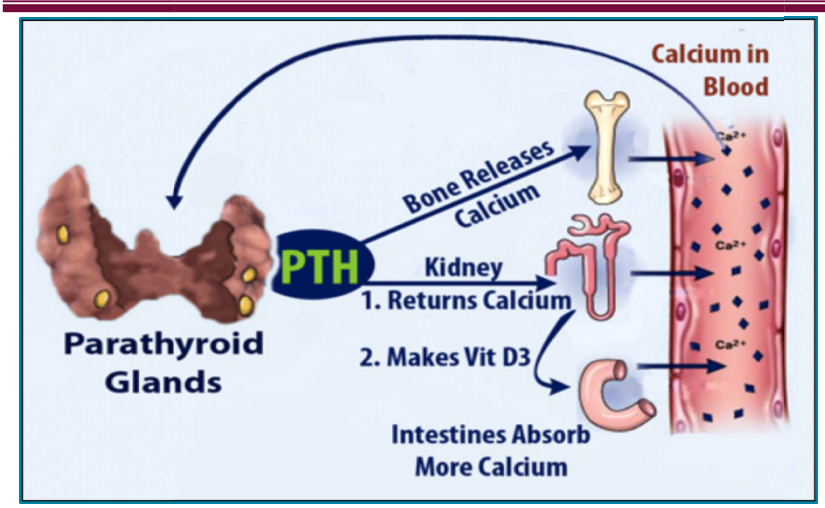

यह विभिन्न अंगों पर प्रभाव निम्न तरीके से करता है -

पैराथाइरॉइड हॉर्मोन अस्थि से कैल्शियम रक्त में खींचता है।

पैराथाइरॉइड हॉर्मोन किडनी पर तीन प्रकार से असर करता है -

1. पेशाब में Ca बहने से रोकता है।
2. पेशाब में फॉसफोरस को बहने देता है।
3. एक प्रकार का विटामिन 'डी' बनाता है, जिसे Calcitriol कहते हैं।

कैल्सिट्रिओल कैल्शियम और फॉसफोरस को छोटी आँत के खण्डों से रक्त में खींच लेता है।

कैल्सिट्रिओल अस्थि से कैल्शियम (Ca) रक्त में खींच लेता है।

पैराथाइरॉइड ग्रन्थि से स्रावित होने वाला हॉर्मोन

इस ग्रन्थि से पैराथोर्मोन नामक हॉर्मोन स्रावित होता है, जिसका प्रमुख कार्य कैल्शियम और फॉस्फेट के मेटाबोलिज़्म को नियन्त्रित करना होता है। अस्थियों में जहाँ कैल्शियम और फॉस्फेट मिलकर अस्थि का निर्माण करते हैं, वहीं यह हॉर्मोन कैल्शियम और फॉस्फेट को अस्थि से रक्त में ले जाने का कार्य करता है।

किडनी में यह फॉस्फेट के निकलने को बढ़ाता है। साम्यावस्था बचाये रखने में यह हॉर्मोन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जैसे-

- यह शरीर के मेम्ब्रेन पारगम्यता को बनाये रखता है। (Membrane permeability)

- तंत्रिक, पेशीय एवं हृदीय कार्यों को सुचारू रूप से चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- हाइपर कैल्शिमिया को नियन्त्रित करता है।

ग्रन्थि की सक्रियता से प्रभाव-

अधिकता से शरीर पर प्रभाव - पैराथाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता से अथवा ग्रन्थि से अधिक मात्रा में हॉर्मोन के स्रावण से हाइपर पैरेथाइरॉडिस्म (Hyperparathyroidism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में रक्त में फॉस्फोरस की मात्रा कम हो जाती है, परन्तु बं् की मात्रा अधिक हो जाती है। ऐसी स्थिति में अस्थियों से अधिक Ca का पुनः अवशोषण (reabsorption) हो जाता है और रक्त में Ca की मात्रा बढ़ जाती है। अस्थियों में बं् की कमी हो जाने से वह छिद्रमय और भुरभुरी हो जाती है। Ca की वृद्धि से पेशी और तंत्रिका उत्तेजनशीलता कम हो जाती है।पेशियों में स्फूर्ति कम हो जाती है। मूत्र में फॉस्फोरस और कैल्शियम निकलने लगता है तथा गुर्दों में पथरी (renal calculi or stones) बन जाती है।

कमी से शरीर पर प्रभाव - पैराथाइरॉइड ग्रन्थि की अल्प सक्रियता से अथवा ग्रन्थि से कम मात्रा में हॉर्मोन के स्रावण से हाइपोपेराथाइरिडिस्म (Hypoparathyroidism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति के कारण रक्त में बं् की मात्रा कम हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप टिटेनी (Tetany) नामक रोग हो जाता है। इस रोग में पेशीय कड़ापन और ऐंठन होती है, हृदय की गति बढ़ जाती है, श्वास की गति बढ़ जाती है और बुखार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

इस स्थिति में रक्त में Ca आयन स्तर 10 ml 100 ml से घटकर 7 mg/100 ml हो जाता है। यदि यह स्तर और अधिक घट जाये, तो गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जैसे-जैसे रक्त में Ca की मात्रा घटती जाती है, पेशाब में भी कमी होती जाती है। यह स्थिति बच्चों में अधिक पाई जाती है।

9.8 **यौन ग्रन्थियाँ -**

जनन ग्रन्थियों का सम्बन्ध जनन (reproduction) से होता है। इन ग्रन्थियों के अन्तर्गत पुरुष एवं स्त्री के जननांगों का समावेश होता है। पुरुष में वृषण ग्रन्थियाँ (Testes) और स्त्री में डिम्बा ग्रन्थियाँ (ovaries) जनन ग्रन्थियाँ या लिंग ग्रन्थियाँ (sex glands) कहलाती हैं। ये हॉर्मोन का स्राव करती हैं जो प्रजनन कार्यों (reproductive functions) के नियमन में सहायता करते हैं। वृषभ एवं डिम्ब ग्रन्थियों का विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है -

9.8.2 वृषण (Testes) की संरचना एवं कार्य- वृषण पुरुष की प्रजनन ग्रन्थियाँ हैं। ये ग्रन्थि शुक्राणु का उत्पादन करती है जो कि जनन के दौरान मुख्य भूमिका निभाता है। भ्रूणीय विकास के दौरान वृषण उदर श्रेणि गुहा के भीतर वृक्कों (kidney) के ठीक नीचे निर्मित होते हैं। तीन माह का भ्रूण होने पर प्रत्येक वृषण अपनी वास्तविक जगह से नीचे उतरकर इन्वाइनल केनाल (inguinal canal) में आ जाता है। सातवें माह के पश्चात ये inguinal canal बंदंस से गुजरकर वृषणकोष या अण्डकोश में आ जाता है। वृषणकोष शिशनमूल के नीचे एवं जांघों के बीच में लटकने वाली त्वचा की एक थैली होते हैं। टेस्टीज वृषणकोष में जन्म के पश्चात या थोड़ी ही पहले पूर्णतया उतरते हैं। Inguinal canal वृषण के गुजरने के पश्चात प्रायः बन्द हो जाती है। यदि केनाल बन्द नहीं हो पाती, तो inguinal हॉर्निया हो जाता है। यदि टेस्टीज ठीक से नहीं उतरते हैं या उदरगुहा में ही रह जाते हैं, तो प्रायः प्रारम्भिक बाल्यावस्था में ही ऑपरेशन द्वारा उन्हें अपने स्थान पर लाया जाता है। यदि यह दशा ठीक नहीं की जाती तो टेस्टीज द्वारा टेस्टोस्टीरॉन नामक हॉर्मोन उत्पन्न तो होता है, परन्तु शुक्राणु उत्पन्न नहीं होते, जिसके परिणामस्वरूप बांझपन या बन्ध्यता (sterility) की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। इसके अतिरिक्त इस अवस्था के परिणामस्वरूप टेस्टीकुलर कैंसर होने की सम्भावना बढ़ जाती है। बांया वृषण दायें के तुलना में कुछ नीचे होता है जिससे सामान्य क्रियाओं में ये आपस में नहीं टकराते हैं। वृषण शरीर के बाहर वृषणकोष में रहते हैं।

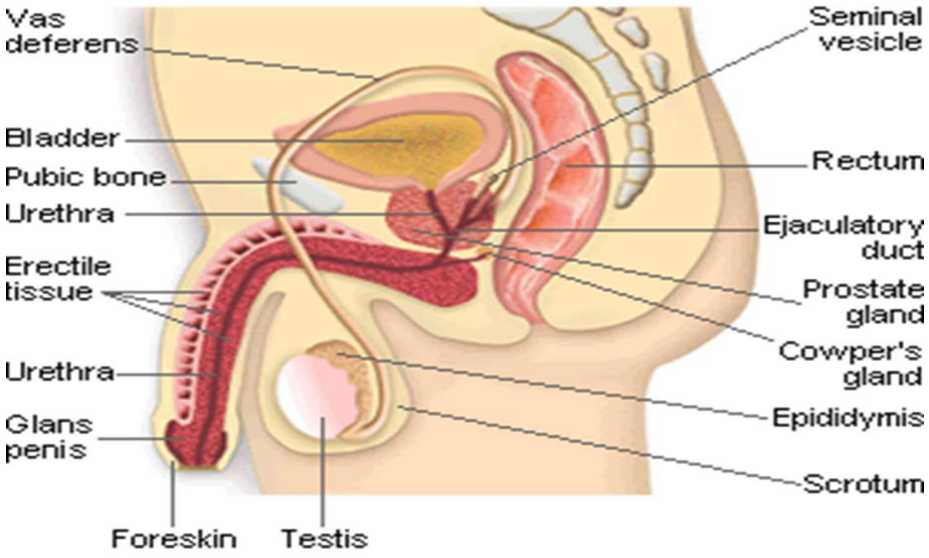

अतः इनका तापमान शरीर के ताप से लगभग 30 F कम होता है। यह कम तापमान शुक्राणुओं की उत्पत्ति तथा उनके जीवित रहने के लिये आवश्यक होता है।

संरचना-वृषण शरीर के बाहर वृषणकोष में स्थित रहते हैं। वृषणकोष का आन्तरिक भाग एक तन्तुमय मीडियन सेप्टम द्वारा दो भागों में विभाजित होता है। प्रत्येक भाग या कक्ष में एक वृषण रहता है। मीडियन सेप्टम की दीवार वृषणकोष पर बाहर की ओर त्वचा के उभार (रेखा), पेरीनियल रेफी (perineal raphe) के रूप में दिखाई देती है, जो आगे चलकर शिशन के नीचे स्थित मध्य रेखा तथा पीछे perineum से गुदा तक स्थित मध्य रेखा में विलीन हो जाता है।

वयस्कों में प्रत्येक वृषण अण्डाकार आकृति का होता है तथा लगभग 4.5 सेमी0 लम्बा तथा 2.5 सेमी0 चौड़ा होता है। ये वृषणकोष में दोनों ओर वृषणरन्जुओं द्वारा लटके रहते हैं। प्रत्येक वृषण एक तन्तुमय थैली (fibrous sac) जिसे ट्यूनिका एल्ब्यूजीनिया (Tunica albuginea) कहते हैं, में बन्द रहता है। Tunica albuginea में वृषण में भीतर की ओर को कई पट (septae) निकलकर इसे कई कक्षों में जो कि lobules कहलाते हैं, में विभाजित करता है।

अधिवृषण या एपिडिडायमस (Epididymis) की संरचना एवं कार्य-शुक्रजनन नलिकायें वृषण के मध्य पश्च भाग में आकर मिलती हैं। यह क्षेत्र 'मीडिएस्टीनम टेस्टीज़' कहलाता है। शुक्रजनन नलिकायें सीधी होगी सीधी नलिकायें (tubuli recti) बन जाती हैं जो सूक्ष्म नलिकाओं के जाल, जिसे रेती टेस्टीज़ कहा जाता है, में खुलती हैं। इसके ऊपरी सिरे पर 15-20 अपवाही नलिकायें ; (efferent ducts) खुलती हैं।

अधिवृषण के कार्य

1. यह शुक्राणुओं के परिपक्त होने तक एवं स्खलित होने तक इनको संचित रखता है।
2. वृषण से स्खलनीय वाहिकाओं तक शुक्राणुओं को पहुँचाता है।
3. शुक्राणुओं को आगे शिश्न की ओर धकेलता है।

प्रत्येक अधिवृषण में सिर, काय और पुच्छ होती है। सिर वृषण के शीर्ष भाग पर स्थित रहता है। काय वृषण में पार्श्वीय एवं पुच्छ वृषण के तल तक फैला रहता है।

शुक्राणु (Sperm) एक परिपक्व शुक्राणु सिर, ग्रीवामय में बंटा होता है। सिर में केन्द्रक होता है, जिसमें गुणसूत्र रहते हैं। ग्रीवा में कुण्डलित माइटोकॉण्ड्रिया रहते हैं, जो गतिशीलता के लिये ऊर्जा प्रदान करते हैं। पुच्छ की सहायता से शुक्राणु गति करते हैं। Tunica celbuginea ट्यूनिका

वैस्कुलोसा (tunica vasculosa)में आस्वरित होती है तथा ट्यूनिका वैजाइनेलिस (tunica vaginalis) से अच्छादित रहती है।

ट्यूनिक वैस्कुलौसा वाहिलामाय (vascular) परत होती है, जिसमें कोशिकाओं का जाल विद्यमान होता है तथा ट्यूनिका वैजाइनैलिस दो परतों वाली सीरमी कला होती है, जो उदर श्रोणि गुहा को आस्तरित करती है एवं विलीन हो जाती है।

प्रत्येक वृषण में 800 से अधिक कसी हुई कुण्डलित सूक्ष्म नलिकायें होती हैं, जिन्हें शुक्रजनक नलिकायें (seminiferous tubules) कहते हैं। ये नलिकायें एक स्वस्थ वयस्क व्यक्ति में प्रति सेकेण्ड में हजारों शुक्राणु उत्पन्न करती हैं। दोनो वृषणों में विद्यमान शुक्रजनक नलिकाओं की कुल लम्बाई लगभग 225 मीटर होती है। इनकी भित्तियाँ जर्मिनल (germinal) ऊतक द्वारा आस्तरित होती हैं, जिसमें दो तरह की कोशिकायें शुक्राणुजनक कोशिकायें (spermatogenic cells) एवं सहारा देने वाली सर्तोली (sertoli) कोशाऐं रहती हैं। शुक्राणुजनक कोशिकायें शुक्राणुओं में रूपान्तरित हो जाती हैं। शुक्राणु का विकास अथवा शुक्राणुजन का अध्ययन आप प्रजनन संस्थान में विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे। सर्तोली कोशाऐं जर्मिनल शुक्राणुओं के परिपक्वन के लिये पोषण उपलब्ध कराती हैं। ये कोशिकायें नलिकाओं के भीतर एक प्रकार का तरल स्राव भी स्रावित करती है, जो विकासशील शुक्राणुओं के बाहर की ओर बहने के लिये एक तत्व माध्यम का कार्य करता है। ये कोशिकायें एण्ड्रोजन - बाइडिंग प्रोटीन का स्रावण करती हैं, जो टेस्टोस्टीरॉन एवं ईस्ट्रोजन दोनों को बांधती है तथा इन हॉर्मोन को शुक्रजनन नलिकाओं के भीतर के तरल में पहुँचाती हैं। यहाँ ये परिपक्व होते हैं।

शुक्राणु वृषण की शुक्रजनन नलिकाओं में उत्पन्न होने वाली पुरुष जनन कोशिकायें होती हैं। इनकी लम्बाई लगभग 0.05 मि.मी. होती हैं। प्रत्येक शुक्राणु 2 माह में पूर्णतया विकसित होता है। इनकी परिपक्वता अधिवृषण में होती है।

वृषण के हार्मोन व उनके कार्य- वृषण (testes) का अंतःस्रावी भाग कोशिकाओं के एक समूह से बना होता है, जिन्हें इन्टरस्टीशियल कोशिकायें (Interstitial cells) कहते हैं। यह कोशिकायें वृषण के सेमिनीफैरस ट्यूब्यूल्स (seminiferous tubules)के मध्य स्थित कनेक्टिव ऊतकों (connective tissues) में पाई जाती हैं। इन इंटरस्टीशियल कोशिकाओं से पुरुष सेक्स हॉर्मोन टेस्टोस्टीरोन (testosterone) व एंड्रोस्टीरोन (Andosterone) स्रावित होते हैं जो कि सेकेण्ड्री सैक्सुअल कैरेक्टर्स (secondary sexual characters) के लिए उत्तरदायी होते हैं। इनका वर्णन निम्न है –

a. **टेस्टोस्टीरोन**(Testosterone)

- सेकेण्ड्री सेक्स अंग (secondary sex organs) जैसे एपीडीडाइमिस (epididymis), पोस्ट्रेट ग्रन्थि (Postrate gland)] सेमिनल वैसिकल (seminal vesicle) के वृद्धि एवं विकास को नियंत्रित करता है।
- पुरुष की सेकेण्ड्री सेक्सुअल विशेषताओं (secondary sexual characters)जैसे दाढ़ी, मूँछ, आवाज में भारीपन, कंधों का चौड़ा, लम्बाई आदि के विकास के लिए उत्तरदायी होता है।
- सहवास उद्दीपन के लिय उत्तरदायी होता है।
- शुक्राणुओं (sperms) की परिपक्वता के लिए उत्तरदायी होता है।

एण्ड्रोस्टीरोन (Androsterone)

- यह द्वितीयक सेक्स लक्षणों को उभारने में सहायक होता है, परन्तु यह टेस्टोस्टीवेज की तुलना में कम प्रभावी रहता है।

9.8.3 डिम्ब ग्रन्थियाँ (Ovaries) की संरचना एवं कार्य- स्त्रियों में दो डिम्ब ग्रन्थियाँ होती हैं, जो डिम्ब (ova) एवं स्त्री हॉर्मोन (hormone) उत्पन्न एवं स्रावित करती है। ये बादाम के आकार की हल्के भूरे रंग की ग्रन्थियाँ हैं, जो उदर के निचले भाग में गर्भाशय के दोनों ओर डिम्बवाहिनिकाओं के पीछे एवं नीचे स्थित रहती हैं। प्रत्येक डिम्ब ग्रन्थि डिम्बग्रन्थियोजनी या मीजोवैरियम (Mesovarium) द्वारा ब्रॉड लिगामेण्ट की ऊपरी सतह से संलग्न रहती है। मीजोवेरियम के बॉर्डर में मोटापन डिम्बाशयी लिगामेण्ट (ovarian ligament) कहलाता है, जो डिम्बग्रन्थि से गर्भाशय तक फैला रहता है। मीजोवेरियम में शिराऐं, धमनियाँ, लसीका वाहिकाऐं एवं तंत्रिकायें विद्यमान होती हैं, जो डिम्ब ग्रन्थि के छिद्र (Hylum) से होकर आती एवं जाती हैं। डिम्ब ग्रन्थियाँ सस्पेन्सरि लिगामेण्ट द्वारा श्रोणि की पार्श्वीय भित्तियों से लटकी होती हैं।

संरचना-डिम्ब ग्रन्थियाँ विशिष्ट उपकला कोशाओं की एक परत से आच्छादित रहती हैं, जिसे बीज या जननित परत (germinal layer) कहा जाता है। इस परत के नीचे संयोगी ऊतक (connective tissue) का एक पिण्ड होता है जिसे स्ट्रोमा (stroma) कहते हैं।

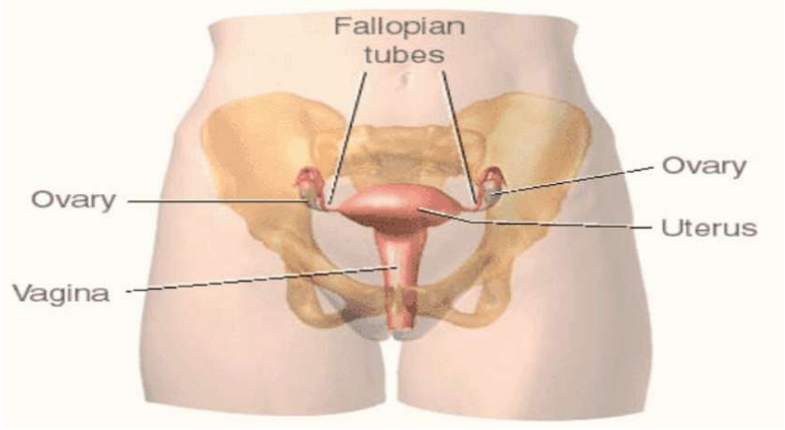

इसी स्ट्रोमा (stroma) में डिम्ब (ova) परिपक्व होता है। डिम्ब ग्रन्थि निम्न दो भागों में बंटी होती है -

1. कॉर्टेक्स भाग
2. वाहिकामय मेड्यूला भाग

कॉर्टेक्स में गोलाकार एपिथीलियमी उतक होते हैं, जिन्हें फॉलिकल्स (follicles) कहा जाता है। इनमें डिम्ब की उत्पत्ति एवं विकास (oogenesis) होता है। प्रत्येक फॉलिकल में एक अपरिपक्व डिम्ब होता है, जिसे प्राथमिक डिम्ब कोशिका (primary oocyte) कहा जाता है तथा ये फॉलिकल्स हमेशा विकास की कुछ एक अवस्थाओं में विद्यमान रहते हैं।

कॉर्टेक्स के बाहरी भाग अर्थात एपिथीलियल परत के नीचे संयोगी ऊतक की सफेद परत होती है, जिसे 'टयूनिका एल्ब्यूजीनिया' (tunica albuginea) कहा जाता है। जन्म के समय कन्या शिशु की प्रत्येक डिम्ब ग्रन्थि में हजारों की संख्या में प्रीमोर्डीयल फॉलीकल्स होते हैं। 12 से 16 वर्ष की आयु में इनकी maturity शुरू हो जाती है। किसी स्त्री के सम्पूर्ण जीवन काल में लगभग 500 फॉलिकल्स ही परिपक्व हो पाते हैं। शेष विघटित हो जाते हैं। जब फॉलिकल्स परिपक्व होते हैं, तो इसकी भित्ति का निर्माण करने वाली कोशिकाओं की संख्या में अत्यधिक वृद्धि होने से फॉलिकल का परिवर्धन हो जाता है और उसके भीतर बनने वाले द्रव से गुहा भर जाती है। इस द्रव को 'पुटक द्रव' (liquor follicali) कहते हैं। प्रतिमाह ऋतुस्राव (menses) समाप्त होने के अगले दिन से एक डिम्ब ग्रन्थि में एक फॉलिकल पुटल का विकास होना आरम्भ हो जाता है। पूर्ण विकसित या परिपक्त फॉलिकल को वेसिक्यूलर ओवेरियन फोलिक्यूल (Vesicular ovarian follicle) या ग्राफियन फॉलिकल (Graafian follicle) कहते हैं। ग्राफियन फॉलिकल में पुतल द्रव की मात्रा बढ़ती जाती है, जिससे इसका आकार भी बड़ता जाता है और वह डिम्ब ग्रन्थि की सतह पर डिम्ब के रूप में उभर आता है। लगभग 14 वें दिन इसमें

तनाव बढ़ने से यह फट जाता है। फटने से आन्तरिक भाग में स्थित डिम्ब ग्रन्थि से बाहर निकल कर पर्युदर्या गुहा (peritoneal cavity) में आ जाता है। इस प्रक्रिया को डिम्बोत्सर्जन (ovulation) कहते हैं।

यह डिम्ब डिम्बवाहिनी के कीपाकार द्वार (infundibulum) से होता हुआ डिम्बवाहिनी में प्रवेश कर जाता है। डिम्बोत्सर्जन के उपरान्त फॉलिकल को आस्तरित करने वाली कोशिकायें अन्दर की ओर वृद्धि कर के कार्पस ल्यूटियम (corpus luteum) या पीत पिण्ड (yellow body) में परिवर्तित हो जाती है। यदि कॉर्पस ल्यूटियम के निर्मित होने के बाद 14 दिनों के अन्दर निषेचन नहीं होता है, तो ये विघटित (नष्ट) हो जाती है। और इसके स्थान पर तन्तुमय ऊतक का एक पिण्ड बन जाता है, जिसे कॉर्पस एल्बिकन्स (corpus albicans) कहा जाता है। इसके तुरन्त बाद प्रायः ऋतुस्राव (menstruation) होता है। यदि निशेषण होता है तो corpus lutium गर्भावस्था के प्रथम 2 से 3 माह तक सक्रिय रहती है। इसके पश्चात यह विघटित होकर प्लेसेन्टा का रूप ले लेती है।

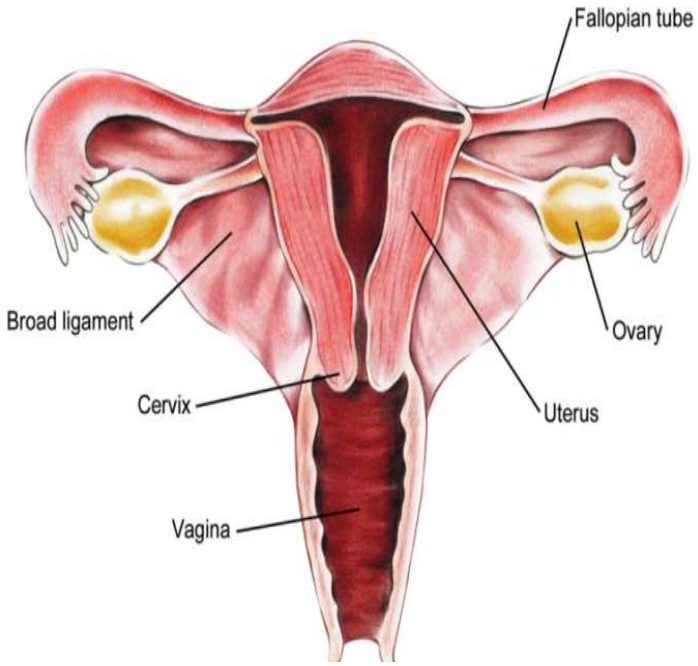

डिम्ब ग्रन्थि के हॉर्मोन एवं उनके कार्य- वृषण की भांति ही डिम्ब ग्रन्थि के अन्तःस्रावी भाग से तीन हॉर्मोनों का स्राव होता है, जिनका वर्णन निम्नवत् है -

a. ईस्ट्रोजन (Estrogen) - ये स्टेरॉयड हॉर्मोन का समूह होता है। यह डिम्बोत्सर्जन से पहले विकासात्मक फॉलिकल के थीकाइन्टर्ना (Theca interna) द्वारा स्रावित होता है और

डिम्बोत्सर्जन के बाद Theca lutin cell द्वारा स्रावित होता है। यह गर्भवती महिलाओं में placenta के द्वारा भी स्रावित होता है।

- यह स्त्री जनन अंग जैसे फेलोपीन ट्यूब, यूट्रस, वेजाइना की वृद्धि और सामान्य कार्यक्षमता के लिये उत्तरदायी है।
- स्त्री द्वितीयक लक्षणों (Female secondary sexual characters) जैसे स्तनों का विकास, पेल्विक क्षेत्र का विकास, प्यूबिक बालों की वृद्धि, मासिक धर्म की शुरूआत आदि को नियन्त्रित करता है।
- सहवास उद्दीपन के लिये उत्तरदायी है।

b. **प्रोजेस्ट्रॉन** (Progestrone) -यह कॉर्पस ल्यूटियम द्वारा स्रावित होने वाला हॉर्मोन है।

- यह गर्भावस्था के दौरान डिम्बोत्सर्जन की क्रिया पर अंकुश रखता है ताकि गर्भधारण की प्रक्रिया में कोई बाधा उत्पन्न न हो।
- Uterine wall में foetus को अवस्थित करता है।
- Placenta formation को सहयोग करके आगे बढ़ाता है।
- गर्भ में foetus के विकास के लिये उत्तरदायी होता है।
- गर्भावस्था के दौरान दुग्ध ग्रन्थियों के विकास के लिये उत्तरदायी है।
- गर्भाशय (uterus) के संकुचन को अवरूद्ध करता है ताकि गर्भस्थ शिशु पूरे विकास को प्राप्त करे अर्थात पूरी तरह निर्भाध रूप से विकसित हो सके।

c. **रिलैक्सिन हॉर्मोन** (Relaxing Hormone) - यह हॉर्मोन गर्भाधान के अन्त में कॉर्पस ल्यूटियम द्वारा स्रावित होता है। इसका कार्य पेल्विक लिगामेंट को शिथिलता प्रदान करना है ताकि प्रसव ठीक से हो सके।

9.9 सारांश:

प्रस्तुत इकाई में आपने शरीर क्रिया विज्ञान के प्रमुख संस्थान-अन्तःस्रावी संस्थान के प्रमुख ग्रन्थियों के बारे में जाना। आपने जाना कि अंत:स्रावी ग्रन्थियों में कोई नलिका नही होती। ये

रासायनिक पदार्थ स्रावित करती हैं जिन्हें हार्मोंस कहा जाता है। ये हार्मोंन जीवों और उनके विकास की गतिविधियों में समन्वय स्थापित करने में मदद करते हैं ।आपने जाना कि-

- पीयूष ग्रन्थि के अग्र खण्ड से 7 विशिष्ट हॉर्मोनों का स्रावन होता है जो कि शरीर और मन दोनों को प्रभावित करते हैं। अग्र खण्ड वृद्धि दर को बढ़ाता है और परिपक्वता की स्थिति निर्माण के बाद वृद्धि को बनाए रखता है।
- पश्च खण्ड से प्रजनन संस्थान को प्रभावित करने वाले हॉर्मोन एवम साम्यावस्था बनाने वाला विशिष्ट हॉर्मोन वैसोप्रेसीन का स्रावण होता है।
- एड्रीनल ग्रन्थि के दोनों खण्डों से महत्वपूर्ण हॉर्मोनों का स्रवण होता है।
- थाइरॉइड ग्रन्थि एवं पैराथाइरॉइड ग्रन्थि उपापचय को प्रमुखता से प्रभावित करते हैं।
- यौन ग्रन्थियां पुरूष सैक्स हॉर्मोन एवं स्त्री सैक्स हॉर्मोनों का स्रावण करके शरीर में महत्वपूर्ण स्थितियों के लिये तैयारी, क्रिया एवं शिथिलता प्रदान करते हैं।

9. 10 शब्दावली:

- श्वास प्रणाल - श्वास प्रणाल या श्वास नली स्वरयंत्र के नीचे से प्रारम्भ होकर फेफड़ों के शीर्ष तक पहुंचने वाली नहली होती है।
- स्वर यंत्र - उपस्थित की बनी संरचना जो स्वर को उत्पत्ति करती है।
- स्टोरॉइड - यह एक प्रकार के रासायनिक कम्पाउण्ड है जो कि विशिष्ट शारीरिक अन्तःक्रियाओं के लिऐ उत्तरदायी होते हैं जैसे- सैक्स हॉर्मोन

9. 11 अभ्यास प्रश्न:

रिक्त स्थानों की पूर्ति-

- पीयूष ग्रन्थि के अग्र खण्ड को .....तथा पश्च खण्ड को.....भी कहते हैं।

- .....हॉर्मोन गर्भवती महिलाओं में पिगमेन्टेशन वृद्धि का कारण बनता है।
- एड्रिनोकोर्टिकोट्रोपिक हॉर्मोन के अधिक स्रावण से .....रोग हो जाता है।
- .....हॉर्मोन वअनसंजपवद में सहायता करता है।
- अधिवृक्क ग्रन्थि के बाहरी क्षेत्र को .....आंतरिक क्षेत्र को .....कहा जाता है।
- मिनरेलोकॉर्टिकॉयड के अन्तर्गत.....व..... हॉर्मोन समाहित होते हैं।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

- एडिनोहाइपोफाइसिस, न्यूरोहाइपोफाइसिस
- मेलेनोसाइट उद्दीपक हॉर्मोन
- कुशिंग
- ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन
- एड्रीनल कॉर्टेक्स, एड्रीनल मैड्यूला
- एल्डोस्टेरॉन, डिहाइड्रोस्टेरॉन

9.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1- मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, प्रा0 अनन्त प्रकाश गुप्ता (2010), सुमित प्रकाशन (आगरा)

2- Principles of Anatomy & Phisiology, Geroard J. Tortora and Bryan H. Derrickson (2008), John Wiley & Sons (India).

9.13 निबंधात्मक प्रश्न:

1. पीयूष ग्रन्थि के अग्रखण्ड से निकलने वाले हॉर्मोन के नाम एवं उनके कार्यों का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।
2. पीयूष ग्रन्थि के पश्च खण्ड से निकलने वाले हॉर्मोन का नाम व कार्य बताऐं।
3. एड्रीनल कॉर्ट्रेक्स से निकलने वाले हार्मोनों का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।
4. एड्रीनल मेड्यूला के हॉर्मोनों को समाझाइये।
5. थायरॉइड ग्रन्थि की संरचना एवं अधिवता व कमी से पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन करें।
6. पैराथायरॉइड ग्रन्थि की संरचना एवं कार्यो का वर्णन करें।

इकाई-10 प्रतिरक्षा तंत्र

इकाई संरचना

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 प्रतिरक्षा तंत्र के अंग -
10.3.1 लसीका की संरचना एवं कार्य
10.3.2 प्लीहा की संरचना एवं कार्य
10.3.3 थाइमस ग्रन्थि की संरचना एवं कार्य
10.3.4 यकृत ग्रन्थि की संरचना एवं कार्य
10.3.5 अस्थि मज्जा की संरचना एवं कार्य
10.4 प्रतिरक्षा तंत्र के कार्य
10.5 रोग प्रतिरोधक क्षमता के प्रकार
10.5.1 सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता
10.5.2 अर्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता
10.6 एण्टीबॉडी
10.7 एण्टीजन्स
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 अभ्यास प्रश्न
10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना:

पिछली की इकाई में आपने शरीर के महत्वपूर्ण तंत्र अन्तःस्रावी तंत्र के विषय में जानकारी प्राप्त की एवं इस तंत्र के क्रियाकलापों को समझा। अन्तःस्रावी तंत्र शरीर के सभी तंत्रों से

जुड़ा हुआ है एवं इसके हॉर्मोनों के स्राव शरीर की साम्यावस्था बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस इकाई में आप प्रतिरक्षा संस्थान के विभिन्न अंगों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

हमारा शरीर एक बहुत ही सुनियोजित तरीके से कार्य करता है।जब कि कोई बाहरी तत्व हमारे शरीर में प्रवेश करता है तो हमारे शरीर में स्थित विशेष कोशिकायें उन तत्वों को पहचान लेती हैं कि वह मित्र तत्व है अथवा शत्रु तत्व है। शत्रु कोशिकाओं से निपटने वाली कोशिकायें एवं उत्तक मिलकर अंग का निर्माण करते हैं। इस इकाई में आप प्रतिरक्षा संस्थान एवं प्रतिरक्षा प्रणाली किस प्रकार हमारे शरीर की सुरक्षा करती है उसकी आन्तरिक कार्य प्रणाली क्या है यह जानेंगे। आप जानेंगे कि किस प्रकार हमारा यह शरीर विभिन्न भक्षक कोशिकाओं जैसे न्यूट्रोफिल, मेक्रोफेज़, बेसोफिल आदि प्राकृतिक किलर कोशिकायें, सूजन, ज्वर आदि के द्वारा सहज रूप से हमारी मदद करता है एवं अर्जित प्रतिरोधक क्षमता के रूप में T-cells, B-cells हमारे शरीर को बाहरी आक्रमणों से सुरक्षा प्रदान करते हैं।

10.2 उद्देश्य:

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- प्रतिरक्षा तंत्र का आशय जानेंगे।
- लसीका व प्लीहा की संरचना एवं कार्य के विषय में जानेंगे।
- थाइमस व यकृत ग्रन्थि की संरचना एवं कार्य के विषय में जानेंगे।
- अस्थि मज्जा के कार्यों के विषय में जानेंगे।
- सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता के प्रमुख रक्षक अंगों के सम्बन्ध में जानेंगे।
- रक्त की प्रतिरक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में जानेंगे।
- अर्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता के विषय में जानेंगे।

10.3 प्रतिरक्षा तंत्र के अंग:

प्रतिरक्षा तंत्र - किसी रोग, विशेष तौर पर संक्रामक रोग के प्रति प्रतिरोधक शक्ति के होने अथवा संक्रामक रोग से बचने की क्षमता को प्रतिरक्षा कहते हैं। यह प्रतिरक्षा या इम्यूनिटी (Immunity) शरीर की एक विशिष्ट क्षमता है जिसके कारण ही हम जीवित रह पाते हैं। सम्पूर्ण

वातावरण में कई प्रकार के शत्रु एवं मित्र विषाणु घूमते रहते हैं, परन्तु कई लोगों को वे विषाणु कष्ट पहुँचाते हैं एवं कई लोगों को नहीं पहुँचाते। इसका मुख्य कारण व्यक्ति की रोग क्षमता ही है। यदि रोग क्षमता या रोग प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है तो वातावरण में व्याप्त रोग के जीवाणु या विषाणु हमें रोगी नहीं बना पाते हैं।

चिकित्सा शास्त्र की वह शाखा जिसमें रोगों के प्रति रोग क्षमता या इम्यूनिटी का अध्ययन किया जाता है, रोग क्षमता विज्ञान या इम्यूनोलॉजी (Immunology) कहलाती है। प्रतिरक्षा तंत्र के अन्तर्गत वे सभी अंग आते हैं, जो किसी न किसी रूप में शरीर की प्रतिरक्षा में सहायक होते हैं, वे अंग निम्नलिखित हैं –

- लसीका
- लसीका नोड
- प्लीहा
- थाइमस ग्रन्थि
- यकृत ग्रन्थि

आगे आप मुख्य रूप से लसीका, प्लीहा, थाइमस ग्रन्थि एवं यकृत की संरचना एवं कार्यों के विषय में अध्ययन करेंगें।

10.3.1 लसीका (Lymph)-लसीका रक्त प्लाज़्मा के समान स्वच्छ, पानी जैसा द्रव होता है, जिसका संगठन अन्तरालीय द्रव (interstitial fluid) के जैसा होता है, परन्तु इसमें प्लाज़्मा की अपेक्षा प्लाज़्मा प्रोटीन्स की मात्रा कम रहती है। ऊतकों में चयापचय के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले कुछ व्यर्थ पदार्थ - कार्बन डाई ऑक्साइड, यूरिया आदि भी इसमें मिले रहते हैं। इसमें कोशिकाओं की पतली, छिद्रमय भित्तियों में प्रवेश करने वाली श्वेत रक्त कोशिकायें जिन्हें ल्यूकोसाइट्स (Leucocytes) भी कहा जाता है, पाई जाती हैं। लसीका ग्रन्थियों में उत्पन्न

लिम्फोसाइट्स भी बड़ी लसीका वाहिकाओं में पायी जाती हैं।

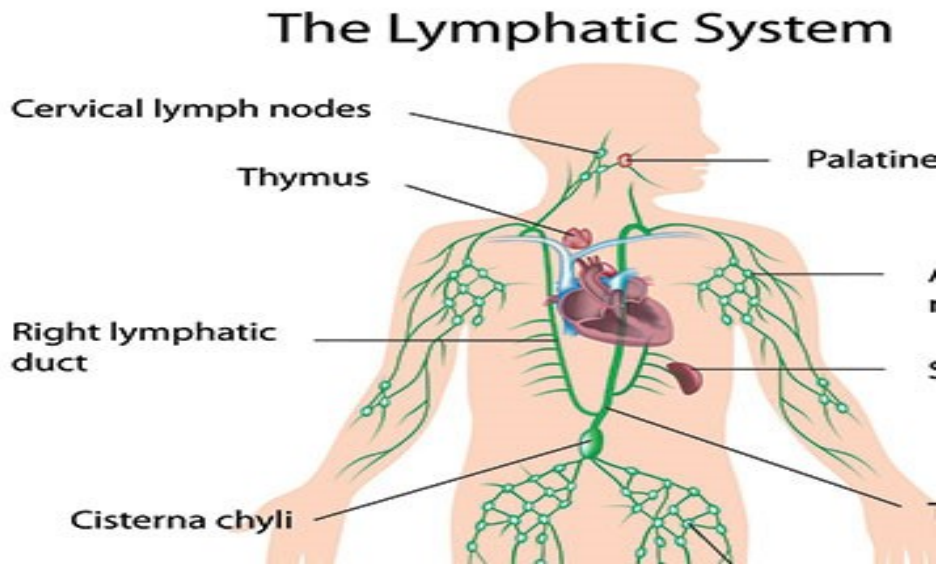

लसीका उत्पत्ति (Origin of Lymph)-अन्तरालीय द्रव (Interstitial fluid)जो कि निलयी संकुचन द्वारा उत्पन्न रक्त वाहिकाओं के भीतर रक्त के हाइड्रोस्टैटिक दाब के जल, प्रोटीन की कुछ मात्रा विशेषकर एल्ब्यूमिन एवं अन्य पदार्थ कोशिकाओं से रिसकर बाहर उत्तक कोशिकाओं के बीच के स्थान में आ जाते हैं, को कहा जाता है। यह द्रव पदार्थ जीवित ऊतकों को भिगोकर रखने का कार्य करता है तथा उनको पोषण भी प्रदान करता है। ऊतकों का पोषण करने के उपरान्त उत्पन्न व्यर्थ पदार्थों, जैसे CO_2कार्बन डाई ऑक्साइड, यूरिया आदि से युक्त अन्तरालीय द्रव का अधिक भाग रक्त कोशिकाओं की भित्तियों को पार करके उनके भीतर रिसकर पहुँच जाता है, किन्तु उसका कुछ भाग रक्त कोशिकाओं में न जाकर लसीकीय कोशिकाओं (lymphatic capillaries) में पहुँच जाता है, जो लसीका (lymph) कहलाता है और लसीकीय तन्त्र (lymphatic system) द्वारा रक्त में प्रवाहित हो जाता है।

लसीकीय कोशिकायें एवं अन्य वाहिकायें (Lymphatic Capillaries and other vessels)

लसीकीय कोशिकायें लाल रक्त कणिकाओं, श्वेत रक्त नली कणिकाओं एवं प्लेटलेट्स को अपनी धाराओं में बहाने वाली रक्त कोशिकाओं के लगभग समान संरचना वाली कोशिकायें होती हैं। रक्त कोशिकाओं के समान ये भी एण्डोथीलियमी कोशिकाओं की एक परत की बनी

होती है। लसीय कोशिकाओं की परत रक्त कोशिकाओं की तुलना में अधिक पारगम्य होती हैं। इस पारगम्यता के कारण ही अन्तरालीय द्रव के घटकों का यह अवशोषण कर लेती है और श्वेत रक्त कोशिकायें भित्तियों से बाहर निकल जाती हैं। लसीकीय कोशिकायें ऊतकों की कोशिकाओं के बीच जाल के समान फैली रहती हैं। लसीकीय कोशिकाओं में जलीय पारदर्शी द्रव निरन्तर बहता रहता है। ये बन्द सिरे वाली छोटी-छोटी नलियों के रूप में प्रायः सभी अंगों के अन्तरालीय अवकाशों (interstitial space) से आरम्भ होती हैं। ये रक्त कोशिकाओं की अपेक्षा चौड़ी अधिक होती हैं। केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (Central Nervous System) एवं कार्निया में इनका अभाव रहता है।

संरचना के सम्बन्ध में निम्न तथ्य सामने आये हैं -

1. ये रक्त कोशिकाओं से मिलती जुलती संरचना के होते हैं।
2. इनकी दीवारें अधिक पारगम्य होती हैं।
3. ये अधिक चौड़ी कोशिकायें होती हैं।
4. केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र एवं कार्निया में नहीं पाई जाती हैं।

दुग्धवाहिकायें

छोटी आंत की आन्तरिक सतह पर स्थित अंकुरों (villi) में विशेष प्रकार की लसीकीय कोशिकायें पायी जाती हैं, जिन्हें ''दुग्ध वाहिकायें'' या लैक्टीयल्स (lacteals) कहा जाता है। ये कोशिकायें छोटी आंत से वसा को अवशोषित करती हें तथा उसके पश्चात रक्त में पहुँचा देती हैं। रक्त से यह सम्पूर्ण शरीर में वितरित हो जाती है। लैक्टीयल्स को 'काइल' (chyle) भी कहा जाता है और यह लसीका वसा की उपस्थिति के कारण दूध के समान श्वेत हो जाती है।

लिम्फेटिक्स

लसीकीय वाहिकायें या लिम्फेटिक्स कई लसीकीय कोशिकाओं के आपस में मिलकर बड़ी संचयी वाहिका के बनाने से बनती हैं। ये संचयी वाहिका जो कि लिम्फेटिक्स कहलाती हैं, शिराओं के समान ही होती हैं। इसकी भित्तियां शिराओं की अपेक्षा पतली होती हैं इनमें शिराओं की अपेक्षा अधिक संख्या में कपाट (valve) होते हैं जो लसीका द्रव्य केो पीछे जाने से रोकते हैं। लसीकीय वाहिकायें प्रायः रक्त वाहिकाओं के समानान्तर रहने वाले संयोगी ऊतकमें पायी जाती है। शरीर के भीतर ये superficial और deep दो स्तरों में पाये जाते हैं। ये लिम्फ नोड्स में से होकर गुजरते हैं। त्वचा एवं अवत्वचीय ऊतकों में superficial लसीकीय वाहिकायें

superficial शिराओं के साथ-साथ तथा deep वाहिकायें, deep शिराओं एवं धमनियों के साथ-साथ चलती हैं।

लसीकीय वाहिकायें या लिम्फेटिक्स एक दूसरे से जुड़कर दो बड़ी नलिकायें (ducts) दायीं लसीकीय नलिका एवं वक्षीय नलिका बनाती हैं, जो अपने-अपने लसीका को हृदय के ऊपर स्थित सबक्लेवियन शिराओं में उड़ेल देती हैं।

संक्षेप में -

1. लसीकीय वाहिकायें कई लसीकीय कोशिकाओं के संचयन से बनती हैं।
2. इनकी भित्तियाँ शिराओं की अपेक्षा पतली होती हैं।
3. कपाटों की संख्या अधिक होती हैं।
4. उपरिस्थ (superficial) और गहन (deep) दो प्रकार से अवस्थित होती हैं।
5. गहन वाहिकायें गहन शिराओं के साथ एवं उपरिस्थ वाहिकायें उपरिस्थ शिराओं के साथ-साथ बहती हैं।

लसीला परिसंचरण (Circulation of Lymph)

समस्त लसीका वाहिकायें अपने भीतर उपस्थित लसीका द्रव को आगे धकेलने के लिये शरीर की अन्य संस्थानों से उत्पन्न दबाव एवं गतियों का सहारा लेती हैं। लसीकीय वाहिकाओं की रचना रक्त शिराओं के समान होती हैं तथा इनकी भित्तियाँ बहुत पतली उपकला की बनी होती हैं। शिराओं की तरह उनमें थोड़ी-थोड़ी दूरी पर बहुत से अर्द्धचन्द्राकार कपाट (valve) होते हैं। इन कपाटों का कार्य लसीकीय द्रव को पीछे न जाने देना होता है। ये कपाट इस तरह व्यवस्थित होते हैं कि लसीका पीछे नहीं जा पाती हैं। लसीकीय द्रव को आगे धकेलने के लिये रक्त परिसंचरण संस्थान की तरह कोई पम्प नहीं होता बल्कि बड़ी लसीकीय वाहिकाओं की भित्तियों में विद्यमान वृत्ताकार एवं लम्बवत् चिकनी पेशियों की गति से लसीका वाहिकाओं में आगे की ओर बढ़ती है।

लसीकीय वाहिकाओं का लसीका, उतकीय तरल का उत्पादन बढ़ने से, श्वसन तंत्र की पेशियों तथा शरीर की अन्य पेशियों की गति से उत्पन्न दबाव से आगे बढ़ता है, एवं शरीर के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में पहुँचता है। सभी लसीका वाहिकायें वक्षीय-गुहा (thoracic cavity) की ओर पहुँचती है। दायीं नलिका सिर, चेहरे और गर्दन के दाहिने भाग, दाहिनी भुजा, दाहिने वक्ष क्षेत्र और दाहिने फेफड़े, हृदय के दाहिने भाग तथा यकृत के ऊपरी भाग की लसीकीय वाहिकाओं

(लिम्फेटिक्स) द्वारा संचित लसीका को दायीं सबक्लेविअन शिरा (right subclavian vein) में पहुँचाती हैं।

वक्षीय नलिका (thoracic duct) दायीं लसीकीय नलिका की अपेक्षा बड़ी और मोटी होती है, जो उदर के भीतर, डायाफ्राम के नीचे एक विस्फारित भाग के रूप में आरम्भ होती है, जिसे सिस्टर्ना काईली (Cisterna Chyli) कहते हैं। यहाँ से यह नलिका डायाफ्राम के महाधमनी - छिद्र से होकर ऊपर की ओर हृदय के पीछे स्थित मीडियास्टाइनम में होती हुई गर्दन के आधार में बायीं ओर पहुँचती हैं। यहाँ पर यह सिर और गर्दन से आने वाली बायें जगुलर शिरा के मुख्य भाग, बायीं ऊपरी भुजा से आने वाली बायीं सबक्लेवियन शिरा के मुख्य भाग तथा वक्ष एवं इससे सम्बन्धित भागों से आने वाली अन्य लसीकीय वाहिकाओं से जुड़ती है। अन्ततः वक्षीय नलिका बायीं सबक्लेवियन शिरा में खुलती है और लसीका को रक्त में पहुँचा देती है। इस प्रकार लसीकीय नलिकायें दायीं और बायीं सबक्लेवियन शिराओं में खुलकर निरन्तर रक्त प्रवाह में लसीका को मिलाती रहती हैं।

लसीका पर्व (Lymph Nodes)

लसीका पर्व ऊतकीय पिण्ड हैं जो लसीकीय वाहिकाओं के मार्ग में एक धागे में पिरोए हुये मनके के समान सेम के बीज की आकृति (1 से 25 मि0मी0 लम्बे) के होते हैं। लसीका पर्व (lymph nodes) मुख्यतः गर्दन, बगल, छाती, पेट और जाँघों के बीच में अधिक संख्या में तथा कोहनी एवं घुटनों के जोड़ के पीछे कम संख्या में पाये जाते हैं। उपरिस्थ पर्व (superficial nodes) त्वचा के समीप गर्दन, बगल (कारव) एवं उरूसन्धियों में अवस्थित रहते हैं तथा गहन नोड्स उरुसन्धि क्षेत्र के भीतर गहराई में, लम्बर कशेरुका (lumbar vertibra)के समीप फेफड़ों के आधार पर, छोटी आँतों के आसपास के ऊतकों में एवं यकृत में अवस्थित रहते हैं। अधिकांश लसीका रक्त प्रवाह में वापस पहुँचने के लिये कम से कम एक लिम्फ नोड से होकर गुजरता है।

संरचना-लिम्फ पर्व चारों ओर से तन्तुमय संयोगी ऊतक के एक कैप्सूल से आच्छादित होती है। कैप्सूल से लिम्फ नोड के केन्द्र की ओर संयोगी ऊतक के प्रवर्ध जिन्हें तन्तुबन्ध (trabeculae) कहा जाता है, अन्दर की ओर निकले होते हैं, जिससे पर्व कई भागों में विभाजित हो जाता है। प्रत्येक भाग का बाह्य भाग लिम्फ पर्व का कॉर्टेक्स (cortex) भाग कहलाता है, जिसमें लिम्फोसाइट्स घने गुच्छों में विद्यमान रहती हैं, जिन्हें लिम्फ नोड्यूल्स (lymph nodules) कहते हैं। प्रत्येक नोड्यूल के मध्यम में जर्मिनल केन्द्र (germinal center)होता है जहाँ कोशिका विभाजन से लिम्फोसाइट्स उत्पन्न होते हैं। लिम्फ नोड्स प्रतिदिन लगभग 10

बीलियन लिम्फोसाइट्स उत्पन्न करते हैं। लिम्फ पर्व का आन्तरिक भाग मेड्यूला (medulla) कहलाता है, जिसमें लिम्फोसाइट्स की रस्सीनुमा रचनायें, मेड्यूलरी कॉर्ड्स (medullary cords) नोड्यूल से निकली रहती है, जो एक-दूसरे से लिपटकर एक ढ़ीला, स्पंजी जाल बनाती है।

प्रत्येक लिम्फ पर्व में लसीका (लिम्फ) को आने वाली चार या पाँच अभिवाही लसीकीय वाहिकायें होती हैं जो कैप्सूल के उत्तल (convex) किनारे से होती हुई पर्व के अपेक्षाकृत कोशिका मुक्त क्षेत्र, कार्टिकल साइनस (cortical sinus) में प्रवेश करती हैं और अपने लिम्फ को त्याग देती हैं। साइनसेस से होकर लिम्फ धीरे-धीरे छनता (filter) है तथा अपवाही लसीका वाहिकायें (efferent lymph vessels) कैप्सूल की अवतल (concave) किनारी, जिसे हाइलम (Hilum) कहते हैं, से होती हुई लसीका (लिम्फ) को लेकर के लसीकीय नलिकाओं में पहुँचती हैं।

लसीका पर्व के कार्य (Functions of Lymph Nodes)

1. लसीका पर्व अथवा लिम्फ नोड्स छलनी (filter) का कार्य करते हैं। इन नोड्स के द्वारा लसीका छन जाती है जिससे ये बाह्य हानिकारक पदार्थ एवं रोग को उत्पन्न करने वाले जीवाणु (microorganism) आदि को रोक लेती हैं।
2. लिम्फ नोड्स में लसीका कोशिकाओं (लिम्फोसाइट्स) विशेष रूप से बी-लिम्फोसाइट्स की उत्पत्ति होती है तथा इनमें वृहत्भक्षक कोशिकायें होती हैं (macrophages) विद्यमान रहती हैं, जिनसे उत्पन्न एण्टीबॉडीज़ एवं एन्टीटॉक्सिन्स (antitoxins) द्वारा रोगोत्पादक जीवाणु आदि नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार लसीका पर्व (lymph nodes) रोगोत्पादन जीवाणु आदि को रक्त में जाने से रोक कर अथवा उन्हें नष्ट कर के संक्रमण को शरीर के अन्य भाग में फैलने से रोकते हैं।
3. ये नोड्स परिसंचरण के लिये नये लिम्फोसाइट्स का निर्माण करते हैं।

समूह लिम्फ नोड्यूल्स (Aggregated Lymph Nodules)

गुच्छों के रूप में रहने वाले ये नोड्यूल्स ''पेयर की चित्तियाँ'' या ''पेयर्स पैचेज़'' भी कहलाती हैं। समूह लिम्फ नोड्यूल्स गुच्छों के रूप में बिना कैप्सूल के टॉसिल्स, छोटी आंत एवं एपेण्डिक्स (appendix) में पाये जाते हैं। इन्हीं के समान ऊतक के गुच्छे श्वसन पथ की ब्रोन्काई के साथ पाये जाते हैं।

कार्य

ये प्लाज़्मा कोशिकाओं का निर्माण करते हैं। ये आँत में विद्यमान एन्टीजन की अनुक्रिया में अधिक मात्रा में प्रतिरक्षा हेतु एन्टीबॉडीज़ स्रावित करते हैं।

टॉन्सिल (Tonsil) टॉन्सिल अथवा गलतुण्डिकायें संयोगी ऊतक के एक कैप्सूल में बन्द लसीकाभ ऊतक के पिण्ड होते हैं। प्रतिरक्षा तंत्र के दृष्टिकोण से ये अंग अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं -

1.फेरिन्जियल टॉन्सिल (Pharyngeal Tonsil) - ये नासिका के पीछे ग्रसनी की ऊपरी पश्च भित्ति में स्थित रहते हैं।

2.पैलाटाइन टॉन्सिल (Palatine Tonsil) - ग्रसनी के दोनों ओर स्थित रहते हैं।

3.लिंग्वल टॉन्सिल (Lingual Tonsil) यह जीभ के मूल में स्थित रहते हैं।

कार्य-

1. ये शरीर पर आक्रमण करने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं को नष्ट करने में सक्षम होते हैं।
2. ये अधिकांश संक्रामक जीवाणुओं को लिम्फोसाइट्स द्वारा नष्ट कर देती हैं।
3. टॉन्सिल में उपस्थित प्लाज़्मा कोशिकायें-एण्टीबॉडी के निर्माण में सहायक होती हैं।

यद्यपि टॉन्सिल प्रायः संक्रमण की अवस्था से शरीर की रक्षा करते हैं, परन्तु कभी-कभी ये स्वयं भी संक्रमण का शिकार हो जाते हैं। ऐसे में कभी-कभी शल्य क्रिया द्वारा इन्हें निकाल भी लिया जाता है।

10.3.2 प्लीहा (Spleen)-प्लीहा लसीका ऊतक से निर्मित एक चपटी दीर्घआयताकार (oblong) बड़ी ग्रन्थि है। यह उदरीय गुहा में बायीं ओर बायें अधः पर्शुकीय क्षेत्र (left hypochondriac region) में डायाक्रॉम के नीचे (inferior) आमाशय के फण्ड्स, बायें वृक्क, पैंक्रियाज़ की पुच्छ एवं बड़ी आँत के प्लीहा बंग (splenic flexure) को स्पर्श करती हुई स्थित रहती है। इसका आकार एवं आकृति लगभग एक बन्द मुट्ठी के समान होती है। यह लगभग 12 से0मी0 लम्बी, 7 से0मी0 चौड़ी तथा 2.5 से0मी0 मोटी होती है तथा वजन में लगभग 200 ग्राम होती है। रंग गहरा बैंगनी होता है।

संरचना

यह गहरे बैंगनी रंग की संरचना वाली ग्रन्थि दो किनारों वाली जिन्हें एण्टीरियर और पास्टीरियर किनारे कहते हैं, होती है। डायाक्रॉम के नीचे वाली सतह उत्तल (convex) होती है। दूसरी सतह अवतल (concave) होती है, जो आमाशय के फण्ड्स, बायें वृक्क, पैंक्रियाज़ एवं splenic flexure के सम्पर्क में होती है। अवतल सतह पर नीचे की ओर एक हाइलम होता है जिससे होकर प्लीहा धमनी (splenic artery). तंत्रिकायें (nerves) एवं लसीका वाहिकायें

(lymph vessels) प्लीहा में प्रवेश करती है तथा प्लीहज शिरा (splenic vein) इसके बाहर की ओर निकलती है। इसकी ऊतकीय संरचना लिम्फ पर्वों के समान ही होती है जो चारों ओर से संयोगी ऊतक के एक कैप्सूल से ढकी होती है, जिससे अन्दर की ओर निकले तन्तुबन्धों (trabeculae) से प्लीहा कई भागों में विभाजित हो जाती है। इन विभक्त भागों को खण्ड या लोब्यूल्स (lobules) कहा जाता है। मेड्यूला के क्रियात्मक भाग में एक कोशिकीय पदार्थ रहता है जिसे प्लीहज-लुगदी (splenic pulp) कहा जाता है, यह लाल-सफेद दो तरह के रंगों की होती है। लाल लुगदी (red pulp) सम्पूर्ण प्लीहा में अधिक मात्रा में विद्यमान रहती है, जिसमें सफेद pulp के छोटे-छोटे द्वीप समूह बिखरे रहते हैं। सफेद लुगदी (white pulp) प्लीहण धमनी की छोटी-छोटी शाखाओं के चारों ओर लिम्फोसाइट्स के घने पिण्डों (compact masses) की बनी होती हैं। ये पिण्ड जो अन्तरालों में होते हैं, को प्लीहज पर्विकायें या स्प्लीनिक नोड्यूल्स (splenic nodules) अथवा मैल्पीघियन कॉर्प्यूसेल्स (malpighian corpuscles) कहा जाता है। लाल लुगदी के भीतर रक्त से भरे हुए शिरीय विवर (venous sinusoids) होते हैं तथा इनमें मोनोसाइट्स एवं वृहत भक्षक कोशिकायें (macrophages) विद्यमान रहती हैं। इनमें से मोनोसाइट्स रक्त प्रवाह के लिये श्वेत रक्त कोशिकाओं के निर्माण में सहायता करती हैं तथा भक्षक कोशिकायें (फैगोसाइट्स) टूटने वाली लाल रक्त कोशिकाओं का भक्षण कर के उन्हें विखण्डित कर देती हैं।

Splenic धमनी की शाखायें प्लीहा में पहुँचकर रक्त को सीधे Splenic pulp में डालती हैं। प्लीहा में कोशिकायें नहीं होती है, जिससे रक्त प्लीहा की कोशिकाओं के सीधे सम्पर्क में आता है और शिरीय विवरों (venous sinusoid) में संचित हो जाता है। यहाँ से रक्त प्लीहण शिरा की शाखाओं में चला जाता है, जिनके आपस में मिलने से प्लीहण (splenic) शिरा (vein) बनती है। यह polter vein पोल्टर शिरा (polter vein) से मिल जाती है।

प्लीहा के कार्य (Functions of the Spleen)

1. प्लीहा का मुख्य कार्य रक्त को छानना (filter) एवं भक्षक कोशिकाओं - लिम्फोसाइट्स और मोनोसाइट्स का निर्माण करना है।

2. प्लीहा में उपस्थित प्रचुर मात्रा में विद्यमान भक्षक कोशिकायें (macrophages) रक्त से क्षय (damage) या मृत लाल कोशिकाओं को एवं रक्त प्लेटलेट्स, सूक्ष्म जीवाणुओं तथा अन्य कोशिकीय विजातियों को हटाने में सहायता प्रदान करती है।

3. भक्षक कोशिकायें जीर्ण लाल रक्त कोशिकाओं (R.B.C.) के हीमोग्लोबिन के आयरन (लौह तत्व) को भी हटाती है तथा अस्थि मज्जा (bone marrow) में लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन के लिये इसे परिभ्रमण अथवा परिसंचरण में लौटा देती है। हीमोग्लोबिन (Hb) के टूटने से बिलिरूबिन पिगमेण्ट का उत्पादन होता है, जो यकृत में परिसंचरित होता है।

4. प्लीहा के रक्त में विद्यमान एण्टीजन्स (antigens) लिम्फोसाइट्स के क्रियाशील बनकर कोशिकाओं में विकसित होते हैं तथा एण्टीबॉडीज़ (antibodies) का निर्माण करते हैं।

5. गर्भावस्था में गर्भस्थ भ्रूण में प्लीहा लाल रक्त कोशिकाओं का निर्माण करती है। बाद में यह ताजी बनी लाल रक्त कोशिकाओं एवं प्लेटलेट्स को संचयित (store) रखती है तथा आवश्यकता पड़ने पर इन्हें रक्त प्रवाह में छोड़ती है।

6. स्प्लीन रक्त के भण्डार का काम करती है।

10.3.3 थाइमस ग्रन्थि (Thymus Gland)- थाइमस ग्रन्थि वक्षीय गुहा (thorasic cavity) में स्टर्नम के पीछे श्वास प्रणाल (trachea) के विभाजन के स्तर पर स्थित लसिकाभ ऊतक से निर्मित गुलाबी-भूरे रंग की एक नलिकाविहीन ग्रन्थि है। यह हृदय एवं इसकी मुख्य रक्त वाहिकाओं के ऊपर विद्यमान रहती है। इसमें दो खण्ड पाये जाते हैं जो दायें खण्ड एवं बायें खण्ड के रूप में संयोगी ऊतक द्वारा जुड़े होते हैं। ये खण्ड जो थाइमस ग्रन्थि को बनाते हैं, संयोजी ऊतक के एक कैप्सूल में बन्द होते हैं। प्रत्येक खण्ड तन्तुबन्धों (trabeculae) द्वारा छोटे-छोटे खण्डों (lobules) में विभाजित रहता है। प्रत्येक खण्ड (lobule) में बाहर की ओर कॉर्टेक्स (cortex) तथा अन्दर केन्द्र में मेड्यूला (medulla) होता है। कॉर्टेक्स (cortex) भाग में अनेकों छोटे-छोटे लिम्फोसाइट्स जिन्हें सामान्यतः थ्रॉम्बोसाइट्स कहा जाता है, रहते हैं। जिनमें से अधिकांश लिम्फोसाइट्स थाइमस ग्रन्थि से निकलने के पूर्व विघटित (degenerate) हो जाते हैं।

थाइमस ग्रन्थि के अन्दर केवल कोशिकायें (capillaries) होती हैं। मेड्यूला में इयोसिनोफिलिक कॉर्पस्किल्स (eosinophilic corpuscles) जिन्हें थाइमिक कॉर्पस्किल्स (thymic corpuscles) या हैसल्स कार्पस्किल्स कहा जाता है, पाई जाती है। इन कार्पस्किल्स या कोशिकाओं के केन्द्र पर काचाभ (hyline) पदार्थ रहता है, जो चारों ओर से चपटी एपिथीलियल कोशिकाओं के साथ संयोजी ऊत्तक के घेरे से घिरा रहता है।

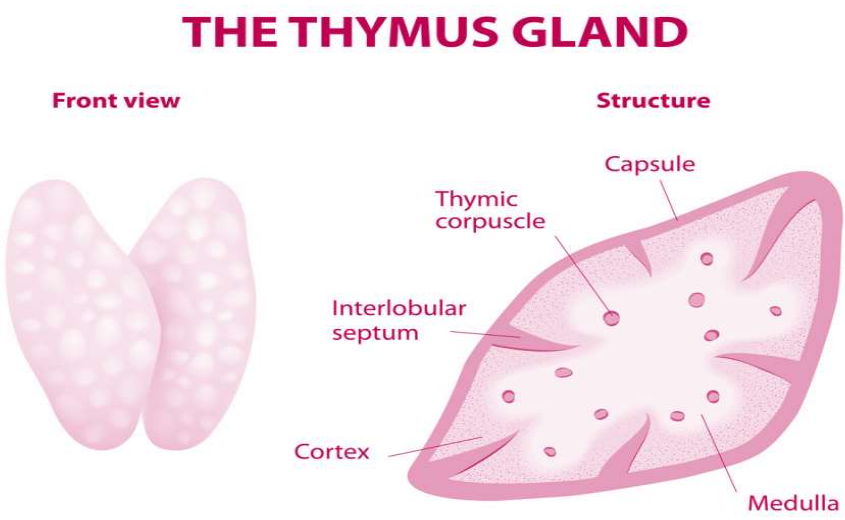

कार्य (Functions)-

- भ्रूणावस्था में थाइमस ग्रन्थि लिम्फोसाइट्स का निर्माण करती है तथा यह एण्टीबॉडीज़ बनाने में सहायता प्रदान करती है। जन्म के समय यह ग्रन्थि बड़ी होती है लगभग 12 से 15 ग्राम तक पायी गई है। युवावस्था में यह मात्र सूत्र के समान रह जाती है।
- नवजात शिशु में यह ग्रन्थि एण्टीबॉडीज़ बनाती है तथा रोग क्षमता या इम्यूनिटी संस्थान के प्रारम्भिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह मुख्यतः टी-कोशिकाओं का निर्माण करती है जोकि इम्यूनिटी (रोगक्षमता) बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- थाइमस ग्रन्थि से स्रावित स्राव का प्रभाव जननेन्द्रियों के विकास तथा यौवनारम्भ पर पड़ता है। यह जननेन्द्रियों के स्राव को यौवनारम्भ तक नियंत्रित रखती है। यह अस्थियों के विकास पर भी नियन्त्रण रखती है।

10.3.4 यकृत संरचना एवं कार्य

ग्लीसन्स कैप्सूल के भीतर संयोगी ऊतक का बना हुआ यह अंग होता है। यकृत उदर की अग्रमध्य भित्ति से सटा हुआ रहता है। यह फैल्सीफॉर्म लिगामेण्ट (falciform ligament)के द्वारा दो खण्डों में विभाजित रहता है। यकृत के दोनों खण्ड अलग-अलग आकार के होते हैं जिसमें दाहिना खण्ड बायें खण्ड की तुलना में छः गुना तक बड़ा पाया जा सकता है। यह दाहिना खण्ड दाहिने वृक्क एवं बड़ी आँत के दाहिने कोल्कि (हिपेटिक) प्लेक्सर के ऊपर स्थित रहता हैं यकृत

का बायां खण्ड जो कि छोटा है आमाशय के ऊपरी भाग में स्थित रहता है। यकृत का दायां खण्ड पीछे (ventral) सतह पर और दो खण्डों में विभाजित रहता है। एक ऊपर का आयताकार खण्ड (quadrate lobe) तथा दूसरा नीचे का पुच्छल खण्ड (caudate lobes) होता है।आयताकार (quadrate lobe) एवं पुच्छल खण्डों (caudate lobes)के बीच एक अनुप्रस्थ विदर अथवा दरार होती है, जिसे पोर्टा हिपेटिस (Porta hepatis) या यकृत द्वार (liver door) कहते हैं। इसमें से होकर यकृत में कई वाहिकायें, तंत्रिकायें, लसीका वाहिनियां एवं वाहिकाओं का आना जाना होता है। इन वाहिकाओं, तंत्रिकाओं, लसिका वाहिनियाओं का वर्णन सूक्ष्म रूप से इस प्रकार है -

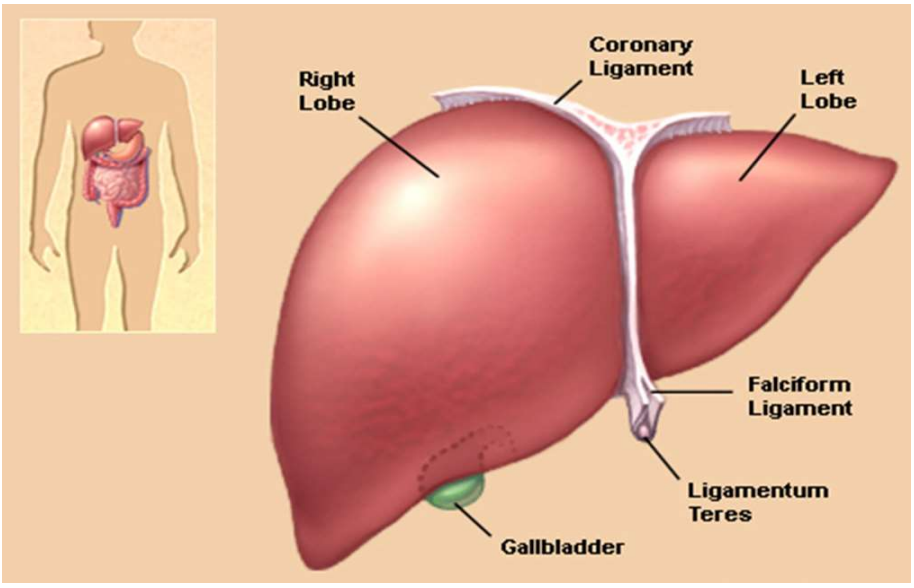

1. **यकृत धमनी (Hepatic Artery)** यह धमनी यकृत में शुद्ध रक्त पहुँचाती है। यकृत में पहुँचने वाले रक्त का लगभग 20 प्रतिशत इसी के द्वारा पहुँचता है।

2. **पोर्टल शिरा (Portal Vein)**

यह आमाशय, छोटी एवं बड़ी आँत, अग्नाशय और प्लीहा से रक्त लाकर यकृत में पहुँचाती है। शेष 80 प्रतिशत रक्त इसी के द्वारा यकृत में पहुँचता है। इस रक्त में छोटी आँत द्वारा अवशोषित पोषक तत्व विद्यमान रहते हैं।

3. **यकृत शिरा (Hepatic Vein)**

यह यकृत में आये हुए रक्त को रक्त महाशिरा में पहुँचाने का कार्य करती है।

4. **यकृत वाहिकायें (Hepatic ducts)**

पित्त वाहिकायें जिन्हें सूक्ष्म पित्त नलिकायें (bile canaliculi) कहा जाता है, पित्त केशिकायें (bile capillaries) जो यकृत की कोशिकाओं से पित्त को एकत्रित करने के बाद संयोजित होती है, से निर्मित होती है। यकृत द्वारा स्रावित पित्त सूक्ष्म पित्त नलिकाओं में पहुँचता है। यह पित्त यहाँ से दाहिनी एवं बायीं यकृत वाहिकाओं (right & left hepatic ducts) में पहुँचता है। ये दोनों यकृत वाहिकायें पित्ताशय (gall bladder) से निकली पित्ताशयी या सिस्टिक वाहिका (cystic duct) से एक बिन्दु पर मिलकर उभय पित्त वाहिका (common bile duct) बनाती है। कॉमन बाइल डक्ट मुख्य अग्नाशय वाहिका (pancreatic duct) से संयुक्त हो जाती है और फिर ग्रहणी (पक्ताशय) के दूसरे भाग में खुलती है।

यकृत के खण्ड बहुत छोटे-छोटे खण्डकों (lobules) से मिलकर बने होते हैं, जो पंचकोणीय या षट्कोणीय आकृति के होते हैं। अधिकांश खण्डक लगभग 1 मि0मी0 डायामीटर के होते हैं और उनमें केन्द्रीय शिरा f'kjk (central vein) रहती है। खण्डकों के भीतर यकृत कोशिकायें (hepatocytes) एक कोशिका मोटाई वाली परतों में व्यवस्थित रहती हैं तथा केन्द्री शिरा से खण्डक के किनारे (edge) की ओर फैलती हैं। प्रत्येक खण्डक के कोने (corner) में एक प्रतिहारी क्षेत्र (portal area) होता है, जो पोर्टल शिरा, यकृत धमनी, पित्त वाहक एवं तंत्रिका की शाखाओं से मिलकर बना होता है।

यकृत कोशिकाओं की पंक्तियों के बीच में शिरानालाभ (sinusoids) विद्यमान रहते हैं, जो पोर्टल शिरा एवं यकृत धमनी की शाखाओं से रक्त का परिवहन करते हैं। प्रतिहारी क्षेत्र की धमनी एवं शिरा से रक्त शिरानालाभ को बहता है। तथा फिर केन्द्रीय शिरा में पहुँचता है। वहाँ से यह खण्डक से यकृत शिरा में पहुँचता है। शिरानालाभ की भित्तियाँ एण्डोथीलियल कोशिकाओं से आस्तरित रहती है। इन आस्तरित कोशिकाओं से कैमोसाइटिस स्टीलेट रेटिक्युलोएण्डोथीलियल कोशिकायें संलग्न रहती हैं, जो यकृत में होकर गुजरने वाली जीर्ण-क्षीर्ण लाल एवं श्वेत रक्त कोशाओं, सूक्ष्म जीवाणुओं एवं बाह्य पदार्थों को पचा लेता है। इस दृष्टि से यह प्रतिरक्षा तंत्र का एक मुख्य अंगक है।

अभी आपने यकृत की स्थूल एवं सूक्ष्म संरचना के विषय में पढ़ा। अब आप यकृत के कार्यों के विषय में पढ़ेंगे और जानेंगे कि यह यकृत सुरक्षात्मक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण अंगक है। यह मेटाबोलिक, संग्राहक एवं स्रावी दृष्टिकोण से सभी तरह से महत्वपूर्ण कार्य करता है।

चयापचयी कार्य (Metabolic Functions)

1. कार्बनिक यौगिकों से एमीनो एसिड को अलग करता है।
2. ऊतक कोशिकाओं से यूरिया का निर्माण एवं प्रोटीन के मेटाबोलिज़्म से उत्पन्न एमीनो एसिड को यूरिया में बदलता है।
3. वसीय अम्लों का ऑक्सीकरण करता है।
4. प्रतिरक्षा तंत्र में सम्मिलित यह अंग रक्त की मृत लाल कोशिकाओं को रक्त से अलग कर लेता है एवं हिमेटिन नामक लौह तत्व को संचित कर लेता है।
5. औषधियों एवं विषैले पदार्थों का निर्विषीकरण (detoxification) कर शरीर की रक्षा करता है।
6. एण्टीबॉडीज़ एवं एण्टीटॉक्सिन्स का निर्माण करता है।
7. यह शरीर का तापक्रम बनाये रखता है जो कि उपापचय अथवा चयापचय के लिये अति आवश्यक तथ्य है।

संग्रही कार्य (Storage Functions)

1. यह ग्लूकोज़ को ग्लाइकोजन के रूप में संग्रहित रखता है एवं आवश्यकतानुसार पुनः ग्लूकोज़ में भी परिवर्तित करने की क्षमता रखता है।
2. विटामिन A, D, E, K जो कि वसा में घुलनशील हैं, को संचित रखता है।
3. प्रोटीन के सरल उत्पाद एमीनो एसिड को संचित रखता है।
4. विटामिन B_{12} जो कि एण्टी एनिमिक विटामिन हैं, को संचित रखता है।

स्रावी कार्य (Secretory Functions)

1. पित्त का स्रावण करता है जिससे वसा का पाचन एवं अवशोषण करने में मदद करता है।
2. पित्त का स्रावण रासायनिक, हॉर्मोनल अथवा तंत्रिका तंत्र की क्रियाशीलता से परिवर्तित भी हो जाता है, परन्तु पित्त पाचन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण द्रव है। पाचन ठीक होने पर ही शरीर समय पर एवं सही मात्रा में आवश्यक पोषक प्राप्त कर सुचारू रूप से अपना कार्य कर पायेगा।

10.3.5 अस्थि मज्जा (Bone Marrow)-.अस्थि मज्जा Bone Marrow) अस्थियों में पाया जाने वाला एक विशेष लचीला व वसा युक्त ऊतक है। यह शरीर की कुछ बड़ी अस्थियों में पाया जाता है। वयस्कों में पूरे शरीर भार का लगभग चार प्रतिशत भार अस्थि मज्जा का होता है।

इसका वजन लगभग 2.6 कि.ग्रा. तक होता है। अस्थित मज्जा लसीका तंत्र का महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि यह लसीका (lymph) के प्रवाह को विपरीत दिशा में प्रवाहित होने से रोकता है।

अस्थि मज्जा प्रतिरक्षा तंत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि अस्थि मज्जा में ही रक्त कोशिकाओं का प्रादुर्भाव व विकास होता है।

यह मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं -

1. लाल मज्जा
2. पीली मज्जा

1. लाल (Red Marrow)

लाल मज्जा में मुख्यतः हीमेटोपोयटिक ऊतक (Hematopoietic Tissue) होते हैं। लाल मज्जा में लाल रक्त कोशिकायें, अधिकतर श्वेत रक्त कोशिकायें एवं प्लेटलेट्स उत्पन्न होती हैं। जन्म के समय सम्पूर्ण मज्जा लाल ही होती हैं। धीरे-धीरे समय के साथ व उम्र बढ़ने के साथ इसमें से कुछ पीली मज्जा में बदल जाती हैं। लाल मज्जा मुख्यतः फ्लैट अस्थियों (Flat Bones) जैसे कूल्हे की हड्डी (hip bone), छाती की हड्डी (breast bone), कशेरुका (vertebrae), (shoulder blades) में पायी जाती हैं। लम्बी व बड़ी हड्डियों जैसे ऊर्वस्थि (femur) और प्रगण्डिका (humerus) के एपीफीसल (epiphyseal) अंत में स्थित स्पोंजी (spongy) तत्व में भी लाल मज्जा पाई जाती है। लाल मज्जा में बहुत सी रक्त वाहिकायें (blood vessels) और कोशिकायें (capillaries)पाई जाती हैं।

2. **पीली मज्जा (Yellow Marrow)**

पीली मज्जा में मुख्यतः वसा कोशिकायें होती हैं। इसमें श्वेत रक्त कोशिकाओं का एक भाग उत्पन्न होता है। पीली मज्जा लम्बी व बड़ी हड्डियों के मध्य भाग के खोखले हिस्से में पायी जाती है। बहुत अधिक खून बहने की स्थिति में आवश्यकता पड़ने पर पीली मज्जा लाल मज्जा में परिवर्तित हो सकती है ताकि नई रक्त कोशिकाओं का निर्माण हो सके।

स्ट्रोमा (Stroma)

अस्थि मज्जा का स्ट्रोमा (stroma) रक्त कोशिकाओं के निर्माण की प्रक्रिया में सीधे शामिल नहीं होता। पीली मज्जा अधिकतर इस स्ट्रोमा का हिस्सा होती है। कुछ कोशिकायें जैसे फाइब्रोब्लास्ट (Fibroblasts), मैक्रोफेज़ (macrophages), एडिपोसाइट (adipocytes), ऑस्टियोब्लास्ट (osteoblasts) आदि कोशिकायें अस्थि मज्जा स्ट्रोमा का गठन करती हैं।

इन कोशिकाओं में मेक्रोफेज़ कोशिकायें लाल रक्त कोशिकाओं की उत्पत्ति में सहायक होती हैं। यह हीमोग्लोबिन (Haemoglobin) उत्पादन के लिये लौह पहुँचाती हैं।

स्टैम कोशिकायें (Stem Cells)

स्टेम कोशिकायें अस्थि मज्जा के स्ट्रोमा में पाई जाती हैं। इनको मज्जा स्ट्रोमल कोशिकायें (Marrow Stromal Cells) भी कहा जाता है। यह कोशिकायें बहुत सारी दूसरी कोशिकाओं के मध्य अंतर पहचान रकती हैं। यह अस्थि मज्जा के लिये द्वारपाल का कार्य करती हैं। इन्हीं स्टेम कोशिकाओं से श्वेत रक्त कोशिकायें (leucocytes)] लाल रक्त कोशिकायें (erythrocytes) व प्लेटलेट्स (thrombocytes) उत्पन्न होती हैं, जो शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली में व परिसंचरण में सहायक होती हैं।

अपरिपक्व स्टेम कोशिकायें स्ट्रोमा में अवस्थित हो अस्वस्थ, कमजोर या क्षतिग्रस्त कोशिका का इंतजार करती हैं और जैसे ही ऐसी किसी कोशिका या कोशिकाओं का पता चलता है, यह तुरन्त उसकी कमी पूरी करने के लिए रक्त कोशिकाओं के उस प्रकार में बदल जाती है जिसकी शरीर को आवश्यकता होती है और इस प्रकार यह शरीर को स्वस्थ बनाए रखने में सहायता करती हैं।

अस्थि मज्जा अवरोध (Bone Marrow Barrier)

अस्थि मज्जा में एक अवरोध (barrier) भी पाया जाता है, जिसका कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह अवरोध अपरिपक्व कोशिकाओं को मज्जा से बाहर जाने से रोकता है। परिपक्व कोशिकाओं में ही मैम्ब्रेन प्रोटीन (membrane protein) होते हैं जो रक्त वाहिकाओं से कोशिकाओं को संलग्न कर बाहर निकालने में सहायता करते हैं।

अभी तक आपने प्रतिरक्षा प्रणाली के उन अंगों के बारे में जाना जो प्रतिरक्षा प्रणाली की मजबूत दीवार बनाते हैं। अब हम इसकी आंतरिक कार्य प्रणाली के बारे में जानेंगे कि किस तरह यह सहज रूप से हमारी मदद करता है। तथा बाहरी आक्रमणों से हम शरीर को सुरक्षा प्रदान करता है।

10.4 प्रतिरक्षा तंत्र के कार्य:

- मानव शरीर अक्सर 'युद्ध की स्थिति' में वार्णित किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि मानव शरीर लगातार ऐसे बाहरी तत्वों से लड़ता रहता है जो शरीर के लिये अहितकर हैं तथा शरीर को नुकसान पहुँचाने की कोशिश करते रहते हैं। इन बाहरी तत्वों में बैक्टीरिया

(Bacteria)] वाइरस (virus) टोक्सिन (Toxin)] फफूंद (Fungi) व परजीवी (Parasite) शामिल हैं। यह तत्व अपने उत्पन्न होने की सही परिस्थिति में शरीर पर हमला कर शरीर को कमजोर बना देते है जिसके परिणामस्वरूप शरीर सही तरह से कार्य नहीं कर पाता है। अगर प्रतिरक्षा प्रणाली न हो तो शरीर पर इन तत्वों का हमला ही हेाता रहेगा और शरीर व उसके अंग विभिन्न रोगों से ग्रस्त हो जाएगे। अतः प्रतिरक्षा प्रणाली का मुख्य कार्य शरीर में एक ऐसी सेना का निर्माण करना है जो इन बाहरी तत्वों से हमारे शरीर की रक्षा कर सकें और रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास कर सकें। यही प्रतिरक्षा प्रणाली या प्रतिरक्षा तंत्र है।

- प्रतिरक्षा प्रणाली अत्यन्त जटिल प्रणाली है। यह ऐसे लाखों बाहरी तत्वों की पहचान कर सकती है जो शरीर को नुकसान पहुँचा सकते हैं और यह ऐसे स्राव एवं कोशिकाओं का भी निर्माण कर सकती है जो इन बाहरी तत्वों को शरीर से हटाने में कारगर सिद्ध हो और शरीर व शरीर के विभिन्न अंगों की रक्षा करें।
- प्रतिरक्षा प्रणाली की सफलता का रहस्य एक व्यापक और गतिशील संचार प्रक्रिया है जिसमें लाखों कोशिकाएँ आपस में संगठित रहती हैं और एक कोशिका से दूसरों कोशिका तक संदेश भेजती रहती हैं।
- प्रतिरक्षा तंत्र की कोशिकाओं को जैसे ही किसी बाहरी तत्व के शरीर में घुसने की आहट होती है यह तुंरत ऐसे शक्तिशाली रसायनों का निर्माण करने लगती है जो कि उन तत्वों से लड़ने में सक्षम हों।
- प्रतिरक्षा तंत्र की एक महत्वपूर्ण विशिष्टता यह हैं कि यह शरीर की अपनी कोशिकाओं एवं बाहरी तत्वों के बीच भेद करने की क्षमता रखता है। अगर किसी कारण से यह क्षमता कम हो जाए तो प्रतिरक्षा तंत्र शारीरिक कोशिकाओं एवं बाहरी तत्वों के बीच विभेद नहीं पाता और अपने ही शरीर की कोशिकाओं का विनाश करने लगता है। इसे ऑटोइम्यूनिटी (autoimmunity) कहते हैं।

10.5 रोग प्रतिरोधक क्षमता के प्रकार

रोग प्रतिरोधक क्षमता के मुख्यतः दो प्रकार है जिनका वर्णन निम्न है -

10.5.1 सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता (Innate Immunity)

- सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता सूक्ष्मजीवों के प्रति स्वतः ही सुरक्षा प्रदान करती है।
- सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता जिस किसी तत्व से शरीर को क्षति पहुँच रही होती है उस पर यह तुरंत ही आक्रमण कर उसे नष्ट कर देती है।
- सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता के प्रमुख रक्षक वह अंग है जो सबसे पहले संक्रमण को शरीर में जाने से रोकते हैं।यह प्रमुख अंग इस प्रकार हैं।

1. शारीरिक सीमायें (Physical Barriers)

a. त्वचा (Skin)

त्वचा संक्रमण के लिए मुख्य रूप से बाधा का कार्य करती है

- त्वचा की मृत कोशिकाएँ जीवाणुओं को शरीर में जाने से रोकती हैं।
- त्वचा के स्वस्थ जीवाणु नुकसान पहुँचाने वाले जीवाणुओं से लड़कर उन्हें गुणा होने से रोकते हैं।
- त्वचा में स्वेद ग्रन्थि (Sweat Glands) शरीर से अम्लीय स्राव स्रावित करती हैं तथा वसा ग्रंन्थि (Sebaceous Glands) सीबम (Sebum) नामक स्राव स्रावित करती है जो गाढ़ा और तैलीय होता है। यह दोनों स्राव जीवाणुओं के विकास की दर में रूकावट उत्पन्न करते है।
- अगर त्वचा निरंतर नम रहे तो संक्रमण होने की संभावना बढ़ जाती है क्योंकि निरंतर नमी से त्वचा का अवरोध कमजोर हो जाता है और जीवाणुओं के उत्पन्न और गुणा होने की अधिक संभावना बन जाती है।
- इसी प्रकार त्वचा में चोट या कट लग जाए तो भी संक्रमण के होने की संभावना व जीवाणुओं के शरीर में प्रवेश की संभावना बहुत अधिक बढ़ जाती है।

b. फेफड़े (Lungs)

फेफड़ों के वायु मार्ग की अस्तर (lining) चिपचिपे, गाढ़े पदार्थ 'म्यूकस' (mucous) में लिपटी होती है। इस वायुमार्ग में हवा के साथ फेफड़ों के लिए नुकसानदेह पदार्थ भी आ जाते हैं,यही म्यूकस फेफड़ों की सुरक्षा करता है, श्वास प्रश्वास के समय जीवाणु, जो शरीर के लिए हानिकारक होते हैं, म्यूकस से चिपक जाते हैं तथा एक एंजाइम (enzyme)] लाइसोज़ाइम (lysozyme)] जो कि म्यूकस में पाया जाता है, इन जीवाणुओं को पचा लेता है तथा उनके अवशेषों को वायुमार्ग से बाहर फेंक देता है।

c. आँखें (Eyes)

आँखों से निकलने वाले आँसू भी जीवाणुओं के लिए अवरोध का कार्य करते हैं पहले यह जीवाणुओं को बहा देते है। दूसरा इनमें भी एंजाइम लाइसोजाइम होता हैं जो जीवाणुओं को पचा कर अवशेषों को बाहर फैंक देता है।

d. मुँह (Mouth)

हमारे मुँह में बहुत से हानिकारक जीवाणु होते हैं जो कि टूथ डिके (Tooth Decay) का कारण बनते हैं। मुँह में लार की उपस्थिति के कारण यह जीवाणु पनप नहीं पाते। लार जीवाणुओं की विनाशकारी प्रक्रिया को इस प्रकार नियंत्रित करती है -

- लार के साथ जीवाणु बह जाता है और साथ ही खाद्य कण भी बह जाते हैं जो कि जीवाणुओं का भोजन हैं।
- लार में लाइजोजाइम एन्जाइम व अन्य एंजाइम होते है जो जीवाणुओं को नष्ट करने में सहायक हैं।
- लार में बहुत सी एंटीबॉडी (Antibodies) भी पायी जाती हैं जो संक्रामक कणों की पहचान कर, उन्हें नष्ट कर देती हैं।

e. आमाशय (Stomach)

आमाशय में उच्च अम्लीय वातावरण के कारण जीवाणु स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं। अगर कोई जीवाणु आमाशय में चला ही गया, तो वह किसी अन्य पदार्थ की तरह ही एन्जाइम्स द्वारा पचा लिया जाता है।

f. मूत्र मार्ग (Urinary Tract)

स्वेद की भांति मूत्र भी अम्लीय होता है तथा जीवाणुओं को शरीर से बाहर निकालने में सहायक होता है। यह मूत्र मार्गीय संक्रमण (urinary infection को होने से रोकता है। अगर संक्रामक जीवाणु उपरोक्त अंगों की सीमा पार कर शरीर में घुस जाते हैं, तो अन्य प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया होने लगती है। रक्त में उपस्थित श्वेत रक्त कण (white blood cells or leukocytes) जीवाणुओं पर आक्रमण कर शरीर की रक्षा करते हैं। रक्त में होने वाली प्रतिक्रयायें निम्न हैं –

रक्त की प्रतिरक्षा प्रक्रिया (Immune Responses in Blood)

a. कॉम्प्लीमेन्ट कैसकेड (Complement Cascade)

यह 20 प्रोटीन द्वारा निर्मित एक प्रणाली है। सारे कॉम्प्लीमेन्ट प्रोटीन जिगर द्वारा ही स्रावित होते हैं तथा रक्त के प्लाज़्मा प्रोटीन में भी पाये जाते हैं। यह कॉम्प्लीमेन्ट प्रोटीन कुछ ऐसे पदार्थों को पहचानने में सक्षम होते हैं जो केवल हानिकारक जीवाणुओं में ही पाये जाते हैं। जीवाणुओं का

पता चलते ही यह जीवाणु की दीवार में छेद कर उन्हें फटने पर मजबूर कर देते हैं। यह फैगोसाइट्स (phagocytes) को भी जीवाणुओं पर आक्रमण करने के लिए संकेत भेजते हैं।

b. फैगोसाइट्स (Phagocytes)

फेगोसाइट्स निम्न प्रकार के होते हैं -

I. **न्यूट्रोफिल (Neutrophils)** - यह फेगोसाइट्स का एक बहुत ही सामान्य प्रकार है। न्यूट्रोफिल सबसे पहले हानिकारक जीवाणु या पदार्थ से खुद को बाँध लेता है। फिर 'स्यूडोपोडिया' (pseudopodia) द्वारा जीवाणु को अपने अंदर समेट कर उसे नष्ट कर देता है। यह स्वयं नष्ट होने से पहले उसके 20 जीवाणु नष्ट कर सकता है।

II. **मैक्रोफेज़ (Macrophage)** - यह न्यूट्रोफिल की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है और स्वयं नष्ट होने के पूर्व 100 जीवाणुओं तक नष्ट कर सकता है। यह शक्तिशाली हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट करने के काम आता है।

III. **बेसोफिल (Basophil)** - यह सूजन पैदा करता है।

IV. **इयोस्नोफिल (Eosinophils)** - यह मुख्यतः परजीवियों को नष्ट करते हैं। यह किसी एलर्जी के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं।

V. **जीवाणुनाशक एजेंट (Bactericidal Agent)** - यह ऑक्सीडाइज़िंग एजेंट के द्वारा जीवाणुओं को नष्ट करते हैं। इन ऑक्सीडाइजिंग एजेंट को ऑक्सीडेन्ट्स (oxidants) कहते हैं। ऑक्सीडेन्ट्स शरीर के ऊतकों के लिये भी हानिकारक होते हैं, इसलिये फैगोसाइट्स में इनका आवश्यकता पड़ने पर ही उपयोग किया जाता है।

c. प्राकृतिक किलर कोशिकायें (Natural Killer Cells)

प्राकृतिक किलर कोशिकायें बोन मैरो से उत्पन्न होती हैं। यह कोशिकायें शरीर की उन कोशिकाओं को नष्ट करती हैं, जो जीवाणुओं द्वारा संक्रमित हो चुकी हैं। यह कैंसर और ट्यूमर कोशिकाओं की पहचान करने में सक्षम होती हैं।

d. सूजन (Inflammation)

जब भी शरीर में ऊतकों को किसी प्रकार की क्षति पहुँचती है, तो शरीर के ऊतकों से ऐसे रासायनिक द्रव्य निकलते हैं जो सूजन उत्पन्न करते हैं। लाली, सूजन, गर्मी व दर्द सूजन के लक्षण हैं। यह लक्षण निम्न कारणों से उत्पन्न होते हैं।

- स्थानीय रक्त प्रवाह बढ़ना।

- रक्त वाहिकाओं से पानी एवं प्रोटीन का रिसाव
- आहत क्षेत्र में बहुत सारी प्रतिरक्षक कोशिकाओं का आना-जाना
- दर्द रिसेप्टर्स में उत्तेजना
- सूजन की वजह से जीवाणु आहत स्थान पर और प्रहार नहीं कर पाते।

e. ज्वर (Fever)

ज्वर शरीर के सामान्य तापमान से बढ़ा हुआ तापमान है। ज्वर शरीर के लिए सामान्यतः हानिकारक नहीं होता। यह शरीर की एक प्रतिक्रिया के रूप में उभरता है, जब फेगोसाइट्स जीवाणुओं को नष्ट कर रहे होते हैं। शरीर में और जीवाणुओं का गुणन न हो इसलिए शरीर के तापमान को बढ़ाकर यह स्थिति नियंत्रित की जा सकती है।

10.5.2 अर्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता (Acquired Immunity)

- अर्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता acquired immunity) जीवाणुओं के शरीर में प्रवेश के उपरान्त क्रियान्वित होती है। यह क्षमता जीवाणुओं को पहचानने के बाद ही अपना कार्य शुरू करती है। यह पहले से किसी भी प्रकार के जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए तैयार नहीं होती है। एक बार जीवाणुओं के प्रति प्रतिक्रिया करने के बाद अर्जित रोग प्रतिरोधक प्रणाली शरीर की रक्षा के लिए रक्षात्मक प्रतिक्रियाओं का निर्माण तीव्र गति से करने लगती है।
- अर्जित रोग प्रतिरोधक प्रणाली में मुख्य रूप में दो कोशिकायें - बी-कोशिकायें (T-cells) व टी-कोशिकायें (T-cells) शरीर की रक्षात्मक प्रक्रिया में कार्य करती है।
- सहज रोग प्रतिरोधक प्रणाली की अपेक्षा अर्जित रोग प्रतिरोधक प्रणाली को पहले यह जानना आवश्यक होता है कि किस तरह के जीवाणु ने शरीर पर आक्रमण किया है। यह जानने के बाद अर्जित रोग प्रतिरोधक प्रणाली उस जीवाणु से लड़ने के लिए आवश्यक तैयारी कर उस जीवाणु से किस प्रकार लड़ना है, इसकी एक अभिकल्प तैयार कर जीवाणु पर आक्रमण करती है। इसमें थोड़ा समय लगता है क्योंकि यह विशिष्ट जीवाणु के लिए विशिष्ट अभिकल्प तैयार करती है।
- सारे बाहरी तत्वों की सतह पर एक अलग सा पैटर्न होता है जिसकी वजह से अर्जित प्रतिरक्षा प्रणाली कोशिकायें उन्हें पहचान लेती हैं। जैसे ही अर्जित प्रतिरक्षा प्रणाली की

कोशिकायें इस पैटर्न से युक्त तत्वों को पहचान लेती है, वैसे ही वे उन्हें बाहरी घोषित कर उन पर आक्रमण कर देती हैं। इन सारे बाहरी तत्वों को एन्टीजन (antigen) कहते हैं। एन्टीजन वह हैं जिनको अर्जित प्रतिरक्षा प्रणाली की कोशिकायें ढूँढ सकती हैं व आक्रमण कर सकती हैं।

- अर्जित प्रतिरक्षा प्रणाली के सक्रियण के लिए अन्य कोशिकाओं की भी आवश्यकता पड़ती है। मेक्रोफेज़ (macrophage) कोशिकायें इस सक्रियण को गतिशील करने में सहायक होती हैं।
- जब जीवाणु शरीर पर आक्रमण करते हैं तो सफेद रक्त कोशिकाओं (white blood cells)का एक प्रकार लिम्फोसाइट (lymphocyte) उन जीवाणुओं पर आक्रमण करते हैं।

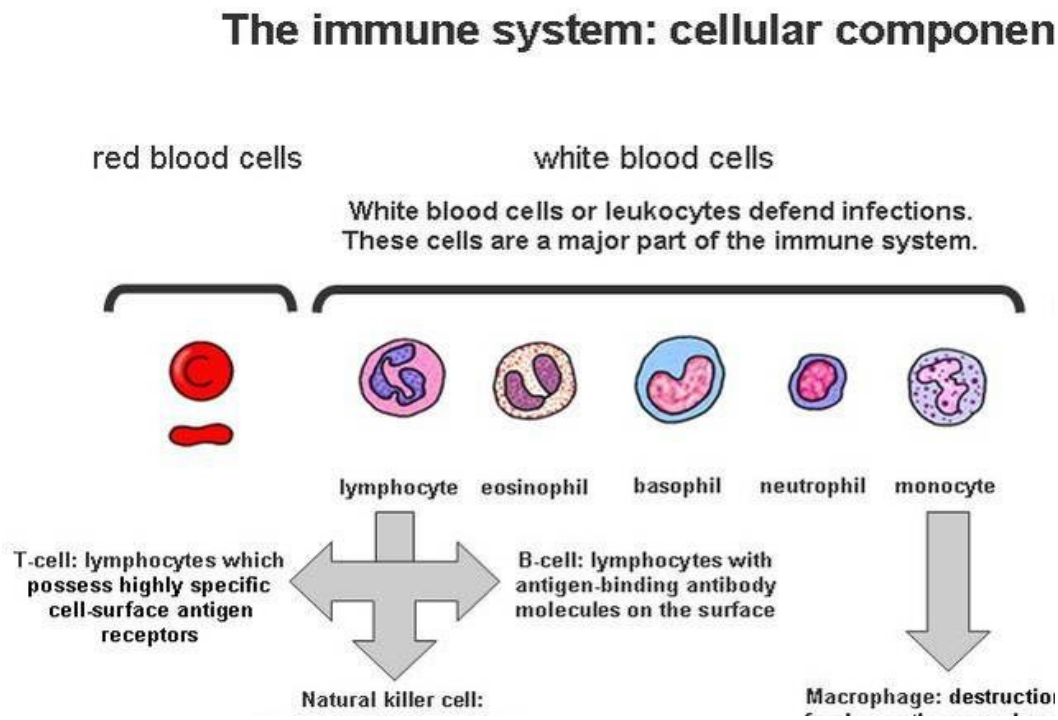

लिम्फोसाइट के दो प्रकार - टी-कोशिकायें (T-cells) और बी-कोशिकायें (B-cell) अर्जित प्रतिरक्षा प्रणाली के अन्तर्गत आते हैं। इनका वर्णन निम्न है -

I. टी-कोशिकायें (T-Cell)

- टी-कोशिका प्रतिरक्षा प्रणाली को कोशिका मीडिएटेड इम्यूनिटी(cell mediated immunity) भी कहते हैं।
- टी-कोशिकायें लिम्फोसाइट्स का लगभग 80 प्रतिशत भाग होती हैं। इनको टी कोशिका इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह थाइमस ग्रन्थि (Thymus Gland) में परिपक्व होती हैं।
- टी-कोशिकायें अपनी प्रारम्भिक अवस्था में स्टेम कोशिका (stem cell) के रूप में उभरती हैं, जिसका उत्पादन बोन मैरो (bone marrow) द्वारा होता है। परिपक्व होने के लिए यह स्टेम कोशिकायें थाइमस ग्रन्थि में स्थानान्तरित हो जाती हैं, जहाँ यह तीन सप्ताह तक रह सकती हैं। थाइमस ग्रन्थि में टी-कोशिकाओं को टी-कोशिका ग्राहक (T-cell receptors) मिलते हैं। यह ग्राहक कई प्रकार के होते हैं। ग्राहकों के आधार पर ही टी-कोशिका का प्रकार एवं कार्य निर्धारित होता है।

टी-कोशिका सक्रियण (T-cell Activation)

टी-कोशिकायें बाहरी तत्वों का स्वयं पता नहीं लगा पातीं। इसके लिए उन्हें एक विशेष प्रकार की कोशिकाओं - एंटीजन प्रेसेंटिंग कोशिका (Antigen presenting cells) की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। एंटीजन प्रेसेंटिंग कोशिका किसी भी बाहरी तत्व को नष्ट करने की क्षमता रखती है। जैसे ही यह कोशिकायें किसी बाहरी तत्व से टकराती हैं, वैसे ही यह टी-कोशिकाओं को प्रक्रिया करने के लिए संकेत भेजती हैं, जिससे रक्त में टी-कोशिकायें प्रवाहित होने लगती हैं और बाहरी तत्वों से लड़ने के लिए तैयार हो जाती हैं।

टी-कोशिका के कार्य (Function of T-Cell)

- बी-कोशिकाओं (B-Cell) के विकास एवं सक्रियण के लिए संकेत भेजती हैं।
- उन कोशिकाओं का सक्रियण करना जो बाहरी तत्वों को नष्ट कर सकते हैं।
- वाइरल संक्रमण (Viral Infection) के समय साइटोटॉक्सिक टी-कोशिका (Cytotoxic T-Cells) को उद्दीपित करते हैं।
- अन्य कोशिकाओं एवं दूसरी प्रकार की टी-कोशिकाओं, मैक्रोफेज़ेस व इयोस्नोफिल्स को विकास के लिए संकेत भेजती है।

टी-कोशिका के प्रकार (Types of T-Cells)

टी-कोशिकायें भी निम्न तीन प्रकार की होती हैं -

a. साइटोटॉक्सिक टी-कोशिका

b. सप्रैसर टी-कोशिका

c. हैल्पर टी-कोशिका

इनका वर्णन निम्न है -

a. साइटोटॉक्सिक टी-कोशिका (Cytotoxic T-cell)

- यह कोशिकायें वाइरल संक्रमित कोशिकाओं से शरीर की रक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
- यह कोशिकाएँ कुछ प्रकार के अर्बुदों के प्रति प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया में और ऊतक ग्राफ्ट्स के नकारने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।
- इन कोशिकाओं को सक्रिय एन्टीजन प्रेसेन्टिंग कोशिकाओं की तथा हैल्पर टी-कोशिकाओं की आवश्यकता पड़ती है।
- हेल्पर टी-कोशिकाओं साइटोटोक्सिक टी-कोशिकाओं को सक्रिय करने में सहायक होती हैं जिसके परिणामस्वरूप साइटोटोक्सिक टी-कोशिकाओं अपने लक्ष्य पर निशाना साध उन्हें नष्ट करने लगती हैं।
- साइटोटोक्सिक टी-कोशिकायें एक प्रोटीन परफोरिन (Perforin) का निर्माण करती हैं जो कि बाहरी हानिकारक तत्वों को जड़ से नष्ट कर देता है।
- बाहरी तत्वों को नष्ट करने के लिए साइटोटोक्सिक टी कोशिका पहले अपने आपको उस तत्व से जोड़ लेती है और फिर उसमें परफोरिन प्रोटिन स्थानांतरित कर उसे स्वतः नष्ट होने पर बाध्य कर देती है इससे आस-पास की कोशिकाओं को हानि नहीं पहुँचती है।
- जब वह तत्व नष्ट हो जाता है तो साइटोटोक्सिक टी कोशिका उस कोशिका से विलग हो दूसरे संक्रमित कोशिकाओं को नष्ट करने के लिए चले जाते हैं।

b. सप्रैसर टी-कोशिका (Suppressor T-Cell)

- सप्रैसर टी-कोशिकायें प्रतिरक्षा प्रणाली की अन्य कोशिकाओं के कार्यों को दबाता हे ताकि शरीर के अपने ऊतकों को बाहरी तत्वों से लड़ते समय अधिक हानि न हो।

- सप्रैसर टी-कोशिका शरीर को ऑटोइम्यूनिटी के आक्रमण से बचाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऑटोइम्यूनिटी (Auto immunity) में शरीर का प्ररितरक्षा तंत्र बाहरी हानिकारक तत्वों को नष्ट करने की अपेक्षा अपने ही शरीर की कोशिकाओं को नष्ट करने लगता है। जिससे शरीर में विभिन्न रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

C. **हैल्पर टी-कोशिका (Helper T-Cell)**

- यह पूरी टी-कोशिकाओं का लगभग तीन-चौथाई भाग बनाती है।
- यह कोशिकायें प्रतिरक्षा तंत्र की विभिन्न प्रकार से सहायता करती हैं और शरीर की सभी प्रतिरक्षा प्रक्रियाओं को नियंत्रित करती हैं।
- इन कोशिकाओं से एक पदार्थ निकलता है जिसे लिम्फोकाइन (lymphokines) कहते हैं। यह पदार्थ हैल्पर टी-कोशिकाओं द्वारा प्रतिरक्षा तंत्र के दूसरे भागों को नियंत्रित करने में सहायक होती हैं तथा दूसरी टी-कोशिकाओं को विकसित होने और आक्रमण करने के लिए उद्दीप्त करता है। यह पदार्थ बी-कोशिकाओं को विकसित और परिपक्व होने में सहायता प्रदान करता है।
- एड्स (AIDS – Acquired Immuno Deficiency Syndrome) में हैल्पर टी-कोशिकाओं की अत्यधिक कमी हो जाती है जिससे शरीर संक्रमण के लिए नाजुक बन जाती है और शरीर में रोग आसानी से उत्पन्न हो जाते हैं।
- हैल्पर टी-कोशिकाओं का बी-कोशिकाओं के विकास पर प्रभाव होता है। संक्रमण की स्थिति में अगर टी-कोशिकायें नष्ट ही जायें तो बी-कोशिकायें भी काम नहीं कर सकती, अर्थात निष्क्रिय रहती हैं।

II. बी कोशिकायें (B-Cell)

- बी-कोशिका प्रतिरक्षा प्रणाली को ह्यूमरल मीडिएटेड इम्यूनिटी (Humoral Mediated Immunity)भी कहा जाता है।
- बी कोशिकायें लिम्फोसाइट्स का 10-15 प्रतिशत भाग होती है। इनको बी कोशिका इसलिये कहा जाता है क्योंकि यह बोन मैरो (Bone Merrow) में परिपक्व होती है।
- टी-कोशिकाओं की भांति बी-कोशिका भी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में स्टैम कोशिका (stem cell) के रूप में उभरती है। पर थाइमस ग्रन्थि (Thymus Gland) में स्थानान्तरित होने की अपेक्षा यह बोन मैरो में ही परिपक्व होती हैं। बोन मैरो में ही बी-

कोशिकाओं को ग्राहक मिलते हैं और यह रक्त में प्रवाहित हो जाती हैं। एक बार प्रवाहित होने के बाद बी-कोशिकायें शरीर को लिम्फॉइड ऊतक (Lymphoid tissue) में चली जाती हैं, जहाँ पर वह टी-कोशिकाओं के नज़दीक परन्तु अलग स्थित रहती हैं।

बी-कोशिका सक्रियण (B-Cell Activation)

अधिकतर बी-कोशिकाओं का सक्रियण लिम्फ नोड्स में होता है। लिम्फ नोड्स में एक विशेष प्रकार की कोशिकाओं द्वारा बाहरी तत्वों को नष्ट कर अवशेषों को बी व टी-कोशिकाओं को प्रस्तुत किया जाता है। इस बाहरी तत्व के ग्राहक को पहचानकर बी-कोशिका गुणा होने लगती हैं। टी-कोशिका द्वारा भी बी-कोशिका सक्रिय होती है। सक्रियण के बाद बी-कोशिका सम्पूर्ण शरीर में पलायन करती है और प्लाज़्मा कोशिकाओं (Plasma Cells) में बदल जाती हैं।

बी-कोशिका के कार्य (Function of B-Cell)

- बी-कोशिका लक्ष्य एंटीजन के प्रति उपयुक्त एण्टीबॉडी के उत्पादन को सुनिश्चित करती है।
- लक्ष्य एण्टीजन को टी-कोशिका के सामने पेश करती है और टी-कोशिका सक्रियण के लिए संकेत भेजती है।

बी-कोशिका के प्रकार (Types of B-Cells)

a. प्लाज़्मा बी-कोशिका

b. स्मृति बी-कोशिका

इनका वर्णन निम्न है -

a. प्लाज़्मा बी-कोशिका (Plasma B-Cell)

- प्लाज़्मा बी-कोशिकायें बी-कोशकाओं का वह प्रकार है जो केवल एक प्रकार की एण्टीबॉडी को उत्पन्न एवं स्रावित करने के लिए प्रतिबद्ध होती है। यह परिसंचरण में मिलने वाली एण्टीबॉडी की वृद्धि करती है।
- जब तक यह कोशिकायें एण्टीबॉडी स्रावित करती रहती हैं, तब तक शरीर की सुरक्षा बनी रहती है।

b. स्मृति बी-कोशिका (Memory B-Cell)

- स्मृति बी-कोशिकायें बी-कोशिकाओं के सक्रियण के बाद भी बन सकती है। यह कोशिकायें लिम्फ नोड्स में पलायन कर जाती हैं जहाँ यह उस विशिष्ट एण्टीजन के लिए तैयार रहती हैं, जो दोबारा भी मिल सकता है।

- अगर कोई एण्टीजन दोबारा आता है, तो यह कोशिकायें उस पर आक्रमण करने और गुणा होने के लिए तैयार रहती हैं।

10.6 एण्टीबॉडी (Antibody)

- एण्टीबॉडी एक प्रोटीन पदार्थ होता है जो विशिष्ट रूप से किसी एण्टीजन को बाँधने की प्रतिक्रिया में लिम्फोसाइट्स (Lymphocytes) द्वारा उत्पन्न होता है।
- यह संक्रमित जीवाणु को लक्ष्य बनाता है।
- यह प्रतिरक्षक कोशिकाओं को अलग करता है।
- यह टॉक्सिन को न्यूट्रेलाइज़ (neutralize) करता है।
- यह संचलन से बाहरी एण्टीजन को हटाता है।
- यह उन कोशिकाओं को उद्दीप्त करता है, जो बाहरी तत्व खा सकें।
- एण्टीबॉडीज़ पूर्व में हुए जीवाणुज, विषाणुज, टीकाकरण (Vaccination) अथवा गर्भाशय में माता से शिशु में स्थानान्तरित होने के परिणामस्वरूप पायी जाती हैं।
- किसी ज्ञात एण्टीजन उत्तेजन के अभाव में भी एण्टीबॉडी उत्पन्न हो सकती हैं।
- सभी एण्टी बाड़ीज़प्लाज़्मा प्रोटीनों के एक विशेष वर्ग इम्युनोग्लोबिन (immunoglobulin) की होती हैं। मानव वयस्क में सामान्यतः चार प्रकार की इम्यूनोग्लोबिन पाई जाती हैं, जिन्हें संक्षेप में Ig कहा जाता है। इनका वर्णन निम्न है-

a. इम्यूनोग्लोबिन जी (IgG)

यह सबसे अधिक पाई जाने वाली और प्रमुख इम्यूनोग्लोबिन है। यह प्रतिरक्षा तंत्र की बहुत सारी कोशिकाओं से सम्पर्क करने में सक्षम होती हैं, इसलिए यह बाहरी तत्वों को पहचानते ही उन पर आक्रमण करने के लिए कोशिकाओं को उद्दीप्त कर सकती हैं। यह प्रसव से पूर्व प्लेसेण्टा (Placenta) से होकर शिशु में पहुँच जाती है और उसमें उन बीमारियों का सामना करने के लिए थोड़ी सुरक्षा प्रदान करती है जो उसे जन्म के बाद हो सकती है।

b. इम्यूनोग्लोबिन ए (IgA)

यह बहिस्रावी ग्रन्थियों (exocrine glands) के स्रावों, जैसे दूध, श्वसनीय पथ, आँत की श्लेष्मा तथा आँसुओं आदि में पाई जाने वाली इम्यूनोग्लोबिन है जो श्लेष्मिक कला की सतह की

जीवाणुओं एवं विषाणुओं के संक्रमण से रक्षा करती है। यह दूसरी सबसे अधिक पाई जाने वाली इम्यूनोग्लोबिन है।

c. इम्यूनोग्लोबिन एम (IgM)

यह प्रायः प्रत्येक रोगक्षम अनुक्रिया में संक्रमण के प्रारम्भिक काल में बनने वाली इम्यूनोग्लोबिन है। सूक्ष्माणु के प्रारम्भिक सम्पर्क से सबसे पहले IgM एण्टीबॉडी ही बनती है।

d. इम्यूनोग्लोबिन ई (IgE)

- यह आकार में सबसे बड़ी इम्यूनोग्लोबिन है पर स्वस्थ मनुष्य के शरीर में यह बहुत कम मात्रा में पाई जाती है। परजीवी संक्रमण के दौरा IgE के स्तर में वृद्धि हो जाती है। इसका स्तर उस अवस्था में भी बड़ा होता है जब कोई एलर्जी हो जाती है।
- IgE की अधिक वृद्धि के कारण हेफीवर (Hayfever) की स्थित बन जाती है।

10.7 एण्टीजन्स:

शरीर में बाहर से प्रवेश करने वाला या उसमें उत्पन्न होने वाला ऐसा पदार्थ जो प्रतिपिण्ड या एण्टीबॉडी के बनने को प्रेरित करता है, जो विशेष रूप से इसी के साथ प्रतिक्रिया करता है, एण्टीजन कहलाता है। एण्टीजन - एण्टीबॉडी प्रतिक्रिया इम्यूनिटी का आधार होती है। एक पूर्ण एण्टीजन होने तथा एण्टीबॉडी निर्माण को प्रेरित करने के लिए एण्टीजन का अणु भार इससे अधिक होना आवश्यक है। एण्टीजन प्रायः प्रोटीन होते हैं। कोई एण्टीजन शरीर में बाहर से प्रवेश करने वाला जैसे जीवाणु, विषाणु, कवक, जीवविष (Toxin) बाह्य रक्त कोशिकायें आदि होते हैं तथा वैक्सीन के रूप में इन्जैक्शन द्वारा शरीर में पहुँचाये जाने वाले कृत्रिम एण्टीजन होते हैं।

10. 8 सारांश: मानव शरीर निरन्तर ऐसे तत्वों से लड़ता रहता है, जो शरीर को नुकसान पहुँचाते रहते हैं। हानिकारक जीवाणु, विषाणु आदि लगातार शरीर को नुकसान पहुँचाकर कमजोर बनाते रहते हैं।

प्रतिरक्षा तंत्र में सम्मिलित अंग बाह्य जीवाणुओं, विषाणुओं के प्रति शरीर को तैयार करते हैं। लसीका पर्व एक छलनी का कार्य करते हैं जो हानिकारक जीवाणुओं को छान लेते हैं। लसीका नोड्स में उपस्थित वृहत्भक्षक कोशिकायें एण्टीबॉडीज़ और एण्टीटॉक्सिन्स द्वारा रोगोत्पादक जीवाणुओं को नष्ट कर देते हैं। इसी प्रकार टॉन्सिल आदि जीवाणुओं से होने वाले दुष्प्रभावों से शरीर की रक्षा करते हैं। प्लीहा भी एक बहुत महत्वपूर्ण अंग है जो लिम्फ नोड्स के समान ही छलनी का कार्य करता है। यह रक्त को छानकर हानिकारक जीवाणुओं, विषाणुओं को अलग कर

लेता है। ये लिम्फोसाइट्स और मोनोसाइट्स का निर्माण कर हानिकारक जीवाणुओं का भक्षण करने मे सक्षम होती हैं। प्लीहा के रक्त में विद्यमान एण्टीजन्स लिम्फोसाइट्स को क्रियाशील बनाकर कोशिकाओं में विकसित होते हैं एवं एण्टीबॉडीज़ का निर्माण करते हैं।

T- कोशिकायें जो थाइमस ग्रन्थि में बनती हैं, इम्यूनिटी को बढ़ाने में सहायक होती हैं। प्रतिरक्षा तंत्र की महत्वूपर्ण इकाई यकृत चयापचयी, संग्रही एवं स्रावी कार्यों के द्वाराशरीर के विकास एवं प्रतिरक्षा में मदद करता है। यह प्रणाली सही समय पर सही स्राव को करने की तीव्र एवं सटीक क्षमता द्वारा हमारे शरीर की सुरक्षा करती है। सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं अर्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता के माध्यम से हमारा शरीर विभिन्न विपरीत परिस्थितियों में सहज एवं सक्षमता बनाये रखता है।

10.9 शब्दावली:

- अन्तरालीय द्रव- दो कोशिकाओं के बीच में स्थित द्रव
- चयापचय - उपापचय, मेटाबॉलिज़्म
- उपरिस्थ - ऊपर स्थित, सुपरफीशियल
- डायफ्राम - उपस्थिमय संरचना जो फेफड़ों की गतिशीलता के लिये उत्तरदायी है।
- स्वेद ग्रन्थि - पसीने की ग्रन्थि, sweat gland
- सीबम - एक प्रकार का गाढ़ा व तैलीय पदार्थ
- म्यूकस - गाढ़ा चिपचिपा पदार्थ

10.10 अभ्यास प्रश्न:

सही/गलत

1. प्लीहा का मुख्य कार्य रक्त को छानना एवं भक्षक कोशिकाओं का निर्माण करना है।
2. फैरिन्जियल टॉन्सिल ग्रसनी के दोनों ओर स्थित रहते हैं।
3. यकृत ग्लूकोज को ग्लाइकोजन के रूप में संग्रहित रखता है।
4. पैलाटाइन टॉन्सिल ग्रसनी के नीचे की ओर स्थित रहते हैं।
5. प्रतिरक्षा तंत्र शरीर की अपनी कोशिकाओं एवं बाहरी तत्वों के बीच भेद करने की क्षमता रखता है।

6. सहज प्रतिरोधक क्षमता जीवाणुओं के शरीर में प्रवेश करने के उपरान्त क्रियान्वित होती है।
7. शरीर में उतकों को क्षति पहुँचने की अवस्था में सूजन उत्पन्न हो जाती है।
8. त्वचा में स्वेद ग्रन्थि और वसा ग्रन्थि होती हैं।
9. एड्स में हैल्पर टी.कोशिकाएँ अधिक हो जाती हैं।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1. सही, 2. गलत, 3. सही, 4. गलत,5. सही, 6.गलत, 7.सही 8. सही, 9. गलत

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, प्रा0 अनन्त प्रकाश गुप्ता (2010), सुमित प्रकाशन (आगरा)
2. Principles of Anatomy & Physiology, **Geroard** J. Tortora and Bryan H. Derrick son (2008), John Wiley & Sons (India)

10.12 निबंधात्मक प्रश्न:

1. प्रतिरक्षा तंत्र से क्या आशय है, समझाइये।
2. सहज रोग प्रतिरोधक क्षमता से आप क्या समझते हैं, विस्तापूर्वक समझाइये।
3. अर्जित रोग प्रतिरोधक क्षमता को विस्तार पूर्वक समझाइये।
4. एण्टीबॉडी एवं एण्टीजन को समझाइये।
5. **संक्षिप्त टिप्पणी -**

i. टी-कोशिकाओं के प्रकार व कार्य
ii. बी-कोशिकाओं के कार्य
iii. थाइमस ग्रन्थि की संरचना एवं कार्य
iv. प्रतिरक्षा संस्थान में लसीका की भूमिका को समझाइये।